सज्जन तप प्रवेशिका

सम्बोधिका

पूज्या प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा.
परम विदुषी शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

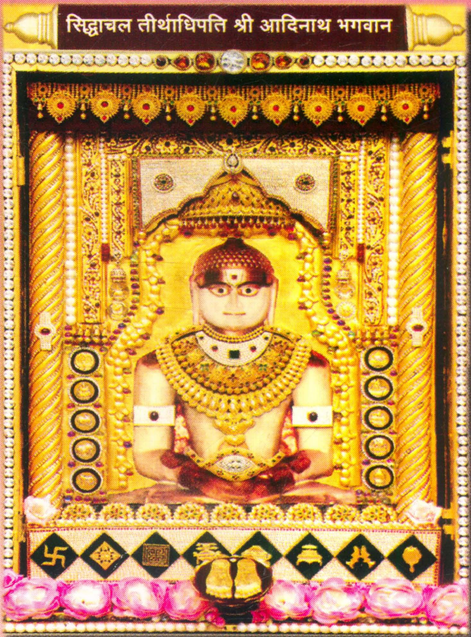

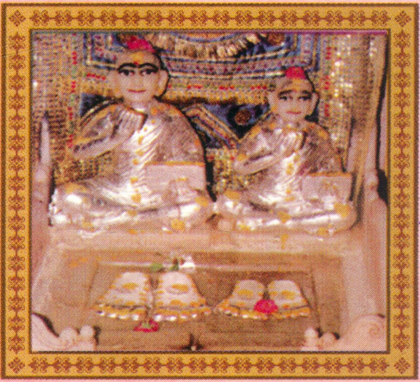

श्री जिनदत्तसूरि अजमेर दादाबाड़ी

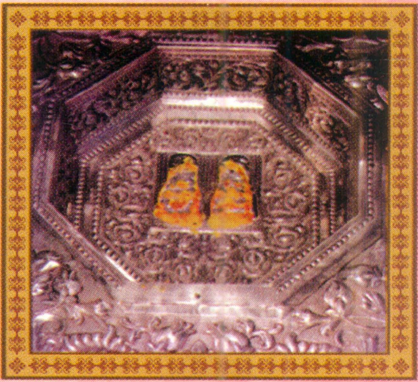

श्री मणिधारी जिनचन्द्रसूरि दादाबाड़ी (दिल्ली)

श्री जिनकुशलसूरि मालपुरा दादाबाड़ी (जयपुर)

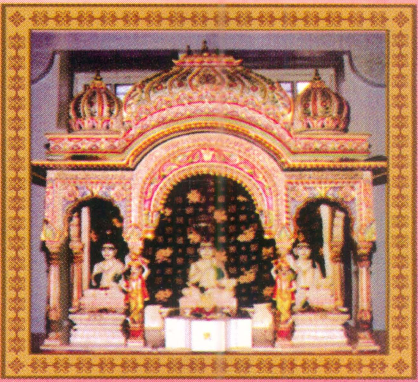

श्री जिनचन्द्रसूरि बिलाडा दादाबाड़ी (जोधपुर)

सज्जन तप प्रवेशिका

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-22

2012-13

R.J. 241 / 2007

ACHARYA SRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR
SRI MAHAVIR JAIN ARADHANA KENDRA
Koba, Gandhinagar-382 009
Phone : (079) 23276252, 23276204-0
णाणस्स सारमायारो

शोधार्थी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

निर्देशक

डॉ. सागरमल जैन

जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय

लाडनूं-341306 (राज.)

सज्जन तप प्रवेशिका

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-22

णाणस्स सारमायारो

स्वप्न शिल्पी

आगम मर्मज्ञा प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.

संयम श्रेष्ठा पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

मूर्त्त शिल्पी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

(विधि प्रभा)

शोध शिल्पी

डॉ. सागरमल जैन

सज्जन तप प्रवेशिका

कृपा पुंज : पूज्य आचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागर सूरीश्वरजी म.सा.

ंगल पुंज : पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.

ानन्द पुंज : आगमज्योति प्रवर्तिनी महोदया पूज्या सज्जन श्रीजी म.सा.

रणा पुंज : पूज्य गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

ात्सल्य पुंज : गुर्वाज्ञा निमग्ना पूज्य प्रियदर्शना श्रीजी म.सा.

ेह पुंज : पूज्य दिव्यदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य तत्वदर्शना श्रीजी म.सा पूज्य सम्यक्दर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य शुभदर्शना श्री म.सा., पूज्य मुदितप्रज्ञाश्रीजी म.सा., पूज्य शीलगुणाश्री म.सा., सुयोग्या कनकप्रभाजी, सुयोग्या संयमप्रज्ञाजी आ भगिनी मण्डल

धकर्त्री : साध्वी सौम्यगुणाश्री (विधिप्रभा)

ा वृष्टि : डॉ. सागरमल जैन

ाशक :
- प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड, शाजापुर-465001
  email : sagarmal.jain@gmail.com
- सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
  बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड, पालीताणा-3642

थम संस्करण : सन् 2014

तेयाँ : 1000

हयोग राशि : ₹ 100.00

(ुनः प्रकाशनार्थ)

म्पोज : विमल चन्द्र मिश्र, वाराणसी

वर सेटिंग : शम्भू भट्टाचार्य, कोलकाता

द्रक : Antartica Press, Kolkata

ISBN : 978-81-910801-6-2 (XXII)

All rights reserved by Sajjan Mani Granthmala.

प्राप्ति स्थान

1. श्री सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड,
पो. पालीताणा-364270 (सौराष्ट्र)
फोन : 02848-253701

2. श्री कान्तिलालजी मुकीम
श्री जिनरंगसूरि पौशाल, आड़ी बांस
तल्ला गली, 31/A, पो. कोलकाता-7
मो. 98300-14736

3. श्री भाईसा साहित्य प्रकाशन
M.V. Building, Ist Floor
Hanuman Road, PO : VAPI
Dist. : Valsad-396191 (Gujrat)
मो. 98255-09596

4. पार्श्वनाथ विद्यापीठ
I.T.I. रोड, करौंदी वाराणसी-5 (यू.पी.)
मो. 09450546617

5. डॉ. सागरमलजी जैन
प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड
पो. शाजापुर-465001 (म.प्र.)
मो. 94248-76545
फोन : 07364-222218

6. श्री आदिनाथ जैन श्वेताम्बर
तीर्थ, कैवल्यधाम
पो. कुम्हारी-490042
जिला- दुर्ग (छ.ग.)
मो. 98271-44296
फोन : 07821-247225

7. श्री धर्मनाथ जैन मन्दिर
84, अमन कोविल स्ट्रीट
कोण्डी थोप, पो. चेन्नई-79 (T.N.)
फोन : 25207936,
044-25207875

8. श्री जिनकुशलसूरि जैन दादावाडी,
महावीर नगर, केम्प रोड
पो. मालेगाँव
जिला- नासिक (महा.)
मो. 9422270223

9. श्री सुनीलजी बोथरा
टूल्स एण्ड हार्डवेयर,
संजय गांधी चौक, स्टेशन रोड
पो. रायपुर (छ.ग.)
फोन : 94252-06183

10. श्री पदमचन्द चौधरी
शिवजीराम भवन, M.S.B. का रास्ता,
जौहरी बाजार
पो. जयपुर-302003
मो. 9414075821, 9887390000

11. श्री विजयराजजी डोसी
जिनकुशल सूरि दादाबाड़ी
89/90 गोविंदप्पा रोड
बसवनगुडी, पो. बैंगलोर (कर्ना.)
मो. 093437-31869

संपर्क सूत्र

श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत
9331032777
श्री रिखबचन्दजी झाड़चूर
9820022641
श्री नवीनजी झाड़चूर
9323105863
श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख
8719950000
श्री जिनेन्द्र बैद
9835564040
श्री पन्नाचन्दजी दूगड़
9831105908

स्नेहार्पण

इस युग के आदि कर्त्ता प्रभुवर ने
व्यवहार-निश्चय का ज्ञान दिया ।
कर्म की अनंत श्रृंखलाओं को
तप के द्वारा क्षीण किया ।।
सिद्धाचल सा तीर्थ मनोहर
जिनसे जाना पहचाना जाता ।
प्रभु पद चिह्नों का अनुगमन कर
भवि जीव वहाँ दौड़ा आता ।।
ऐसे तपोमार्ग के संवाहक,
युगल परम्परा निवारक,
असि-मसि-कृषि के प्रवर्त्तक,
युगादिकर्त्ता आदिनाथ दादा के
चरण युगलों में
सर्वात्मना समर्पित

सज्जन की हृदय स्फुरणा

वर्तमान में जहाँ सांस्कृतिक क्रियाओं का मूल्य
घटता जा रहा है
वहीं...
Dieting, Jogging और Exercise की जरूरत ने
बढ़ाई है तपाचार की महत्ता
रोगों की विकसित संख्या ने पुनः जागृत की
संयम और त्याग की महिमा
बढ़ती महंगाई और मिलावट ने वर्धित की
बाह्य तपाचार की गरिमा
यह सिद्ध करता है कि जैनाचार में समाहित है
दूर दर्शिता,
त्रैकालिक प्रासंगिकता
एवं
सर्व ग्राह्यता
एतदर्थ
विज्ञान एवं धर्म के पारस्परिक सम्बन्धों को सिद्ध करने
युवा वर्ग को सांस्कृतिक एवं धार्मिक मार्ग पर
प्रवृत्त करने का
एक लघु प्रयास...

हार्दिक अनुमोदन

राजस्थान जैसलमेर हाल कोलकाता निवासी समाजरत्न

पिता श्री पन्नालालजी - मातु श्री रतनबाई की

अमर स्मृति के उपलक्ष्य में

सुपुत्र

श्री रीषलसिंहजी-चंचल, बहादुरसिंहजी-शान्ति,

राजेन्द्रसिंहजी-गुलाब कँवर, महेन्द्रसिंहजी-रीता

सुपौत्र

गौतम-वंदना

प्रपौत्र

सिद्धार्थ, वेदिका नाहटा परिवार

ज्ञान योग के गौरव पुरुष
श्री महेन्द्रसिंहजी नाहटा परिवार

तन में मन में रोम-रोम में
नख से शिखा पर्यन्त ।
जिन शासन भक्ति निःसृत होती
बनकर सरीत अनन्त ।।

श्रावक जीवन के आवश्यक विविध गुणों में एक प्रमुख गुण हैं शासन समर्पण। समर्पण की धूरि पर चलकर ही व्यक्ति उत्तुंग शिखर तक पहुँच सकता है। गौतम, तुलसी, मीरा, सुदामा आदि ने इसी पथ को अपनाकर जीवन को सफल एवं भक्ति को अमर कर दिया।

मूलतः जैसलमेर निवासी श्री महेन्द्रसिंहजी नाहटा एक ऐसे ही संघ समर्पित कार्यकर्त्ता हैं। आपका जन्म ईस्वी सन् 1946 में भारत की राजधानी दिल्ली में हुआ। इन्दौर नगरी में बी.काम पूर्ण कर आपने व्यापारिक कारणों से कोलकाता की ओर कदम बढ़ाए।

प्राचीन प्रतिमाओं की नगरी जैसलमेर में माता-पिता ने आपको परमात्म भक्ति के संस्कारों से नवाजा। उनकी शिक्षाएँ आज भी आप में नख से शिखा तक सतत प्रवाहित हो रही है। सकल जैन समाज में आपकी छवि एक सरल हृदयी, कर्त्तव्य निष्ठ, सेवाभावी, प्रभु भक्त, श्रावकरत्न के रूप में विख्यात है। प्रतिष्ठा, दीक्षा, वरघोडा आदि के कार्यक्रम हो अथवा चातुर्मासिक आराधना आप सदा अग्रणी रहते हैं। अपने सामर्थ्य, समय एवं संपदा तीनों का अहोभाव पूर्वक भोग देते हैं।

जिनपूजा, सामायिक, प्रत्याख्यान आदि श्रावक योग्य कर्त्तव्यों का पालन आप नियमित करते हैं। साधु-साध्वी वैयावच्च एवं साधर्मिक भक्ति हेतु आपकी तत्परता अनुशंसनीय है।

कोलकाता खरतरगच्छ संघ में आप मंत्री पद पर मनोनीत हैं। इसी प्रकार

भवानीपुर रमेश मित्रा रोड स्थित शंखेश्वर पार्श्वनाथ जिनालय के भी आप फाउंडेशन मेम्बर हैं। जैन भवन, जौहरी साथ, मारवाड़ी साथ, जैन कल्याण संघ, लायन्स क्लब आदि में भी आप प्रमुख कार्यकर्त्ता के रूप में जुड़े हुए हैं।

कहते हैं कि हर पुरुष की सफलता का श्रेय एक नारी को जाता है। धर्मपत्नी रीताजी नाहटा हम कदम बनकर जीवन के हर मोड़ पर आपका साथ निभाती हैं। वह एक धर्मनिष्ठ, सेवाभावी श्राविका होने के साथ Active समाज सेविका भी हैं। जिनदत्तसूरि महिला मंडल, कुशल सज्जन महिला मंडल, लायन्स क्लब, जैसलमेर संघ आदि की आप सक्रिय कार्यकर्त्ता हैं।

आप ही के पद चिह्नों का अनुसरण करते हुए सुपुत्र गौतम एवं पुत्रवधू वंदना धर्म कार्य में सदा प्रवृत्त रहते हैं तथा आप दोनों को हर प्रकार की पारिवारिक एवं व्यावसायिक जिम्मेदारियों से निश्ंचित रखते हैं। यह आप ही के संस्कारों का परिणाम है कि आपके पोते-पोती ध्रुव एवं वेदिका आज के Modern समाज में भी जिनपूजा आदि नियमित करते हैं।

पूज्या गुरुवर्य्या शशिप्रभाजी म.सा. के बंगाल प्रवास के दौरान आपने अपनी सेवाएँ हर समय प्रदान की। अध्ययनरता साध्वी सौम्यगुणाजी को भी सुविधानुसार संभालते एवं प्रोत्साहित करते रहते हैं।

आज उनकी बृहद शोधमाला के प्रकाशन में एक अभिन्न मोती के रूप में आप भी जुड़े हैं एतदर्थ सज्जनमणि ग्रन्थमाला आपकी आभारी है।

आप इसी तरह जिन शासन के प्रति सजग एवं समर्पित रहें तथा अपनी वात्सल्य सुधा से श्रीसंघ को आप्लावित करते रहें यही अन्तर कामना।

आशीर्वचन

भारतीय वांगमय ऋषि-महर्षियों द्वारा रचित लक्षाधिक ग्रन्थों से शोभायमान है। प्रत्येक ग्रन्थ अपने आप में अनेक नवीन विषय एवं नव्य उन्मेष लिए हुए हैं। हर ग्रन्थ अनेकशः प्राकृतिक, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक रहस्यों से परिपूर्ण है। इन शास्त्रीय विषयों में एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है विधि-विधान। हमारे आचार-पक्ष को सुदृढ़ बनाने एवं उसे एक सम्यक दिशा देने का कार्य विधि-विधान ही करते हैं। विधि-विधान सांसारिक क्रिया-अनुष्ठानों को सम्पन्न करने का मार्ग दिग्दर्शित करते हैं।

जैन धर्म यद्यपि निवृत्तिमार्गी है जबकि विधि-विधान या क्रिया-अनुष्ठान प्रवृत्ति के सूचक हैं परंतु यथार्थतः जैन धर्म में विधि-विधानों का गुंफन निवृत्ति मार्ग पर अग्रसर होने के लिए ही हुआ है। आगम युग से ही इस विषयक चर्चा अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होती है। जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा वर्तमान विधि-विधानों का पृष्ठाधार है। साध्वी सौम्यगुणाजी ने इस ग्रंथ के अनेक रहस्यों को उद्घाटित किया है।

साध्वी सौम्याजी जैन संघ का जाज्वल्यमान सितारा है। उनकी ज्ञान आभा से मात्र जिनशासन ही नहीं अपितु समस्त आर्य परम्पराएँ शोभित हो रही हैं। सम्पूर्ण विश्व उनके द्वारा प्रकट किए गए ज्ञान दीप से प्रकाशित हो रहा है। इन्हें देखकर प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की सहज स्मृति आ जाती है। सौम्याजी उन्हीं के नक्शे कदम पर चलकर अनेक नए आयाम श्रुत संवर्धन हेतु प्रस्तुत कर रही है।

साध्वीजी ने विधि-विधानों पर बहुपक्षीय शोध करके उसके विविध आयामों को प्रस्तुत किया है। इस शोध कार्य को 23 पुस्तकों के रूप में प्रस्तुत कर उन्होंने जैन विधि-विधानों के समग्र पक्षों को जन सामान्य के लिए सहज ज्ञातव्य बनाया है।

जिज्ञासु वर्ग इसके माध्यम से मन में उद्वेलित विविध शंकाओं

का समाधान कर पाएगा।

साध्वीजी इसी प्रकार श्रुत रत्नाकर के अमूल्य मोतियों की खोज कर ज्ञान राशि को समृद्ध करती रहे एवं अपने ज्ञानालोक से सकल संघ को रोशन करें यही शुभाशंसा...

आचार्य कैलास सागर सूरि
नाकोडा तीर्थ

विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाश्रीजी ने विधि विधान सम्बन्धी विषयों पर शोध-प्रबन्ध लिख कर डी.लिट् उपाधि प्राप्त करके एक कीर्तिमान स्थापित किया है।

सौम्याजी ने पूर्व में विधिमार्गप्रपा का हिन्दी अनुवाद करके एक गुरुत्तर कार्य संपादित किया था। उस क्षेत्र में हुए अपने विशिष्ट अनुभवों को आगे बढ़ाते हुए उसी विषय को अपने शोध कार्य हेतु स्वीकृत किया तथा दत्त-चित्त से पुरुषार्थ कर विधि-विषयक गहनता से परिपूर्ण ग्रन्थराज का जो आलेखन किया है, वह प्रशंसनीय है।

हर गच्छ की अपनी एक अनूठी विधि-प्रक्रिया है, जो मूलतः आगम, टीका और क्रमशः परम्परा से संचालित होती है। खरतरगच्छ के अपने विशिष्ट विधि विधान हैं... मर्यादाएँ हैं... क्रियाएँ हैं...। हर काल में जैनाचार्यों ने साध्वाचार की शुद्धता को अक्षुण्ण बनाये रखने का भगीरथ प्रयास किया है। विधिमार्गप्रपा, आचार दिनकर, समाचारी शतक, प्रश्नोत्तर चत्वारिंशत शतक, साधु विधि प्रकाश, जिनवल्लभसूरि समाचारी, जिनपतिसूरि समाचारी, षडावश्यक बालावबोध आदि अनेक ग्रन्थ उनके पुरुषार्थ को प्रकट कर रहे हैं।

साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने विधि विधान संबंधी बृहद् इतिहास की दिव्य झांकी के दर्शन कराते हुए गृहस्थ-श्रावक के सोलह संस्कार, व्रतग्रहण विधि, दीक्षा विधि, मुनि की दिनचर्या, आहार संहिता, योगोद्वहन विधि, पदारोहण विधि, आगम अध्ययन विधि, तप साधना विधि, प्रायश्चित्त विधि, पूजा विधि, प्रतिक्रमण विधि, प्रतिष्ठा विधि, मुद्रायोग आदि विभिन्न विषयों पर अपना चिंतन-विश्लेषण

प्रस्तुत कर इन सभी विधि विधानों की मौलिकता और सार्थकता को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उजागर करने का अनूठा प्रयास किया है।

विशेष रूप से मुद्रायोग की चिकित्सा के क्षेत्र में जैन, बौद्ध और हिन्दु परम्पराओं का विश्लेषण करके मुद्राओं की विशिष्टता को उजागर किया है।

निश्चित ही इनका यह अनूठा पुरुषार्थ अभिनंदनीय है। मैं कामना करता हूँ कि संशोधन-विश्लेषण के क्षेत्र में वे खूब आगे बढ़ें और अपने गच्छ एवं गुरु के नाम को रोशन करते हुए ऊँचाईयों के नये सोपानों का आरोहण करें।

उपाध्याय श्री मणिप्रभसागर

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि विदुषी साध्वी डॉ. सौम्यगुणा श्रीजी ने डॉ. श्री सागरमलजी जैन के निर्देशन में 'जैन विधि-विधानो का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' इस विषय पर 23 खण्डों में बृहदस्तरीय शोध कार्य (डी.लिट्) किया है। इस शोध प्रबन्ध में परंपरागत आचार आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक परिचय देने का सुंदर प्रयास किया गया है।

जैन परम्परा में क्रिया-विधि आदि धार्मिक अनुष्ठान कर्म क्षय के हेतु से मोक्ष को लक्ष्य में रखकर किए जाते हैं।

साध्वीश्री ने योग मुद्राओं का मानसिक, शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से क्या लाभ होता है? इसका उल्लेख भी बहुत अच्छी तरह से किया है।

साध्वी सौम्यगुणाजी ने निःसंदेह चिंतन की गहराई में जाकर इस शोध प्रबन्ध की रचना की है, जो अभिनंदन के योग्य है।

मुझे आशा है कि विद्वद गण इस शोध प्रबन्ध का सुंदर लाभ उठायेंगे।

मेरी साध्वीजी के प्रति शुभकामना है कि श्रुत साधना में और अभिवृद्धि प्राप्त करें।

आचार्य पद्मसागर सूरि

विनयाद्यनेक गुणगण गरीमायमाना विदुषी साध्वी श्री शशिप्रभा श्रीजी एवं सौम्यगुणा श्रीजी आदि सपरिवार सादर अनुवन्दना सुखशाता के साथ।

आप शाता में होंगे। आपकी संयम यात्रा के साथ ज्ञान यात्रा अविरत चल रही होगी।

आप जैन विधि विधानों के विषय में शोध प्रबंध लिख रहे हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई।

ज्ञान का मार्ग अनंत है। इसमें ज्ञानियों के तात्पर्यार्थ के साथ प्रामाणिकता पूर्ण व्यवहार होना आवश्यक रहेगा।

आप इस कार्य में सुंदर कार्य करके ज्ञानोपासना द्वारा स्वश्रेय प्राप्त करें ऐसी शासन देव से प्रार्थना है।

आचार्य राजशेखर सूरि
भद्रावती तीर्थ

महत्तरा श्रमणीवर्या श्री शशिप्रभाश्री जी
योग अनुवंदना!

आपके द्वारा प्रेषित पत्र प्राप्त हुआ। इसी के साथ 'शोध प्रबन्ध सार' को देखकर ज्ञात हुआ कि आपकी शिष्या साध्वी सौम्यगुणा श्री द्वारा किया गया बृहदस्तरीय शोध कार्य जैन समाज एवं श्रमण-श्रमणी वर्ग हेतु उपयोगी जानकारी का कारण बनेगा।

आपका प्रयास सराहनीय है।

श्रुत भक्ति एवं ज्ञानाराधना स्वपर के आत्म कल्याण का कारण बने यही शुभाशीर्वाद।

आचार्य रत्नाकरसूरि

जो कर रहे स्व-पर उपकार
अन्तर्हृदय से उनको अमृत उद्गार

मानव जीवन का प्रासाद विविधता की बहुविध पृष्ठ भूमियों पर आधृत है। यह न तो सरल सीधा राजमार्ग (Straight like highway)

है न पर्वत का सीधा चढ़ाव (ascent) न घाटी का उतार (descent) है अपितु यह सागर की लहर (sea-wave) के समान गतिशील और उतार-चढ़ाव से युक्त है। उसके जीवन की गति सदैव एक जैसी नहीं रहती। कभी चढ़ाव (Ups) आते हैं तो कभी उतार (Downs) और कभी कोई अवरोध (Speed Breaker) आ जाता है तो कभी कोई (trun) भी आ जाता है। कुछ अवरोध और मोड़ तो इतने खतरनाक (sharp) और प्रबल होते हैं कि मानव की गति-प्रगति और सन्मति लड़खड़ा जाती है, रुक जाती है इन बदलती हुई परिस्थितियों के साथ अनुकूल समायोजन स्थापित करने के लिए जैन दर्शन के आप्त मनीषियों ने प्रमुखतः दो प्रकार के विधि-विधानों का उल्लेख किया है— 1. बाह्य विधि-विधान 2. आन्तरिक विधि-विधान।

बाह्य विधि-विधान के मुख्यतः चार भेद हैं— 1. जातीय विधि-विधान 2. सामाजिक विधि-विधान 3. वैधानिक विधि-विधान 4. धार्मिक विधि-विधान।

1. जातीय विधि-विधान— जाति की समुत्कर्षता के लिए अपनी-अपनी जाति में एक मुखिया या प्रमुख होता है जिसके आदेश को स्वीकार करना प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य है। मुखिया नैतिक जीवन के विकास हेतु उचित-अनुचित विधि-विधान निर्धारित करता है। उन विधि-विधानों का पालन करना ही नैतिक चेतना का मानदण्ड माना जाता है।

2. सामाजिक विधि-विधान— नैतिक जीवन को जीवंत बनाए रखने के लिए समाज अनेकानेक आचार-संहिता का निर्धारण करता है। समाज द्वारा निर्धारित कर्त्तव्यों की आचार-संहिता को ज्यों का त्यों चुपचाप स्वीकार कर लेना ही नैतिक प्रतिमान है। समाज में पीढ़ियों से चले आने वाले सज्जन पुरुषों का अच्छा आचरण या व्यवहार समाज का विधि-विधान कहलाता है। जो इन विधि-विधानों का आचरण करता है, वह पुरुष सत्पुरुष बनने की पात्रता का विकास करता है।

3. वैधानिक विधि-विधान— अनैतिकता-अनाचार जैसी हीन प्रवृत्तियों से मुक्त करवाने हेतु राज सत्ता के द्वारा अनेकविध विधि-विधान बनाए

जाते हैं। इन विधि-विधानों के अन्तर्गत 'यह करना उचित है' अथवा 'यह करना चाहिए' आदि तथ्यों का निरूपण रहता है। राज सत्ता द्वारा आदेशित विधि-विधान का पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। इन नियमों का पालन करने से चेतना अशुभ प्रवृत्तियों से अलग रहती है।

4. **धार्मिक विधि-विधान**— इसमें आप्त पुरुषों के आदेश-निर्देश, विधि-निषेध, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य निर्धारित रहते हैं। जैन दर्शन में "आणाए धम्मो" कहकर इसे स्पष्ट किया गया है। जैनागमों में साधक के लिए जो विधि-विधान या आचार निश्चित किए गये हैं, यदि उनका पालन नहीं किया जाता है तो आप्त के अनुसार यह कर्म अनैतिकता की कोटि में आता है। धार्मिक विधि-विधान जो अर्हत् आदेशानुसार है उसका धर्माचरण करता हुआ वीर साधक अकुतोभय हो जाता है अर्थात वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न हो, वैसा व्यवहार नहीं करता। यही सद्व्यवहार धर्म है तथा यही हमारे कर्मों के नैतिक मूल्यांकन की कसौटी है। तीर्थंकरोपदिष्ट विधि-निषेध मूलक विधानों को नैतिकता एवं अनैतिकता का मानदण्ड माना गया है।

लौकिक एषणाओं से विमुक्त, अरहन्त प्रवाह में विलीन; अप्रमत्त स्वाध्याय रसिका साध्वी रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन वाङ्मय की अनमोल कृति खरतरगच्छाचार्य श्री जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित **विधिमार्गप्रपा** में गुम्फित जाज्वल्यमान विषयों पर अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन को मुख्यतः चार भाग (23 खण्डों) में वर्गीकृत करने का अतुलनीय कार्य किया है। शोध ग्रन्थ के अनुशीलन से यह स्पष्टतः हो जाता है कि साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने चेतना के ऊर्ध्वीकरण हेतु प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में जिन आज्ञा का निरूपण किसी परम्परा के दायरे से नहीं प्रज्ञा की कसौटी पर कस कर किया है। प्रस्तुत कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि हर पंक्ति प्रज्ञा के आलोक से जगमगा रही है। बुद्धिवाद के इस युग में विधि-विधान को एक नव्य-भव्य स्वरूप प्रदान करने का सुन्दर, समीचीन, समुचित प्रयास किया गया है। आत्म

पिपासुओं के लिए एवं अनुसन्धित्सुओं के लिए यह श्रुत निधि आत्म सम्मानार्जन, भाव परिष्कार और आन्तरिक औज्ज्वल्य की निष्पत्ति में सहायक सिद्ध होगी।

अल्प समयावधि में साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने जिस प्रमाणिकता एवं दार्शनिकता से जिन वचनों को परम्परा के आग्रह से रिक्त तथा साम्प्रदायिक मान्यताओं के दुराग्रह से मुक्त रखकर सर्वग्राही श्रुत का निष्पादन जैन वाङ्मय के क्षितिज पर नव्य नक्षत्र के रूप में किया है। आप श्रुत साभिरुचि में निरन्तर प्रवहमान बनकर अपने निर्णय, विशुद्ध विचार एवं निर्मल प्रज्ञा के द्वारा सदैव सरल, सरस और सुगम अभिनव ज्ञान रश्मियों को प्रकाशित करती रहें। यही अन्तःकरण आशीर्वाद सह अनेकशः अनुमोदना... अभिनंदन।

जिनमहोदय सागर सूरि चरणरज
मुनि पीयूष सागर

जैन विधि की अनमोल निधि

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि साध्वी डॉ. सौम्यगुणा श्रीजी म.सा. द्वारा "जैन-विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन" इस विषय पर सुविस्तृत शोध प्रबन्ध सम्पादित किया गया है। वस्तुतः किसी भी कार्य या व्यवस्था के सफल निष्पादन में विधि (Procedure) का अप्रतिम महत्त्व है। प्राचीन कालीन संस्कृतियाँ चाहे वह वैदिक हो या श्रमण, इससे अछूती नहीं रही। श्रमण संस्कृति में अग्रगण्य है– जैन संस्कृति। इसमें विहित विविध विधि-विधान वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक जीवन के विकास में अपनी महती भूमिका अदा करते हैं। इसी तथ्य को प्रतिपादित करता है प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध।

इस शोध प्रबन्ध की प्रकाशन वेला में हम साध्वीश्री के कठिन प्रयत्न की आत्मिक अनुमोदना करते हैं। निःसंदेह, जैन विधि की इस अनमोल निधि से श्रावक-श्राविका, श्रमण-श्रमणी, विद्वान-विचारक सभी लाभान्वित होंगे। यह विश्वास करते हैं कि वर्तमान युवा पीढ़ी के लिए

भी यह कृति अति प्रासंगिक होगी, क्योंकि इसके माध्यम से उन्हें आचार-पद्धति यानि विधि-विधानों का वैज्ञानिक पक्ष भी ज्ञात होगा और वह अधिक आचार निष्ठ बन सकेगी।

साध्वीश्री इसी प्रकार जिनशासन की सेवा में समर्पित रहकर स्व-पर विकास में उपयोगी बनें, यही मंगलकामना।

मुनि महेन्द्रसागर
1.2.13 भद्रावती

विदुषी आर्या रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन विधि विधानों पर विविध पक्षीय बृहद शोध कार्य संपन्न किया है। चार भागों में विभाजित एवं 23 खण्डों में वर्गीकृत यह विशाल कार्य निःसंदेह अनुमोदनीय, प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय है।

शासन देव से प्रार्थना है कि उनकी बौद्धिक क्षमता में दिन दूगुनी रात चौगुनी वृद्धि हो। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ज्ञान गुण की वृद्धि के साथ आत्म ज्ञान प्राप्ति में सहायक बनें।

यह शोध ग्रन्थ ज्ञान पिपासुओं की पिपासा को शान्त करे, यही मनोहर अभिलाषा।

महत्तरा मनोहर श्री चरणरज
प्रवर्त्तिनी कीर्तिप्रभा श्रीजी

दूध को दही में परिवर्तित
करना सरल है। जामन डालिए
और दही तैयार हो जाता है।
किन्तु, दही से मक्खन निकालना
कठिन है। इसके लिए दही को
मथना पड़ता है। तब कहीं
जाकर मक्खन प्राप्त होता है।
इसी प्रकार अध्ययन एक
अपेक्षा से सरल है, किन्तु

तुलनात्मक अध्ययन कठिन है।
इसके लिए कई शास्त्रों को
मथना पड़ता है।
साध्वी सौम्यगुणा श्री ने जैन
विधि-विधानों पर रचित साहित्य
का मंथन करके एक सुंदर चिंतन
प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया है
वह अत्यंत अनुमोदनीय एवं
प्रशंसनीय है।
शुभकामना व्यक्त
करती हूँ कि यह
शास्त्रमंथन अनेक साधकों
के कर्मबंधन तोड़ने में
सहायक बने।

साध्वी संवेगनिधि

सुश्रावक श्री कान्तिलालजी मुकीम द्वारा शोध प्रबंध सार संप्राप्त हुआ। विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाजी के शोधसार ग्रन्थ को देखकर ही कल्पना होने लगी कि शोध ग्रन्थ कितना विराट्काय होगा। वर्षों के अथक परिश्रम एवं सतत रुचि पूर्वक किए गए कार्य का यह सुफल है।

वैदुष्य सह विशालता इस शोध ग्रन्थ की विशेषता है।

हमारी हार्दिक शुभकामना है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका बहुमुखी विकास हो! जिनशासन के गगन में उनकी प्रतिभा, पवित्रता एवं पुण्य का दिव्यनाद हो। किं बहुना!

साध्वी मणिप्रभा श्री
भद्रावती तीर्थ

अन्तर्नाद

मनुष्य जीवन की विविध साधनाओं में तप का अत्यंत महत्त्व है। देहधारी प्राणियों में तप की साधना केवल मनुष्य ही कर सकता है क्योंकि वह शुभ कर्म करने में स्वतन्त्र है तथा उसकी प्राकृतिक एवं आध्यात्मिक क्षमता भी उस स्तर की है जबकि अन्य गति के जीवों को न तो उस तरह का वातावरण प्राप्त होता है और न ही वैसी शारीरिक क्षमता एवं समझ शक्ति होती है।

आज का व्यक्ति चार्वाक दर्शन का सिद्धान्त– **यावत् जीवेत सुखं जीवेत, ऋणं कृत्वा घृतं पीबेत, भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।** अर्थात जब तक जीयो सुख से जीयो, ऋण लेकर भी घी पीओ, एक दिन यह शरीर राख के समान हो जाएगा, इस भ्रामक मान्यता से ग्रस्त है। तपश्चरण शरीर, मन एवं आत्मा तीनों के लिए अनिवार्य है। वर्तमान विज्ञान निरोग शरीर के लिए तपश्चर्या को आवश्यक मानता है।

गरम पानी, उबली हुई सब्जी, शक्कर, नमक, घी आदि पर नियंत्रण डॉक्टरों के अनुसार आवश्यक है और यही तथ्य हमारे पूर्वाचार्यों एवं गीतार्थ गुरुओं ने कहे हैं परन्तु आज विज्ञान और डॉक्टर ही हमारे लिए भगवान तुल्य हैं। यदि कोई जिनवाणी के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास रखते हुए तदनुसार आचरण करने लगे तो उसे डॉक्टरों के पास जाने की आवश्यकता सामान्यतया नहीं पड़ेगी। इस पंचम आरे में तो तप साधना भाव शुद्धि का भी श्रेष्ठ उपाय है। इसलिए हमें छोटे-बड़े विविध तपों का आचरण करते हुए सतत कर्म निर्जरा करते रहना चाहिए।

विदुषी आर्य्या सौम्यगुणाजी ने इस पुस्तिका में भगवान आदिनाथ के युग से लेकर अब तक प्राप्त समग्र तपों का प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत किया है और इस विषय में लगभग यह प्रथम शोध कार्य है। इस तरह का अद्भुत कार्य कहीं भी उपलब्ध हो, ऐसा पढ़ने में नहीं आया है। इसमें तप विधियों के साथ-साथ तपों का वर्गीकरण, तप सारणी, तप उद्देश्य आदि का हृदयस्पर्शी वर्णन किया गया है। इस कारण सामान्य वर्ग के लिए भी यह पुस्तक सदैव उपयोगी सिद्ध होगी।

साध्वीजी के अथक परिश्रम एवं गुरु समर्पण का ही प्रभाव है कि वह अनछुए विषयों पर कार्य में सफलता प्राप्त कर रही हैं। वैसे भी सौम्याजी का प्रारम्भ से ही अध्ययन-अध्यापन के प्रति आन्तरिक उत्साह रहा है और वह ज्ञान योग को साधु जीवन की सफलता का मुख्य आधार मानती हैं। यही वजह है कि आज 30 वर्ष के दीक्षा पर्याय में भी लोकैषणा एवं लोक परिचय की भावना से दूर हैं।

मैं उनके लिए मंगल कामना करती हूँ कि वे गुरुवर्य्या श्री के पदचिन्हों का इसी तरह अनुकरण करते हुए शासन प्रेमियों को गूढ़ रहस्यों एवं अस्पष्ट तथ्यों से आलोकित करती रहें।

मंगलप्रार्थी
आर्य्या शशिप्रभा श्री

दीक्षा गुरु प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा. एक परिचय

रजताभ रजकणों से रंजित राजस्थान असंख्य कीर्ति गाथाओं का वह रश्मि पुंज है जिसने अपनी आभा के द्वारा संपूर्ण धरा को देदीप्यमान किया है। इतिहास के पन्नों में जिसकी पावन पाण्डुलिपियाँ अंकित है ऐसे रंगीले राजस्थान का विश्रुत नगर है जयपुर। इस जौहरियों की नगरी ने अनेक दिव्य रत्न इस वसुधा को अर्पित किए। उन्हीं में से कोहिनूर बनकर जैन संघ की आभा को दीप्त करने वाला नाम है– पूज्या प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.।

आपश्री इस कलियुग में सतयुग का बोध कराने वाली सहज साधिका थी। चतुर्थ आरे का दिव्य अवतार थी। जयपुर की पुण्य धरा से आपका विशेष सम्बन्ध रहा है। आपके जीवन की अधिकांश महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जैसे– जन्म, विवाह, दीक्षा, देह विलय आदि इसी वसुधा की साक्षी में घटित हुए।

आपका जीवन प्राकृतिक संयोगों का अनुपम उदाहरण था। जैन परम्परा के तेरापंथी आम्नाय में आपका जन्म, स्थानकवासी परम्परा में विवाह एवं मन्दिरमार्गी खरतर परम्परा में प्रव्रज्या सम्पन्न हुई। आपके जीवन का यही त्रिवेणी संगम रत्नत्रय की साधना के रूप में जीवन्त हुआ।

आपका जन्म वैशाखी बुद्ध पूर्णिमा के पर्व दिवस के दिन हुआ। आप उन्हीं के समान तत्त्ववेत्ता, अध्यात्म योगी, प्रज्ञाशील साधक थी। सज्जनता, मधुरता, सरलता, सहजता, संवेदनशीलता, परदु:खकातरता आदि गुण तो आप में जन्मत: परिलक्षित होते थे। इसी कारण आपका नाम सज्जन रखा गया और यही नाम दीक्षा के बाद भी प्रवर्त्तित रहा।

संयम ग्रहण हेतु दीर्घ संघर्ष करने के बावजूद भी आपने विनय, मृदुता, साहस एवं मनोबल डिगने नहीं दिया। अन्तत: 35 वर्ष की आयु में पूज्या प्रवर्त्तिनी ज्ञान श्रीजी म.सा. के चरणों में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीवान परिवार के राजशाही ठाठ में रहने के बाद भी संयमी जीवन का हर छोटा-बड़ा कार्य आप अत्यंत सहजता पूर्वक करती थी। छोटे-बड़े सभी की

सेवा हेतु सदैव तत्पर रहती थी। आपका जीवन सद्गुणों से युक्त विद्वत्ता की दिव्य माला था। आप में विद्यमान गुण शास्त्र की निम्न पंक्तियों को चरितार्थ करते थे-

शीलं परहितासक्ति, रनुत्सेकः क्षमा धृतिः।
अलोभश्चेति विद्यायाः, परिपाकोज्ज्वलं फलः ।।

अर्थात शील, परोपकार, विनय, क्षमा, धैर्य, निर्लोभता आदि विद्या की पूर्णता के उज्ज्वल फल हैं।

अहिंसा, तप साधना, सत्यनिष्ठा, गम्भीरता, विनम्रता एवं विद्वानों के प्रति असीम श्रद्धा उनकी विद्वत्ता की परिधि में शामिल थे। वे केवल पुस्तकें पढ़कर नहीं अपितु उन्हें आचरण में उतार कर महान बनी थी। आपको शब्द और स्वर की साधना का गुण भी सहज उपलब्ध था।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात आप 20 वर्षों तक गुरु एवं गुरु भगिनियों की सेवा में जयपुर रही। तदनन्तर कल्याणक भूमियों की स्पर्शना हेतु पूर्वी एवं उत्तरी भारत की पदयात्रा की। आपश्री ने 65 वर्ष की आयु और उसमें भी ज्येष्ठ महीने की भयंकर गर्मी में सिद्धाचल तीर्थ की नव्वाणु यात्रा कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार आदि क्षेत्रों में धर्म की सरिता प्रवाहित करते हुए भी आप सदैव ज्ञानदान एवं ज्ञानपान में संलग्न रहती थी। इसी कारण लोक परिचय, लोकैषणा, लोकाशंसा आदि से अत्यंत दूर रही।

आपश्री प्रखर वक्ता, श्रेष्ठ साहित्य सर्जिका, तत्त्व चिंतिका, आशु कवयित्री एवं बहुभाषाविद थी। विद्वदवर्ग में आप सर्वोत्तम स्थान रखती थी। हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी आदि अनेक भाषाओं पर आपका सर्वाधिकार था। जैन दर्शन के प्रत्येक विषय का आपको मर्मस्पर्शी ज्ञान था। आप ज्योतिष, व्याकरण, अलंकार, साहित्य, इतिहास, शकुन शास्त्र, योग आदि विषयों की भी परम वेत्ता थी।

उपलब्ध सहस्र रचनाएँ तथा अनुवादित सम्पादित एवं लिखित साहित्य आपकी कवित्व शक्ति और विलक्षण प्रज्ञा को प्रकट करते हैं।

प्रभु दर्शन में तन्मयता, प्रतिपल आत्म रमणता, स्वाध्याय मग्नता, अध्यात्म लीनता, निस्पृहता, अप्रमत्तता, पूज्यों के प्रति लघुता एवं छोटों के प्रति मृदुता आदि गुण आपश्री में बेजोड़ थे। हठवाद, आग्रह, तर्क-वितर्क,

अहंकार, स्वार्थ भावना का आप में लवलेश भी नहीं था। सभी के प्रति समान स्नेह एवं मृदु व्यवहार, निरपेक्षता एवं अंतरंग विरक्तता के कारण आप सर्वजन प्रिय और आदरणीय थी।

आपकी गुण गरिमा से प्रभावित होकर गुरुजनों एवं विद्वानों द्वारा आपको आगम ज्योति, शास्त्र मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, अध्यात्म योगिनी आदि सार्थक पदों से अलंकृत किया गया। वहीं सकल श्री संघ द्वारा आपको साध्वी समुदाय में सर्वोच्च प्रवर्त्तिनी पद से भी विभूषित किया गया।

आपश्री के उदात्त व्यक्तित्व एवं कर्मशील कर्तृत्व से प्रभावित हजारों श्रद्धालुओं की आस्था को 'श्रमणी' अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में लोकार्पित किया गया। खरतरगच्छ परम्परा में अब तक आप ही एक मात्र ऐसी साध्वी हैं जिन पर अभिनन्दन ग्रन्थ लिखा गया है।

आप में समस्त गुण चरम सीमा पर परिलक्षित होते थे। कोई सद्गुण ऐसा नहीं था जिसके दर्शन आप में नहीं होते हो। जिसने आपको देखा वह आपका ही होकर रह गया।

आपके निरपेक्ष, निस्पृह एवं निरासक्त जीवन की पूर्णता जैन एवं जैनेतर दोनों परम्पराओं में मान्य, शाश्वत आराधना तिथि **'मौन एकादशी'** पर्व के दिन हुई। इस पावन तिथि के दिन आपने देह का त्याग कर सदा के लिए मौन धारण कर लिया। आपके इस समाधिमरण को श्रेष्ठ मरण के रूप में सिद्ध करते हुए उपाध्याय मणिप्रभ सागरजी म.सा. ने लिखा है–

महिमा तेरी क्या गाये हम, दिन कैसा स्वीकार किया।
मौन ग्यारस माला जपते, मौन सर्वथा धार लिया
गुरुवर्य्या तुम अमर रहोगी, साधक कभी न मरते हैं।।

आज परम पूज्या संघरत्ना शशिप्रभा श्रीजी म.सा. आपके मंडल का सम्यक संचालन कर रही हैं। यद्यपि आपका विचरण क्षेत्र अल्प रहा परंतु आज आपका नाम दिग्दिगन्त व्याप्त है। आपके नाम स्मरण मात्र से ही हर प्रकार की Tension एवं विपदाएँ दूर हो जाती है।

●

शिक्षा गुरु पूज्य शशिप्रभा श्रीजी म.सा. एक परिचय

'धोरों की धरती' के नाम से विख्यात राजस्थान अगणित यशोगाथाओं का उद्भव स्थल है। इस बहुरत्ना वसुंधरा पर अनेकशः वीर योद्धाओं, परमात्म भक्तों एवं ऋषि-महर्षियों का जन्म हुआ है। इसी रंग-रंगीले राजस्थान की परम पुण्यवंती साधना भूमि है श्री फलौदी। नयन रम्य जिनालय, दादाबाड़ियों एवं स्वाध्याय गुंज से शोभायमान उपाश्रय इसकी ऐतिहासिक धर्म समृद्धि एवं शासन समर्पण के प्रबल प्रतीक हैं। इस मातृभूमि ने अपने उर्वरा से कई अमूल्य रत्न जिनशासन की सेवा में अर्पित किए हैं। चाहे फिर वह साधु-साध्वी के रूप में हो या श्रावक-श्राविका के रूप में। वि.सं. 2001 की भाद्रकृष्णा अमावस्या को धर्मनिष्ठ दानवीर ताराचंदजी एवं सरल स्वभावी बालादेवी गोलेछा के गृहांगण में एक बालिका की किलकारियां गूंज रही थी। अमावस्या के दिन उदित हुई यह किरण भविष्य में जिनशासन की अनुपम किरण बनकर चमकेगी यह कौन जानता था? कहते हैं सज्जनों के सम्पर्क में आने से दुर्जन भी सज्जन बन जाते हैं तब सम्यकदृष्टि जीव तो निःसन्देह सज्जन का संग मिलने पर स्वयमेव ही महानता को प्राप्त कर लेते हैं।

किरण में तप त्याग और वैराग्य के भाव जन्मजात थे। इधर पारिवारिक संस्कारों ने उसे अधिक उफान दिया। पूर्वोपार्जित सत्संस्कारों का जागरण हुआ और वह भुआ महाराज उपयोग श्रीजी के पथ पर अग्रसर हुई। अपने बाल मन एवं कोमल तन को गुरु चरणों में समर्पित कर 14 वर्ष की अल्पायु में ही किरण एक तेजस्वी सूर्य रश्मि से शीतल शशि के रूप में प्रवर्त्तित हो गई। आचार्य श्री कवीन्द्र सागर सूरीश्वरजी म.सा. की निश्रा में मरूधर ज्योति मणिप्रभा श्रीजी एवं आपकी बड़ी दीक्षा एक साथ सम्पन्न हुई।

इसे पुण्य संयोग कहें या गुरु कृपा की फलश्रुति? आपने 32 वर्ष के गुरु सान्निध्य काल में मात्र एक चातुर्मास गुरुवर्य्याश्री से अलग किया और वह भी पूज्या प्रवर्त्तिनी विचक्षण श्रीजी म.सा. की आज्ञा से। 32 वर्ष की सान्निध्यता में आप कुल 32 महीने भी गुरु सेवा से वंचित नहीं रही। आपके जीवन की यह

विशेषता पूज्यवरों के प्रति सर्वात्मना समर्पण, अगाध सेवा भाव एवं गुरुकुल वास के महत्त्व को इंगित करती है।

आपश्री सरलता, सहजता, सहनशीलता, सहृदयता, विनम्रता, सहिष्णुता, दीर्घदर्शिता आदि अनेक दिव्य गुणों की पुंज हैं। संयम पालन के प्रति आपकी निष्ठा एवं मनोबल की दृढ़ता यह आपके जिन शासन समर्पण की सूचक है। आपका निश्छल, निष्कपट, निर्दम्भ व्यक्तित्व जनमानस में आपकी छवि को चिरस्थापित करता है। आपश्री का बाह्य आचार जितना अनुमोदनीय है, आंतरिक भावों की निर्मलता भी उतनी ही अनुशंसनीय है। आपकी इसी गुणवत्ता ने कई पथ भ्रष्टों को भी धर्माभिमुख किया है। आपका व्यवहार हर वर्ग के एवं हर उम्र के व्यक्तियों के साथ एक समान रहता है। इसी कारण आप आबाल वृद्ध सभी में समादृत हैं। हर कोई बिना किसी संकोच या हिचक के आपके समक्ष अपने मनोभाव अभिव्यक्त कर सकता है।

शास्त्रों में कहा गया है 'सन्त हृदय नवनीत समाना'– आपका हृदय दूसरों के लिए मक्खन के समान कोमल और सहिष्णु है। वहीं इसके विपरीत आप स्वयं के लिए वज्र से भी अधिक कठोर हैं। आपश्री अपने नियमों के प्रति अत्यन्त दृढ़ एवं अतुल मनोबली हैं। आज जीवन के लगभग सत्तर बसंत पार करने के बाद भी आप युवाओं के समान अप्रमत्त, स्फुर्तिमान एवं उत्साही रहती हैं। विहार में आपश्री की गति समस्त साध्वी मंडल से अधिक होती है।

आहार आदि शारीरिक आवश्यकताओं को आपने अल्पायु से ही सीमित एवं नियंत्रित कर रखा है। नित्य एकाशना, पुरिमड्ढ प्रत्याख्यान आदि के प्रति आप अत्यंत चुस्त हैं। जिस प्रकार सिंह अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने हेतु पूर्णतः सचेत एवं तत्पर रहता है वैसे ही आपश्री विषय-कषाय रूपी शत्रुओं का दमन करने में सतत जागरूक रहती हैं। विषय वर्धक अधिकांश विगय जैसे– मिठाई, कढ़ाई, दही आदि का आपके सर्वथा त्याग है।

आपश्री आगम, धर्म दर्शन, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि विविध विषयों की ज्ञाता एवं उनकी अधिकारिणी है। व्यावहारिक स्तर पर भी आपने एम.ए. के समकक्ष दर्शनाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की है। अध्ययन के संस्कार आपको गुरु परम्परा से वंशानुगत रूप में प्राप्त हुए हैं। आपकी निश्रागत गुरु भगिनियों एवं शिष्याओं के अध्ययन, संयम पालन तथा आत्मोकर्ष के प्रति आप सदैव सचेष्ट

रहती हैं। आपश्री एक सफल अनुशास्ता हैं यही वजह है कि आपकी देखरेख में सज्जन मण्डल की फुलवारी उन्नति एवं उत्कर्ष को प्राप्त कर रही हैं।

तप और जप आपके जीवन का अभिन्न अंग है। 'ॐ ह्रीं अर्हं' पद की रटना प्रतिपल आपके रोम-रोम में गुंजायमान रहती है। जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आप तदनुकूल मन:स्थिति बना लेती हैं। आप हमेशा कहती हैं कि

जो-जो देखा वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

आपकी परमात्म भक्ति एवं गुरुदेव के प्रति प्रवर्धमान श्रद्धा दर्शनीय है। आपका आगमानुरूप वर्तन आपको निसन्देह महान पुरुषों की कोटी में उपस्थित करता है। आपश्री एक जन प्रभावी वक्ता एवं सफल शासन सेविका हैं।

आपश्री की प्रेरणा से जिनशासन की शाश्वत परम्परा को अक्षुण्ण रखने में सहयोगी अनेकश: जिनमंदिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार हुआ है। श्रुत साहित्य के संवर्धन में आपश्री के साथ आपकी निश्रारत साध्वी मंडल का भी विशिष्ट योगदान रहा है। अब तक 25-30 पुस्तकों का लेखन-संपादन आपकी प्रेरणा से साध्वी मंडल द्वारा हो चुका है एवं अनेक विषयों पर कार्य अभी भी गतिमान है।

भारत के विविध क्षेत्रों का पद भ्रमण करते हुए आपने अनेक क्षेत्रों में धर्म एवं ज्ञान की ज्योति जागृत की है। राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, छ.ग., यू.पी., बिहार, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, झारखंड, आन्ध्रप्रदेश आदि अनेक प्रान्तों की यात्रा कर आपने उन्हें अपनी पदरज से पवित्र किया है। इन क्षेत्रों में हुए आपके ऐतिहासिक चातुर्मासों की चिरस्मृति सभी के मानस पटल पर सदैव अंकित रहेगी। अन्त में यही कहूँगी-

चिन्तन में जिसके हो क्षमता, वाणी में सहज मधुरता हो।
आचरण में संयम झलके, वह श्रद्धास्पद बन जाता है।
जो अन्तर में ही रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।
जो भीतर में ही भ्रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।।

ऐसी विरल साधिका आर्यारत्न पूज्याश्री के चरण सरोजों में मेरा जीवन सदा भ्रमरवत् गुंजन करता रहे, यही अन्तरकामना।

कैसे पाई सौम्याजी ने अपनी मंजिल

साध्वी प्रियदर्शनाश्री

आज सौम्यगुणाजी को सफलता के इस उत्तुंग शिखर पर देखकर ऐसा लग रहा है मानो चिर रात्रि के बाद अब यह मनभावन अरुणिम वेला उदित हुई हो। आज इस सफलता के पीछे रहा उनका अथक परिश्रम, अनेकशः बाधाएँ, विषय की दुरूहता एवं दीर्घ प्रयास के विषय में सोचकर ही मन अभिभूत हो जाता है। जिस प्रकार किसान बीज बोने से लेकर फल प्राप्ति तक अनेक प्रकार से स्वयं को तपाता एवं खपाता है और तब जाकर उसे फल की प्राप्ति होती है या फिर जब कोई माता नौ महीने तक गर्भ में बालक को धारण करती है तब उसे मातृत्व सुख की प्राप्ति होती है ठीक उसी प्रकार सौम्यगुणाजी ने भी इस कार्य की सिद्धि हेतु मात्र एक या दो वर्ष नहीं अपितु सत्रह वर्ष तक निरन्तर कठिन साधना की है। इसी साधना की आँच में तपकर आज 23 Volumes के बृहद् रूप में इनका स्वर्णिम कार्य जन ग्राह्य बन रहा है।

आज भी एक-एक घटना मेरे मानस पटल पर फिल्म के रूप में उभर रही है। ऐसा लगता है मानो अभी की ही बात हो, सौम्याजी को हमारे साथ रहते हुए 28 वर्ष होने जा रहे हैं और इन वर्षों में इन्हें एक सुन्दर सलोनी गुड़िया से एक विदुषी शासन प्रभाविका, गूढ़ान्वेषी साधिका बनते देखा है। एक पाँचवीं पढ़ी हुई लड़की आज D.LIt की पदवी से विभूषित होने वाली है। वह भी कोई सामान्य D.Lit. नहीं, 22-23 भागों में किया गया एक बृहद् कार्य और जिसका एक-एक भाग एक शोध प्रबन्ध (Thesis) के समान है। अब तक शायद ही किसी भी शोधार्थी ने डी.लिट् कार्य इतने अधिक Volumes में सम्पन्न किया होगा। लाडनूं विश्वविद्यालय की प्रथम डी.लिट्. शोधार्थी सौम्याजी के इस कार्य ने विश्वविद्यालय के ऐतिहासिक कार्यों में स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ते हुए श्रेष्ठतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

सत्रह वर्ष पहले हम लोग पूज्या गुरुवर्य्याश्री के साथ पूर्वी क्षेत्र की स्पर्शना कर रहे थे। बनारस में डॉ. सागरमलजी द्वारा आगम ग्रन्थों के गूढ़ रहस्यों को जानने

का यह एक स्वर्णिम अवसर था अतः सन् 1995 में गुर्वाज्ञा से मैं, सौम्याजी एवं नूतन दीक्षित साध्वीजी ने भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी की ओर अपने कदम बढ़ाए। शिखरजी आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए हम लोग धर्म नगरी काशी पहुँचे।

वाराणसी स्थित पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वहाँ के मन्दिरों एवं पंडितों के मंत्रनाद से दूर नीरव वातावरण में अद्भुत शांति का अनुभव करवा रहा था। अध्ययन हेतु मनोज्ञ एवं अनुकूल स्थान था। संयोगवश मरूधर ज्योति पूज्या मणिप्रभा श्रीजी म.सा. की निश्रावर्ती, मेरी बचपन की सखी पूज्या विद्युतप्रभा श्रीजी आदि भी अध्ययनार्थ वहाँ पधारी थी।

डॉ. सागरमलजी से विचार विमर्श करने के पश्चात आचार्य जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा पर शोध करने का निर्णय लिया गया। सन् 1973 में पूज्य गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. बंगाल की भूमि पर पधारी थी। स्वाध्याय रसिक आगमज्ञ श्री अगरचन्दजी नाहटा, श्री भँवलालजी नाहटा से पूज्याश्री की पारस्परिक स्वाध्याय चर्चा चलती रहती थी। एकदा पूज्याश्री ने कहा कि मेरी हार्दिक इच्छा है जिनप्रभसूरिकृत विधिमार्गप्रपा आदि ग्रन्थों का अनुवाद हो। पूज्याश्री योग-संयोग वश उसका अनुवाद नहीं कर पाई। विषय का चयन करते समय मुझे गुरुवर्य्या श्री की वही इच्छा याद आई या फिर यह कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सौम्याजी की योग्यता देखते हुए शायद पूज्याश्री ने ही मुझे इसकी अन्तस् प्रेरणा दी।

यद्यपि यह ग्रंथ विधि-विधान के क्षेत्र में बहु उपयोगी था परन्तु प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में आबद्ध होने के कारण उसका हिन्दी अनुवाद करना आवश्यक हो गया। सौम्याजी के शोध की कठिन परीक्षाएँ यहीं से प्रारम्भ हो गई। उन्होंने सर्वप्रथम प्राकृत व्याकरण का ज्ञान किया। तत्पश्चात दिन-रात एक कर पाँच महीनों में ही इस कठिन ग्रंथ का अनुवाद अपनी क्षमता अनुसार कर डाला। लेकिन यहीं पर समस्याएँ समाप्त नहीं हुई। सौम्यगुणाजी जो कि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से दर्शनाचार्य (एम.ए.) थीं, बनारस में पी-एच.डी. हेतु आवेदन नहीं कर सकती थी। जिस लक्ष्य को लेकर आए थे वह कार्य पूर्ण नहीं होने से मन थोड़ा विचलित हुआ परन्तु विश्वविद्यालय के नियमों के कारण हम कुछ भी करने में असमर्थ थे अतः पूज्य गुरुवर्य्याश्री के चरणों में पहुँचने हेतु पुनः कलकत्ता की ओर प्रयाण किया। हमारा वह चातुर्मास संघ आग्रह के कारण पुनः कलकत्ता नगरी

में हुआ। वहाँ से चातुर्मास पूर्णकर धर्मानुरागी जनों को शीघ्र आने का आश्वासन देते हुए पूज्याश्री के साथ जयपुर की ओर विहार किया। जयपुर में आगम ज्योति, पूज्या गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की समाधि स्थली मोहनबाड़ी में मूर्ति प्रतिष्ठा का आयोजन था अत: उग्र विहार कर हम लोग जयपुर पहुँचें। बहुत ही सुन्दर और भव्य रूप में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जयपुर संघ के अति आग्रह से पूज्याश्री एवं सौम्यगुणाजी का चातुर्मास जयपुर ही हुआ। जयपुर का स्वाध्यायी श्रावक वर्ग सौम्याजी से काफी प्रभावित था। यद्यपि बनारस में पी-एच.डी. नहीं हो पाई थी किन्तु सौम्याजी का अध्ययन आंशिक रूप में चालू था। उसी बीच डॉ. सागरमलजी के निर्देशानुसार जयपुर संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रो. डॉ. शीतलप्रसाद जैन के मार्गदर्शन में धर्मानुरागी श्री नवरतनमलजी श्रीमाल के डेढ़ वर्ष के अथक प्रयास से उनका रजिस्ट्रेशन हुआ। सामाजिक जिम्मेदारियों को संभालते हुए उन्होंने अपने कार्य को गति दी।

पी-एच.डी. का कार्य प्रारम्भ तो कर लिया परन्तु साधु जीवन की मर्यादा, विषय की दुरूहता एवं शोध आदि के विषय में अनुभवहीनता से कई बाधाएँ उत्पन्न होती रही। निर्देशक महोदय दिगम्बर परम्परा के होने से श्वेताम्बर विधि-विधानों के विषय में उनसे भी विशेष सहयोग मिलना मुश्किल था अत: सौम्याजी को जो करना था अपने बलबूते पर ही करना था। यह सौम्याजी ही थी जिन्होंने इतनी बाधाओं और रूकावटों को पार कर इस शोध कार्य को अंजाम दिया।

जयपुर के पश्चात कुशल गुरुदेव की प्रत्यक्ष स्थली मालपुरा में चातुर्मास हुआ। वहाँ पर लाइब्रेरी आदि की असुविधाओं के बीच भी उन्होंने अपने कार्य को पूर्ण करने का प्रयास किया। तदनन्तर जयपुर में एक महीना रहकर महोपाध्याय विनयसागरजी से इसका करेक्शन करवाया तथा कुछ सामग्री संशोधन हेतु डॉ. सागरमलजी को भेजी। यहाँ तक तो उनकी कार्य गति अच्छी रही किन्तु इसके बाद लम्बे विहार होने से उनका कार्य प्राय: अवरूद्ध हो गया। फिर अगला चातुर्मास पालीताणा हुआ। वहाँ पर आने वाले यात्रीगणों की भीड़ और तप साधना-आराधना में अध्ययन नहींवत ही हो पाया। पुन: साधु जीवन के नियमानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर कदम बढ़ाए। रायपुर (छ.ग.) जाने हेतु लम्बे विहारों के चलते वे अपने कार्य को किंचित भी संपादित नहीं कर पा रही थी। रायपुर पहुँचते-पहुँचते Registration की अवधि अन्तिम चरण तक पहुँच चुकी थी अत: चातुर्मास के पश्चात मुदितप्रज्ञा श्रीजी और इन्हें रायपुर छोड़कर शेष लोगों ने अन्य आसपास

के क्षेत्रों की स्पर्शना की। रायपुर निवासी सुनीलजी बोथरा के सहयोग से दो-तीन मास में पूरे काम को शोध प्रबन्ध का रूप देकर उसे सन् 2001 में राजस्थान विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया। येन केन प्रकारेण इस शोध कार्य को इन्होंने स्वयं की हिम्मत से पूर्ण कर ही दिया।

तदनन्तर 2002 का बैंगलोर चातुर्मास सम्पन्न कर मालेगाँव पहुँचे। वहाँ पर संघ के प्रयासों से चातुर्मास के अन्तिम दिन उनका शोध वायवा संपन्न हुआ और उन्हें कुछ ही समय में पी-एच.डी. की पदवी विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई। सन् 1995 बनारस में प्रारम्भ हुआ कार्य सन् 2003 मालेगाँव में पूर्ण हुआ। इस कालावधि के दौरान समस्त संघों को उनकी पी-एच.डी. के विषय में ज्ञात हो चुका था और विषय भी रुचिकर था अत: उसे प्रकाशित करने हेतु विविध संघों से आग्रह होने लगा। इसी आग्रह ने उनके शोध को एक नया मोड़ दिया। सौम्याजी कहती 'मेरे पास बताने को बहुत कुछ है, परन्तु वह प्रकाशन योग्य नहीं है' और सही मायने में शोध प्रबन्ध सामान्य जनता के लिए उतना सुगम नहीं होता अत: गुरुवर्य्या श्री के पालीताना चातुर्मास के दौरान विधिमार्गप्रपा के अर्थ का संशोधन एवं अवान्तर विधियों पर ठोस कार्य करने हेतु वे अहमदाबाद पहुँची। इसी दौरान पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. ने भी इस कार्य का पूर्ण सर्वेक्षण कर उसमें अपेक्षित सुधार करवाए। तदनन्तर L.D. Institute के प्रोफेसर जितेन्द्र भाई, फिर कोबा लाइब्रेरी से मनोज भाई सभी के सहयोग से विधिमार्गप्रपा के अर्थ में रही त्रुटियों को सुधारते हुए उसे नवीन रूप दिया।

इसी अध्ययन काल के दौरान जब वे कोबा में विधि ग्रन्थों का आलोडन कर रही थी तब डॉ. सागरमलजी का बायपास सर्जरी हेतु वहाँ पदार्पण हुआ। सौम्याजी को वहाँ अध्ययनरत देखकर बोले– "आप तो हमारी विद्यार्थी हो, यहाँ क्या कर रही हो? शाजापुर पधारिए मैं यथासंभव हर सहयोग देने का प्रयास करूँगा।" यद्यपि विधि विधान डॉ. सागरमलजी का विषय नहीं था परन्तु उनकी ज्ञान प्रौढ़ता एवं अनुभव शीलता सौम्याजी को सही दिशा देने हेतु पर्याप्त थी। वहाँ से विधिमार्गप्रपा का नवीनीकरण कर वे गुरुवर्य्याश्री के साथ मुम्बई चातुर्मासार्थ गईं। महावीर स्वामी देरासर पायधुनी से विधिप्रपा का प्रकाशन बहुत ही सुन्दर रूप में हुआ।

किसी भी कार्य में बार-बार बाधाएँ आए तो उत्साह एवं प्रवाह स्वत: मन्द हो जाता है, परन्तु सौम्याजी का उत्साह विपरीत परिस्थितियों में भी वृद्धिंगत रहा।

मुम्बई का चातुर्मास पूर्णकर वे शाजापुर गईं। वहाँ जाकर डॉ. साहब ने डी.लिट करने का सुझाव दिया और लाडनूं विश्वविद्यालय के अन्तर्गत उन्हीं के निर्देशन में रजिस्ट्रेशन भी हो गया। यह लाडनूं विश्व भारती का प्रथम डी.लिट. रजिस्ट्रेशन था। सौम्याजी से सब कुछ ज्ञात होने के बाद मैंने उनसे कहा– प्रत्येक विधि पर अलग-अलग कार्य हो तो अच्छा है और उन्होंने वैसा ही किया। परन्तु जब कार्य प्रारम्भ किया था तब वह इतना विराट रूप ले लेगा यह अनुमान भी नहीं था। शाजापुर में रहते हुए इन्होंने छ:सात विधियों पर अपना कार्य पूर्ण किया। फिर गुर्वाज्ञा से कार्य को बीच में छोड़ पुनः गुरुवर्य्या श्री के पास पहुँची। जयपुर एवं टाटा चातुर्मास के सम्पूर्ण सामाजिक दायित्वों को संभालते हुए पूज्याश्री के साथ रही।

शोध कार्य पूर्ण रूप से रूका हुआ था। डॉ.साहब ने सचेत किया कि समयावधि पूर्णता की ओर है अत: कार्य शीघ्र पूर्ण करें तो अच्छा रहेगा वरना रजिस्ट्रेशन रद्द भी हो सकता है। अब एक बार फिर से उन्हें अध्ययन कार्य को गति देनी थी। उन्होंने लघु भगिनी मण्डल के साथ लाइब्रेरी युक्त शान्त-नीरव स्थान हेतु वाराणसी की ओर प्रस्थान किया। इस बार लक्ष्य था कि कार्य को किसी भी प्रकार से पूर्ण करना है। उनकी योग्यता देखते हुए श्री संघ एवं गुरुवर्य्या श्री उन्हें अब समाज के कार्यों से जोड़े रखना चाहते थे परंतु कठोर परिश्रम युक्त उनके विशाल शोध कार्य को भी सम्पन्न करवाना आवश्यक था। बनारस पहुँचकर इन्होंने मुद्रा विधि को छोटा कार्य जानकर उसे पहले करने के विचार से उससे ही कार्य को प्रारम्भ किया। देखते ही देखते उस कार्य ने भी एक विराट रूप ले लिया। उनका यह मुद्रा कार्य विश्वस्तरीय कार्य था जिसमें उन्होंने जैन, हिन्दू, बौद्ध, योग एवं नाट्य परम्परा की सहस्राधिक हस्त मुद्राओं पर विशेष शोध किया। यद्यपि उन्होंने दिन-रात परिश्रम कर इस कार्य को 6-7 महीने में एक बार पूर्ण कर लिया, किन्तु उसके विभिन्न कार्य तो अन्त तक चलते रहे। तत्पश्चात उन्होंने अन्य कुछ विषयों पर और भी कार्य किया। उनकी कार्यनिष्ठा देख वहाँ के लोग हतप्रभ रह जाते थे। संघ-समाज के बीच स्वयं बड़े होने के कारण नहीं चाहते हुए भी सामाजिक दायित्व निभाने ही पड़ते थे।

सिर्फ बनारस में ही नहीं रायपुर के बाद जब भी वे अध्ययन हेतु कहीं गई तो उन्हें ही बड़े होकर जाना पड़ा। सभी गुरु बहिनों का विचरण शासन कार्यों हेतु भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में होने से इस समस्या का सामना भी उन्हें करना ही था।

साधु जीवन में बड़े होकर रहना अर्थात संघ-समाज-समुदाय की समस्त गतिविधियों पर ध्यान रखना, जो कि अध्ययन करने वालों के लिए संभव नहीं होता परंतु साधु जीवन यानी विपरीत परिस्थितियों का स्वीकार और जो इन्हें पार कर आगे बढ़ जाता है वह जीवन जीने की कला का मास्टर बन जाता है। इस शोधकार्य ने सौम्याजी को विधि-विधान के साथ जीवन के क्षेत्र में भी मात्र मास्टर नहीं अपितु विशेषज्ञ बना दिया।

पूज्य बड़े म.सा. बंगाल के क्षेत्र में विचरण कर रहे थे। कोलकाता वालों की हार्दिक इच्छा सौम्याजी को बुलाने की थी। वैसे जौहरी संघ के पदाधिकारी श्री प्रेमचन्दजी मोघा एवं मंत्री मणिलालजी दुसाज शाजापुर से ही उनके चातुर्मास हेतु आग्रह कर रहे थे। अतः न चाहते हुए भी कार्य को अर्ध विराम दे उन्हें कलकत्ता आना पड़ा। शाजापुर एवं बनारस प्रवास के दौरान किए गए शोध कार्य का कम्पोज करवाना बाकी था और एक-दो विषयों पर शोध भी। परंतु "जिसकी खाओ बाजरी उसकी बजाओ हाजरी" अतः एक और अवरोध शोध कार्य में आ चुका था। गुरुवर्य्या श्री ने सोचा था कि चातुर्मास के प्रारम्भिक दो महीने के पश्चात इन्हें प्रवचन आदि दायित्वों से निवृत्त कर देंगे परंतु समाज में रहकर यह सब संभव नहीं होता।

चातुर्मास के बाद गुरुवर्य्या श्री तो शेष क्षेत्रों की स्पर्शना हेतु निकल पड़ी किन्तु उन्हें शेष कार्य को पूर्णकर अन्तिम स्वरूप देने हेतु कोलकाता ही रखा। कोलकाता जैसी महानगरी एवं चिर-परिचित समुदाय के बीच तीव्र गति से अध्ययन असंभव था अतः उन्होंने मौन धारण कर लिया और सप्ताह में मात्र एक घंटा लोगों से धर्म चर्चा हेतु खुला रखा। फिर भी सामाजिक दायित्वों से पूर्ण मुक्ति संभव नहीं थी। इसी बीच कोलकाता संघ के आग्रह से एवं अध्ययन हेतु अन्य सुविधाओं को देखते हुए पूज्याश्री ने इनका चातुर्मास कलकत्ता घोषित कर दिया। पूज्याश्री से अलग हुए सौम्याजी को करीब सात महीने हो चुके थे। चातुर्मास सम्मुख था और वे अपनी जिम्मेदारी पर प्रथम बार स्वतंत्र चातुर्मास करने वाली थी।

जेठ महीने की भीषण गर्मी में उन्होंने गुरुवर्य्याश्री के दर्शनार्थ जाने का मानस बनाया और ऊपर से मानसून सिना ताने खड़ा था। अध्ययन कार्य पूर्ण करने हेतु समयावधि की तलवार तो उनके ऊपर लटक ही रही थी। इन परिस्थितियों में उन्होंने 35-40 कि.मी. प्रतिदिन की रफ्तार से दुर्गापुर की तरफ कदम बढ़ाए। कलकत्ता से दुर्गापुर और फिर पुनः कोलकाता की यात्रा में लगभग एक महीना

पढ़ाई नहींवत हुई। यद्यपि गुरुवर्य्याश्री के साथ चातुर्मासिक कार्यक्रमों की जिम्मेदारियाँ इन्हीं की होती है फिर भी अध्ययन आदि के कारण इनकी मानसिकता चातुर्मास संभालने की नहीं थी और किसी दृष्टि से उचित भी था। क्योंकि सबसे बड़े होने के कारण प्रत्येक कार्यभार का वहन इन्हीं को करना था अत: दो माह तक अध्ययन की गति पर पुन: ब्रेक लग गया। पूज्या श्री हमेशा फरमाती है कि-

जो जो देखा वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

सौम्याजी ने भी गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर संघ-समाज को समय ही नहीं अपितु भौतिकता में भटकते हुए मानव को धर्म की सही दिशा भी दिखाई। वर्तमान परिस्थितियों पर उनकी आम चर्चा से लोगों में धर्म को देखने का एक नया नजरिया विकसित हुआ। गुरुवर्य्याश्री एवं हम सभी को आन्तरिक आनंद की अनुभूति हो रही थी किन्तु सौम्याजी को वापस दुगुनी गति से अध्ययन में जुड़ना था। इधर कोलकाता संघ ने पूर्ण प्रयास किए फिर भी हिन्दी भाषा का कोई अच्छा कम्पोजर न मिलने से कम्पोजिंग कार्य बनारस में करवाया गया। दूरस्थ रहकर यह सब कार्य करवाना उनके लिए एक विषम समस्या थी। परंतु अब शायद वे इन सबके लिए सध गई थी, क्योंकि उनका यह कार्य ऐसी ही अनेक बाधाओं का सामना कर चुका था।

उधर सैंथिया चातुर्मास में पूज्याश्री का स्वास्थ्य अचानक दो-तीन बार बिगड़ गया। अत: वर्षावास पूर्णकर पूज्य गुरूवर्य्या श्री पुन: कोलकाता की ओर पधारी। सौम्याजी प्रसन्न थी क्योंकि गुरूवर्य्या श्री स्वयं उनके पास पधार रही थी। गुरुजनों की निश्रा प्राप्त करना हर विनीत शिष्य का मनेच्छित होता है। पूज्या श्री के आगमन से वे सामाजिक दायित्वों से मुक्त हो गई थी। अध्ययन के अन्तिम पड़ाव में गुरूवर्य्या श्री का साथ उनके लिए सुवर्ण संयोग था क्योंकि प्राय: शोध कार्य के दौरान पूज्याश्री उनसे दूर रही थी।

शोध समय पूर्णाहुति पर था। परंतु इस बृहद कार्य को इतनी विषमताओं के भंवर में फँसकर पूर्णता तक पहुँचाना एक कठिन कार्य था। कार्य अपनी गति से चल रहा था और समय अपनी धुरी पर। सबमिशन डेट आने वाली थी किन्तु कम्पोजिंग एवं प्रूफ रीडिंग आदि का काफी कार्य शेष था।

पूज्याश्री के प्रति अनन्य समर्पित श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा को जब इस स्थिति के बारे में ज्ञात हुआ तो उन्होंने युनिवर्सिटी द्वारा समयावधि बढ़ाने हेतु

अर्जी पत्र देने का सुझाव दिया। उनके हार्दिक प्रयासों से 6 महीने का एक्सटेंशन प्राप्त हुआ। इधर पूज्या श्री तो शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा सम्पन्न कर अन्य क्षेत्रों की ओर बढ़ने की इच्छुक थी। परंतु भविष्य के गर्भ में क्या छुपा है यह कोई नहीं जानता। कुछ विशिष्ट कारणों के चलते कोलकाता भवानीपुर स्थित शंखेश्वर मन्दिर की प्रतिष्ठा चातुर्मास के बाद होना निश्चित हुआ। अत: अब आठ-दस महीने तक बंगाल विचरण निश्चित था। सौम्याजी को अप्रतिम संयोग मिला था कार्य पूर्णता के लिए।

शासन देव उनकी कठिन से कठिन परीक्षा ले रहा था। शायद विषमताओं की अग्नि में तपकर वे सौम्याजी को खरा सोना बना रहे थे। कार्य अपनी पूर्णता की ओर पहुँचता इसी से पूर्व उनके द्वारा लिखित 23 खण्डों में से एक खण्ड की मूल कॉपी गुम हो गई। पुन: एक खण्ड का लेखन और समयावधि की अल्पता ने समस्याओं का चक्रव्यूह सा बना दिया। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। जिनपूजा क्रिया विधानों का एक मुख्य अंग है अत: उसे गौण करना या छोड़ देना भी संभव नहीं था। चांस लेते हुए एक बार पुन: Extension हेतु निवेदन पत्र भेजा गया। मुनि जीवन की कठिनता एवं शोध कार्य की विशालता के मद्देनजर एक बार पुन: चार महीने की अवधि युनिवर्सिटी के द्वारा प्राप्त हुई।

शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा निमित्त सम्पूर्ण साध्वी मंडल का चातुर्मास बकुल बगान स्थित लीलीजी मणिलालजी सुखानी के नूतन बंगले में होना निश्चित हुआ।

पूज्याश्री ने खडगपुर, टाटानगर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। पाँच-छह साध्वीजी अध्ययन हेतु पौशाल में ही रूके थे। श्री जिनरंगसूरि पौशाल कोलकाता बड़ा बाजार में स्थित है। साधु-साध्वियों के लिए यह अत्यंत शाताकारी स्थान है। सौम्याजी को बनारस से कोलकाता लाने एवं अध्ययन पूर्ण करवाने में पौशाल के ट्रस्टियों की विशेष भूमिका रही है। सौम्याजी ने अपना अधिकांश अध्ययन काल वहाँ व्यतीत किया।

ट्रस्टीगण श्री कान्तिलालजी, कमलचंदजी, विमलचंदजी, मणिलालजी आदि ने भी हर प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की। संघ-समाज के सामान्य दायित्वों से बचाए रखा। इसी अध्ययन काल में बीकानेर हाल कोलकाता निवासी श्री खेमचंदजी बांठिया ने आत्मीयता पूर्वक सेवाएँ प्रदान कर इन लोगों को निश्चिन्त रखा। इसी तरह अनन्य सेवाभावी श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत (लालाबाबू) जो सौम्याजी को बहनवत मानते हैं उन्होंने एक भाई के समान उनकी हर आवश्यकता

का ध्यान रखा। कलकत्ता संघ सौम्याजी के लिए परिवारवत ही हो गया था। सम्पूर्ण संघ की एक ही भावना थी कि उनका अध्ययन कोलकाता में ही पूर्ण हो।

पूज्याश्री टाटानगर से कोलकाता की ओर पधार रही थी। सुयोग्या साध्वी सम्यग्दर्शनाजी उग्र विहार कर गुरुवर्य्याश्री के पास पहुँची थी। सौम्याजी निश्चिंत थी कि इस बार चातुर्मासिक दायित्व सुयोग्या सम्यग दर्शनाजी महाराज संभालेंगे। वे अपना अध्ययन उचित समयावधि में पूर्ण कर लेंगे। परंतु परिस्थिति विशेष से सम्यगजी महाराज का चातुर्मास खडगपुर ही हो गया।

सौम्याजी की शोधयात्रा में संघर्षों की समाप्ति ही नहीं हो रही थी। पुस्तक लेखन, चातुर्मासिक जिम्मेदारियाँ और प्रतिष्ठा की तैयारियाँ कोई समाधान दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा था। अध्ययन की महत्ता को समझते हुए पूज्याश्री एवं अमिताजी सुखानी ने उन्हें चातुर्मासिक दायित्वों से निवृत्त रहने का अनुनय किया किन्तु गुरु की शासन सेवा में सहयोगी बनने के लिए इन्होंने दो महीने गुरुवर्य्या श्री के साथ चातुर्मासिक दायित्वों का निर्वाह किया। फिर वह अपने अध्ययन में जुट गई।

कई बार मन में प्रश्न उठता कि हमारी प्यारी सौम्या इतना साहस कहाँ से लाती है। किसी कवि की पंक्तियाँ याद आ रही है–

सूरज से कह दो बेशक वह, अपने घर आराम करें।
चाँद सितारे जी भर सोएं, नहीं किसी का काम करें।
अगर अमावस से लड़ने की जिद कोई कर लेता है।
तो सौम्य गुणा सा जुगनु सारा, अंधकार हर लेता है।।

जिन पूजा एक विस्तृत विषय है। इसका पुनर्लेखन तो नियत अवधि में हो गया परंतु कम्पोजिंग आदि नहीं होने से शोध प्रबंध के तीसरे एवं चौथे भाग को तैयार करने के लिए समय की आवश्यकता थी। अब तीसरी बार लाडनूं विश्वविद्यालय से Extension मिलना असंभव प्रतीत हो रहा था।

श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा समस्त परिस्थितियों से अवगत थे। उन्होंने पूज्य गुरूवर्य्या श्री से निवेदन किया कि सौम्याजी को पूर्णत: निवृत्ति देकर कार्य शीघ्रातिशीघ्र करवाया जाए। विश्वविद्यालय के तत्सम्बन्धी नियमों के बारे में पता करके डेढ़ महीने की अन्तिम एवं विशिष्ट मौहलत दिलवाई। अब देरी होने का मतलब था Rejection of Work by University अत: त्वरा गति से कार्य चला।

सौम्याजी पर गुरुजनों की कृपा अनवरत रही है। पूज्य गुरूवर्य्या सज्जन श्रीजी

म.सा. के प्रति वह विशेष श्रद्धा प्रणत हैं। अपने हर शुभ कर्म का निमित्त एवं उपादान उन्हें ही मानती हैं। इसे साक्षात गुरु कृपा की अनुश्रुति ही कहना होगा कि उनके समस्त कार्य स्वत: ग्यारस के दिन सम्पन्न होते गए। सौम्याजी की आन्तरिक इच्छा थी कि पूज्याश्री को समर्पित उनकी कृति पूज्याश्री की पुण्यतिथि के दिन विश्वविद्यालय में Submit की जाए और निमित्त भी ऐसे ही बने कि Extension लेते-लेते संयोगवशात पुन: वही तिथि और महीना आ गया।

23 दिसम्बर 2012 मौन ग्यारस के दिन लाडनूं विश्वविद्यालय में 4 भागों में वर्गीकृत 23 खण्डीय Thesis जमा की गई। इतने विराट शोध कार्य को देखकर सभी हतप्रभ थे। 5556 पृष्ठों में गुम्फित यह शोध कार्य यदि शोध नियम के अनुसार तैयार किया होता तो 11000 पृष्ठों से अधिक हो जाते। यह सब गुरूवर्य्या श्री की ही असीम कृपा थी।

पूज्या शशिप्रभा श्रीज़ी म.सा. की हार्दिक इच्छा थी कि सौम्याजी के इस ज्ञानयज्ञ का सम्मान किया जाए जिससे जिन शासन की प्रभावना हो और जैन संघ गौरवान्वित बने।

भवानीपुर-शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा का पावन सुयोग था। श्रुतज्ञान के बहुमान रूप 23 ग्रन्थों का भी जुलूस निकाला गया। सम्पूर्ण कोलकाता संघ द्वारा उनकी वधामणी की गई। यह एक अनुमोदनीय एवं अविस्मरणीय प्रसंग था।

बस मन में एक ही कसक रह गई कि मैं इस पूर्णाहुति का हिस्सा नहीं बन पाई।

आज सौम्याजी की दीर्घ शोध यात्रा को पूर्णता के शिखर पर देखकर नि:सन्देह कहा जा सकता है कि पूज्या प्रवर्त्तिनी म.सा. जहाँ भी आत्म साधना में लीन है वहाँ से उनकी अनवरत कृपा दृष्टि बरस रही है। शोध कार्य पूर्ण होने के बाद भी सौम्याजी को विराम कहाँ था? उनके शोध विषय की त्रैकालिक प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। पुस्तक प्रकाशन सम्बन्धी सभी कार्य शेष थे तथा पुस्तकों का प्रकाशन कोलकाता से ही हो रहा था। अत: कलकत्ता संघ के प्रमुख श्री कान्तिलालजी मुकीम, विमलचंदजी महमवाल, श्राविका श्रेष्ठा प्रमिलाजी महमवाल, विजयेन्द्रजी संखलेचा आदि ने पूज्याश्री के सम्मुख सौम्याजी को रोकने का निवेदन किया। श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत, श्री मणिलालजी दूसाज आदि भी निवेदन कर चुके थे। यद्यपि अजीमगंज दादाबाड़ी प्रतिष्ठा के कारण रोकना असंभव था परंतु मुकिमजी

के अत्याग्रह के कारण पूज्याश्री ने उन्हें कुछ समय के लिए वहाँ रहने की आज्ञा प्रदान की।

गुरूवर्य्या श्री के साथ विहार करते हुए सौम्यागुणाजी को तीन Stop जाने के बाद वापस आना पड़ा। दादाबाड़ी के समीपस्थ शीतलनाथ भवन में रहकर उन्होंने अपना कार्य पूर्ण किया। इस तरह इनकी सम्पूर्ण शोध यात्रा में कलकत्ता एक अविस्मरणीय स्थान बनकर रहा।

क्षणै: क्षणै: बढ़ रहे उनके कदम अब मंजिल पर पहुँच चुके हैं। आज जो सफलता की बहुमंजिला इमारत इस पुस्तक श्रृंखला के रूप में देख रहे हैं वह मजबूत नींव इन्होंने अपने उत्साह, मेहनत और लगन के आधार पर रखी है। सौम्यगुणाजी का यह विशद् कार्य युग-युगों तक एक कीर्तिस्तम्भ के रूप में स्मरणीय रहेगा। श्रुत की अमूल्य निधि में विधि-विधान के रहस्यों को उजागर करते हुए उन्होंने जो कार्य किया है वह आने वाली भावी पीढ़ी के लिए आदर्श रूप रहेगा। लोक परिचय एवं लोकप्रसिद्धि से दूर रहने के कारण ही आज वे इस बृहद् कार्य को सम्पन्न कर पाई हैं। मैं परमात्मा से यही प्रार्थना करती हूँ कि वे सदा इसी तरह श्रुत संवर्धन के कल्याण पथ पर गतिशील रहे। अंतत: उनके अडिग मनोबल की अनुमोदना करते हुए यही कहूँगी–

प्रगति शिला पर चढ़ने वाले बहुत मिलेंगे,
कीर्तिमान करने वाला तो विरला होता है।
आंदोलन करने वाले तो बहुत मिलेंगे,
दिशा बदलने वाला कोई निराला होता है।
तारों की तरह टिम-टिमाने वाले अनेक होते हैं,
पर सूरज बन रोशन करने वाला कोई एक ही होता है।
समय गंवाने वालों से यह दुनिया भरी है,
पर इतिहास बनाने वाला कोई सौम्य सा ही होता है।
प्रशंसा पाने वाले जग में अनेक मिलेंगे,
प्रिय बने सभी का ऐसा कोई सज्जन ही होता है ।।

●

हार्दिक अनुशंसा

किसी कवि ने बहुत ही सुन्दर कहा है–

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सो घड़ा, ऋतु आवत फल होय।।

हर कार्य में सफलता समय आने पर ही प्राप्त होती है। एक किसान बीज बोकर साल भर तक मेहनत करता है तब जाकर उसे फसल प्राप्त होती है। चार साल तक College में मेहनत करने के बाद विद्यार्थी Doctor, Engineer या MBA होता है।

साध्वी सौम्यगुणाजी आज सफलता के जिस शिखर पर पहुँची है उसके पीछे उनकी वर्षों की मेहनत एवं धैर्य नींव रूप में रहे हुए हैं। लगभग 30 वर्ष पूर्व सौम्याजी का आगमन हमारे मण्डल में एक छोटी सी गुड़िया के रूप में हुआ था। व्यवहार में लघुता, विचारों में सरलता एवं बुद्धि की श्रेष्ठता उनके प्रत्येक कार्य में तभी से परिलक्षित होती थी। ग्यारह वर्ष की निशा जब पहली बार पूज्याश्री के पास वैराग्यवासित अवस्था में आई तब मात्र चार माह की अवधि में प्रतिक्रमण, प्रकरण, भाष्य,कर्मग्रन्थ, प्रात:कालीन पाठ आदि कंठस्थ कर लिए थे। उनकी तीव्र बुद्धि एवं स्मरण शक्ति की प्रखरता के कारण पूज्य छोटे म.सा. (पूज्य शशिप्रभा श्रीजी म.सा.) उन्हें अधिक से अधिक चीजें सिखाने की इच्छा रखते थे।

निशा का बाल मन जब अध्ययन से उक्ता जाता और बाल सुलभ चेष्टाओं के लिए मन उत्कंठित होने लगता, तो कई बार वह घंटों उपाश्रय की छत पर तो कभी सीढ़ियों में जाकर छुप जाती ताकि उसे अध्ययन न करना पड़े। परंतु यह उसकी बाल क्रीड़ाएँ थी। 15-20 गाथाएँ याद करना उसके लिए एक सहज बात थी। उनके अध्ययन की लगन एवं सीखने की कला आदि के अनुकरण की प्रेरणा आज भी छोटे म.सा. आने वाली नई मंडली को देते हैं। सूत्रागम अध्ययन, ज्ञानार्जन, लेखन, शोध आदि के कार्य में उन्होंने जो श्रृंखला प्रारम्भ की है आज सज्जनमंडल में उसमें कई कड़ियाँ जुड़ गई हैं परन्तु मुख्य कड़ी तो

मुख्य ही होती है। ये सभी के लिए प्रेरणा बन रही हैं किन्तु इनके भीतर जो प्रेरणा आई वह कहीं न कहीं पूज्य गुरुवर्य्या श्री की असीम कृपा है।

उच्च उड़ान नहीं भर सकते
तुच्छ बाहरी चमकीले पर
महत कर्म के लिए चाहिए
महत प्रेरणा बल भी भीतर

यह महत प्रेरणा गुरु कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। विनय, सरलता, शालीनता, ऋजुता आदि गुण गुरुकृपा की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

सौम्याजी का मन शुरू से सीधा एवं सरल रहा है। सांसारिक कपट-माया या व्यवहारिक औपचारिकता निभाना इनके स्वभाव में नहीं है। पूज्य प्रवर्तिनीजी म.सा. को कई बार ये सहज में कहती **'महाराज श्री!' मैं तो आपकी कोई सेवा नहीं करती, न ही मुझमें विनय है, फिर मेरा उद्धार कैसे होगा, मुझे गुरु कृपा कैसे प्राप्त होगी?' तब पूज्याश्री फरमाती– 'सौम्या! तेरे ऊपर तो मेरी अनायास कृपा है, तूं चिंता क्यों करती है? तूं तो महान साध्वी बनेगी।'** आज पूज्याश्री की ही अन्तस शक्ति एवं आशीर्वाद का प्रस्फोटन है कि लोकैषणा, लोक प्रशंसा एवं लोक प्रसिद्धि के मोह से दूर वे श्रुत सेवा में सर्वात्मना समर्पित हैं। जितनी समर्पित वे पूज्या श्री के प्रति थी उतनी ही विनम्र अन्य गुरुजनों के प्रति भी। गुरु भगिनी मंडल के कार्यों के लिए भी वे सदा तत्पर रहती हैं। चाहे बड़ों का कार्य हो, चाहे छोटों का उन्होंने कभी किसी को टालने की कोशिश नहीं की। चाहे प्रियदर्शना श्रीजी हो, चाहे दिव्यदर्शना श्रीजी, चाहे शुभदर्शनाश्रीजी हो, चाहे शीलगुणा जी आज तक सभी के साथ इन्होंने लघु बनकर ही व्यवहार किया है। कनकप्रभाजी, संयमप्रज्ञाजी आदि लघु भगिनी मंडल के साथ भी इनका व्यवहार सदैव सम्मान, माधुर्य एवं अपनेपन से युक्त रहा है। ये जिनके भी साथ चातुर्मास करने गई हैं उन्हें गुरुवत सम्मान दिया तथा उनकी विशिष्ट आन्तरिक मंगल कामनाओं को प्राप्त किया है। पूज्या विनीता श्रीजी म.सा., पूज्या मणिप्रभाश्रीजी म.सा., पूज्या हेमप्रभा श्रीजी म.सा., पूज्या सुलोचना श्रीजी म.सा., पूज्या विद्युतप्रभाश्रीजी म.सा. आदि की इन पर विशेष कृपा रही है। पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा., आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी म.सा., आचार्य श्री कीर्तियशसूरिजी आदि ने इन्हें अपना

स्नेहाशीष एवं मार्गदर्शन दिया है। आचार्य श्री राजयशसूरिजी म.सा., पूज्य भ्राता श्री विमलसागरजी म.सा. एवं पूज्य वाचंयमा श्रीजी (बहन) म.सा. इनका Ph.D. एवं D.Litt. का विषय विधि-विधानों से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें 'विधिप्रभा' नाम से ही बुलाते हैं।

पूज्या शशिप्रभाजी म.सा. ने अध्ययन काल के अतिरिक्त इन्हें कभी भी अपने से अलग नहीं किया और आज भी हम सभी गुरु बहनों की अपेक्षा गुरु निश्रा प्राप्ति का लाभ इन्हें ही सर्वाधिक मिलता है। पूज्याश्री के चातुर्मास में अपने विविध प्रयासों के द्वारा चार चाँद लगाकर ये उन्हें और भी अधिक जानदार बना देती हैं।

तप-त्याग के क्षेत्र में तो बचपन से ही इनकी विशेष रुचि थी। नवपद की ओली का प्रारम्भ इन्होंने गृहस्थ अवस्था में ही कर दिया था। इनकी छोटी उम्र को देखकर छोटे म.सा. ने कहा– देखो! तुम्हें तपस्या के साथ उतनी ही पढ़ाई करनी होगी तब तो ओलीजी करना अन्यथा नहीं। ये बोली– मैं रोज पन्द्रह नहीं बीस गाथा करूंगी आप मुझे ओलीजी करने दीजिए और उस समय ओलीजी करके सम्पूर्ण प्रातःकालीन पाठ कंठाग्र किये। बीसस्थानक, वर्धमान, नवपद, मासक्षमण, श्रेणी तप, चत्तारि अट्ठ दस दोय, पैंतालीस आगम, ग्यारह गणधर, चौदह पूर्व, अट्ठाईस लब्धि, धर्मचक्र, पखवासा आदि कई छोटे-बड़े तप करते हुए इन्होंने अध्ययन एवं तपस्या दोनों में ही अपने आपको सदा अग्रसर रखा।

आज उनके वर्षों की मेहनत की फलश्रुति हुई है। जिस शोध कार्य के लिए वे गत 18 वर्षों से जुटी हुई थी उस संकल्पना को आज एक मूर्त्त स्वरूप प्राप्त हुआ है। अब तक सौम्याजी ने जिस धैर्य, लगन, एकाग्रता, श्रुत समर्पण एवं दृढ़निष्ठा के साथ कार्य किया है वे उनमें सदा वृद्धिंगत रहे। पूज्य गुरुवर्य्या श्री के नक्षे कदम पर आगे बढ़ते हुए वे उनके कार्यों को और नया आयाम दें तथा श्रुत के क्षेत्र में एक नया अवदान प्रस्तुत करें। इन्हीं शुभ भावों के साथ–

गुरु भगिनी मण्डल

स्वकथ्य

जैन संस्कृति का मूल तत्त्व तप है। जैन साधना का प्राण तत्त्व तप है। जैन वाङ्मय का मुख्य सत्त्व तप है। जिस प्रकार पुष्प की हर पंखुड़ी में खुशबू समाहित है, मिश्री के कण-कण में मिठास है, तिल के हर दाने में तेल है वैसे ही जैन धर्म के प्रत्येक विधान में तप समाहित है। इसी कारण सन्त साधकों ने श्रमण संस्कृति को तप प्रधान संस्कृति के नाम से उपमित किया है।

तप दो वर्णों का अत्यंत लघु शब्द है, किन्तु इसकी शक्ति अचिन्त्य है। विभिन्न दृष्टियों से तप के अनेक अर्थ किए गए हैं। संस्कृत व्युत्पत्ति के अनुसार 'तप्यतेऽनेनेति तपः' अर्थात जिसके द्वारा तपा जाता है अथवा शरीर को तपाया जाता है वह तप है। आचार्य अभयदेवसूरि के अनुसार जिस साधना के द्वारा शरीरजन्य रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये धातुएँ और अशुभ कर्म क्षीण होते हैं, सूख जाते हैं, जल जाते हैं, वह तप है। जिस प्रकार सूर्य के ताप से बाह्य मल का शोधन होता है, अग्नि के ताप से स्वर्ण का शोधन होता है उसी प्रकार तप के द्वारा जीव के अन्तर मलों का शोधन होता है।

जैनाचार्यों के अनुसार मुख्य रूप से इच्छाओं का निरोध करना तप है। तप का क्षेत्र इतना व्यापक है कि स्वाध्याय, सेवा, भक्ति, अनशन, प्रायश्चित्त, कायक्लेश, इन्द्रियदमन, ध्यान, विनय आदि समस्त आध्यात्मिक क्रियाओं का समावेश इसमें हो जाता है।

वस्तुतः तप जीवन की ऊर्जा है, आत्मा का निजी गुण है, साधना की यथार्थ पूर्णता है, आरोग्यता की औषधि है, सद्भावनाओं का दीपक है, श्रेष्ठ विचारों की ज्योति है एवं सम्यक आचरण की मिसाल है। सार रूप में कहें तो तप ही श्रेष्ठ जीवन की नींव है।

तप के मुख्य दो प्रकार हैं– 1. बाह्य तप और 2 आभ्यंतर तप। बाह्य तप के द्वारा शरीर को तपाया जाता है एवं आभ्यंतर तप के द्वारा स्वाभाविक आत्म गुणों को प्रकट किया जाता है। कई लोग मात्र देह पीड़न को ही तप मानते हैं। उनके अनुसार शरीर को कष्ट देना ही तप है। परन्तु यदि जैन शास्त्रों के अनुसार

तप को समझने का प्रयास किया जाए तो तप का अर्थ देह दण्डन नहीं है। वस्तुत: अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं में भेद करने का Thermometer तप है। तप के द्वारा अपने आप पर Control प्राप्त किया जाता है। तप के प्रत्याख्यान पाठ में एक शब्द आता है 'सव्वसमाहिवत्तियागारेणं' इसका अर्थ है- जब तक बाह्य एवं आभ्यंतर समाधि रहे तब तक ही गृहीत प्रत्याख्यान आचरणीय है। तप के द्वारा देह दण्डन किया जाता है यह एक भ्रान्त मान्यता है। वस्तुत: जिस प्रकार दूध को गरम करने के लिए तपेली को गरम करना आवश्यक है वैसे ही अन्तर आत्मा की विशुद्धि के लिए शरीर को गलाकर ही तदनुरूप परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

कई बार प्रश्न होता है कि आत्म विकास आदि भाव विशुद्धियुत क्रियाओं में तप की आवश्यकता क्यों? उनकी संसिद्धि में तप का क्या स्थान है?

जैन साधना में तप को सर्वोत्तम स्थान दिया गया है। तप धर्माचरण का अभिन्न अंग है। धर्म रहित मनुष्य को पशु तुल्य माना गया है। आगमोक्त वचनों के अनुसार समता भाव पूर्वक की गई तपस्या से निकाचित कर्मों की भी निर्जरा हो जाती है।

आज की युवा पीढ़ी को तप आदि बंधन रूप लगते हैं। उनके अनुसार जो कुछ हो स्वेच्छा पूर्वक हो, बंधन या नियंत्रण नहीं होना चाहिए। कल्पना कीजिए कि गाड़ी चलाते हुए यदि ब्रेक पर नियंत्रण संचालक के हाथ में न हो तो वाहन गंतव्य तक पहुँच पाएगा या नहीं? यह शंका सतत बनी रहती है।

तप शारीरिक स्वस्थता का श्रेष्ठ माध्यम है। जिस प्रकार एक सप्ताह काम करने के बाद संडे को छुट्टी आवश्यक प्रतीत होती है। वैसे ही आंतरिक, शारीरिक यन्त्रों को भी हफ्ते में एक दिन विश्राम चाहिए। तप के माध्यम से शरीर की अतिरिक्त Calorie आदि ऊर्जा की खपत हो जाती है। इससे शरीर स्वस्थ एवं सक्रिय रहता है।

वर्तमान में प्रचलित Dieting तप का ही बदला हुआ रूप है। यह घंटे-घंटे के पच्चक्खाण, ऊनोदरी, रसत्याग आदि का मिश्रित रूप है।

चिकित्सा शास्त्र के अनुसार तप शरीर के लिए अत्यंत आवश्यक प्राकृतिक चिकित्सा है। आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार बुखार आदि में लंघन (उपवास) करने से विषाक्त रोगाणुओं का नाश हो जाता है। तप करने से तन की

शुद्धि होती है। डॉ. जे. एच. सटिडेन के अनुसार दूषित पदार्थों के बाह्य निकास के लिए उपवास से बढ़कर दूसरी कोई चिकित्सा नहीं है। यह एक विशिष्ट और विश्वसनीय उपचार है।

तप कैसा हो?

आज के युग में तप की घटती महत्ता का मुख्य कारण है उसके पीछे बढ़ रहे आडम्बर एवं लौकिक कामनाएँ। आज अधिकांश तपों का मूल उद्देश्य किसी न किसी लौकिक इच्छा की पूर्ति है। जबकि शास्त्रानुसार तप कामना रहित होकर किया जाना चाहिए। तप को करने का एक मात्र उद्देश्य कर्म क्षय होना चाहिए। तप एक उत्कृष्ट मंगल है इसके द्वारा सांसारिक लाभ तो स्वयमेव ही प्राप्त हो जाते हैं ठीक वैसे ही जैसे खेती में घास की प्राप्ति होती है, परन्तु घास प्राप्ति के लिए खेती करना तो मूर्खता है। तप के द्वारा तो समस्त कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष रूप शाश्वत सुख की प्राप्ति हो सकती है।

वर्तमान समय में बड़ी तपस्याओं के पीछे बढ़ते आडम्बर, प्रीतिभोज आदि में बढ़ते खर्चे एवं घटता अविवेक आज के युवा वर्ग को तप मार्ग से च्युत कर रहा है। आज तप के पीछे रहे मौलिक तथ्यों से अधिकांश लोग अनभिज्ञ है। तप अनुमोदना निमित्त अर्थ का सद्व्यय करना गलत नहीं है परन्तु उसे करने का तरीका एवं प्रयोजन सही होना चाहिए। तप अनुमोदना रूप कार्यों से अन्य लोगों को भी तप की प्रेरणा मिले तभी उनकी सार्थकता है। आज बड़ी तपस्या करने का अभिप्राय होता है लाखों का खर्चा। इस कारण मध्यम वर्गीय गृहस्थ को तप करने से पूर्व बहुत सोचना पड़ता है अतः तप निमित्त लेन-देन एवं प्रीतिभोज का आयोजन विवेक पूर्वक एवं आवश्यकता अनुसार करते हुए शासन प्रभावना के अन्य आयोजन करने चाहिए।

समाहारतः तप कामना रहित, आडम्बर रहित, भौतिक अभिलाषा से रहित एवं सांसारिक लेन-देन से रहित होना चाहिए।

तप करने का अधिकारी कौन?

आचार दिनकर के अनुसार जो शान्त हो, अल्प निद्रालु हो, अल्प आहारी हो, कामना रहित हो, कषाय वर्जित हो, धैर्यवान हो, अनिन्दक हो, गुरुजनों की शुश्रुषा में तत्पर हो, कर्म क्षय का अर्थी हो, प्रायः राग एवं द्वेष से रहित हो, दयालु हो, विनित हो, इहलौकिक-पारलौकिक सुख कामना से मुक्त हो,

क्षमावान हो, निरोगी हो और उत्कंठा रहित हो, वे जीव ही तप करने के योग्य होते हैं। इन गुणों से युक्त जीव की तपश्चर्या ही मोक्ष फलदायक एवं शाश्वत सुख प्रदायक होती है।

योग्यता रहित तप सिर्फ नाम का तप होता है। तामली तापस द्वारा हजारों वर्षों तक की गई तपस्या भी समुचित न होने से निष्फल रही। शास्त्रों में तप का मुख्य अधिकारी मुनि को ही माना गया है।

तपस्वी कौन?

प्राय: वर्तमान में उपवास, एकासना, ऊनोदरी आदि बाह्य तप करने वालों को तपस्वी माना जाता है परन्तु यह मात्र एक पक्ष है। स्वाध्याय, सेवा, आलोचना, ध्यान आदि भी तप के ही अन्य भेद हैं तथा उपवास आदि बाह्य तप के अनुरूप शारीरिक सामर्थ्य न होने पर प्रायश्चित्त, विनय आदि करने वाला भी तपस्वी कहलाता है। वस्तुत: बाह्य तप की अपेक्षा आभ्यंतर तप की साधना अधिक कठिन होती है।

शास्त्रानुसार तपस्वी किस ध्येय से तपस्या कर रहा है यह महत्त्वपूर्ण बिन्दु है। यदि तप प्रतिफल के रूप में सांसारिक या भौतिक सुख की इच्छाएँ मौजूद है तो वह तप तपस्वी पद को लज्जित करता है और तप की अक्षुण्ण परम्परा को धूमिल करता है। इन मनोभावों से की गई तप साधना तपस्वी के लिए कल्याणकारी नहीं होती प्रत्युत उसे दुर्गति के उन्मुख करती है।

जिस तरह धनार्थी के लिए सर्दी-गर्मी आदि कष्ट दुस्सह नहीं होते उसी तरह संसार विरक्त कर्म निर्जरा के इच्छुक साधक को भी तप दुस्सह नहीं लगता। आत्म विशुद्धि के लक्ष्य से तप करने वाली आत्माएँ ही तपस्वी कही जाती है। ज्ञानयुक्त तपश्चर्या तपस्वी को अक्षुण्ण सुख का उपभोक्ता बनाती है। सम्यगदृष्टि तपस्वी ही साध्य का सामीप्य पा सकते हैं।

बाह्य तप आवश्यक है या आभ्यंतर तप?

आज के समय में स्वाध्याय आदि की अल्पता के कारण प्राय: लोग तप के साक्षात स्वरूप से अनभिज्ञ है। ऐसे में कई बार प्रश्न उत्पन्न होता है कि बाह्य तप आवश्यक है या आभ्यंतर तप?

लोक व्यवहार में यद्यपि बाह्य तप को अधिक महत्त्व दिया गया है परन्तु साधना की दृष्टि से दोनों की अपनी महत्ता है।

बाह्य तप से जहाँ इन्द्रियों के प्रति आसक्ति, स्वाद लोलुपता, शारीरिक राग आदि न्यून होते हैं वहीं आभ्यंतर तप के द्वारा विनय, मार्दव, आर्जव आदि आन्तरिक गुणों में वृद्धि होती है और आत्मिक निर्मलता बढ़ती है।

वस्तुत: दोनों तपों का वर्गीकरण साधकों को समझाने की दृष्टि से किया गया है। दोनों का लक्ष्य आत्म विशुद्धि ही है। शास्त्रों में आभ्यंतर तप का जो महत्त्व है वही बाह्य तप का है। किसी एक का आग्रह रखना उचित नहीं है।

बाह्य तप का आचरण तीर्थंकरों द्वारा भी किया गया अत: वह महत्त्वपूर्ण है। अनुभवत: बाह्य तप से साधक का मनोबल एवं कष्ट सहिष्णुता वर्धित होती है। आभ्यंतर तप उस साधना में निखार लाता है। जब बाह्य तप द्वारा मानसिक मलिनता दूर होती है तभी ध्यान, स्वाध्याय आदि प्रवृत्तियाँ सार्थक परिणाम देती है। इसी अपेक्षा से बाह्य तप का क्रम पहले रखा गया है।

बाह्य तप और आभ्यंतर तप दोनों का अपना विशिष्ट स्थान है। जैसे किसी एक ही राजप्रासाद में एक आभ्यन्तर भाग होता है और दूसरा बाह्य भाग। आभ्यंतर भाग राजा के अन्तरंग जीवन का केन्द्र होता है और बाह्य भाग राज्य संचालन आदि व्यवस्था का किन्तु किसी का भी महत्त्व कम नहीं होता। वैसे ही बाह्य तप एवं आभ्यंतर तप दोनों ही महत्त्वपूर्ण है।

कई बार लोग कहते हैं कि तप करने की इच्छा तो होती है परन्तु बड़ी-बड़ी क्रियाएँ देखकर हिम्मत नहीं होती। क्या क्रिया रहित तप नहीं कर सकते?

कई लोग आध्यात्मिक क्रियाओं के प्रति अरुचि और विरोधाभाव रखते हुए यह भी कहते हैं कि आत्मा को जानने के बाद क्रिया का महत्त्व नहीं है तो फिर क्रिया करने की क्या आवश्यकता?

आगमों में इस शंका का सम्यक समाधान करते हुए कहा गया है– 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष' ज्ञान और क्रिया दोनों का समाचरण मोक्ष प्राप्ति में हेतुभूत बनता है। एकांत ज्ञान व्यक्ति में अहंकार, उन्माद, प्रमाद, स्वच्छंदता आदि का वर्धन करता है। ऐसे जीवों को ज्ञान की बात मीठी और क्रिया की बात कड़वी लगती है। इनकी सही दशा का वर्णन करते हुए उपाध्याय यशोविजयजी कहते हैं–

जैसे पाग कोउ शिर बांधे, पहिरन नहीं लंगोटी।
सद्गुरु पास क्रिया बिनु सीखे, आगम साख त्युं खोटी।।

जिसके पास अंग ढ़कने के लिए कपड़ा नहीं है वह यदि मस्तक पर पगड़ी धारण करता है तो जगत में हँसी का पात्र बनता है वैसे ही क्रिया रहित ज्ञानी व्यक्ति भी हंसी का पात्र बनता है। क्रिया किए बिना पाप शुद्धि संभव नहीं है। इसीलिए तप के साथ क्रिया को आवश्यक माना है।

ज्ञान और क्रिया एक ही रथ के दो पहिये हैं। एक भी पहिया कमजोर हो तो आत्मा रूपी रथ मुक्ति मार्ग पर सम्यक गति नहीं कर सकता है। दूसरे का ज्ञान हमारी क्रिया में उपयोगी बन सकता है परंतु क्रिया कभी दूसरों के लिए उपयोगी नहीं बनती। स्वयं की क्रिया स्वयं के लिए ही उपयोगी बनती है। किसी भी कला का ज्ञान होने मात्र से वह सुपरिणामी नहीं बनती तदहेतु उसकी क्रियान्विती होना आवश्यक है। मात्र ज्ञान से कभी भी मनोरथ सफल नहीं हो सकते। तैरने की कला में Ph.D. करने वाला यदि डूबते समय उस ज्ञान को क्रियान्विती में न लाए तो वह ज्ञान उपयोगी एवं सिद्धिदायक नहीं होता।

कई लोग कहते हैं कि अर्थ का ज्ञान न होने पर आचरण करने से क्या लाभ?

शास्त्रकार इसका समाधान देते हुए कहते हैं कि महर्षियों द्वारा प्रणीत महामंत्र श्रद्धा पूर्वक श्रवण करने पर भी लाभ देता है। जैसे सर्प विष हरण करने के लिए विषाक्त व्यक्ति पर गारूड़ी मंत्र का प्रयोग उसे मंत्र ज्ञान न होने पर भी अवश्य लाभदायी होता है। इसी प्रकार क्रिया के दरम्यान प्रयुक्त सूत्रों के अर्थ का ज्ञान न भी हो तो उनके प्रति रही श्रद्धा अवश्य काम करती है। अर्थ की जानकारी के साथ क्रिया करना सर्वोत्तम है परन्तु यदि अर्थ का ज्ञान न भी हो तो भी श्रद्धा एवं भाव पूर्वक की गई क्रिया भी ज्ञान के अभाव में साधक को लक्ष्य तक पहुँचाती है।

कई लोग प्रश्न करते हैं कि तप के साथ खमासमण, प्रदक्षिणा, साथिया आदि क्रिया क्यों करनी चाहिए?

प्रदक्षिणा, खमासमण आदि क्रियाओं से तप में भावोल्लास बढ़ता है। इनके माध्यम से परमात्मा की आराधना होती है। समय, शक्ति आदि का सद्व्यय होता है। इन क्रियाओं के माध्यम से तपाराधना की स्मृति बार-बार बनी रहती हैं। तप के साथ जप आदि क्रियाएँ उसे विशेष लाभकारी बनाती है। तप का मुख्य हेतु है कर्म निर्जरा। इन क्रियाओं के द्वारा अधिकाधिक कर्मों की निर्जरा होती है अतः तप के साथ इन क्रियाओं का गुंफन किया गया है।

क्रिया के दोष

आत्म कल्याण में हेतुभूत धार्मिक क्रियाएँ करते समय परिणामों की विशुद्धि, हृदय की एकाग्रता एवं मन की तटस्थता होना जरूरी है। ऐसी विशुद्ध क्रिया ही मोक्षफल को प्रदान करती है।

क्रिया करते समय मन, वचन, काया की स्खलना होना दोष कहलाता है। इसमें मुख्य रूप से आठ प्रकार के दोष लगने की संभावना रहती है जो निम्न हैं-

1. **खेद-** धार्मिक अनुष्ठान करते समय थकान का अनुभव करना एवं मन की दृढ़ता न रखना प्रथम खेद नामक दोष है। जिस प्रकार पानी के बिना खेती सफल नहीं होती उसी तरह इस दोष के सेवन से धर्म आराधना सफल नहीं होती।

2. **उद्वेग-** क्रिया के प्रति मानसिक अरुचि होना अथवा क्रिया के समय परेशान होना दूसरा उद्वेग नामक दोष है।

3. **क्षेप-**क्रिया करते समय मन की डांवाडोल स्थिति होना, एक क्रिया करते हुए दूसरी क्रिया का चिंतन करना क्षेप नामक तीसरा दोष है। जिस प्रकार एक बार छिलके से निकाला गया शालि (चावल) का बीज फसल नहीं देता वैसे ही क्षेप युक्त क्रिया से वांछित फल की प्राप्ति नहीं होती।

4. **उत्थान-** क्रिया के प्रति चित्त में अभाव होना उत्थान दोष हैं। इस दोष के सेवन से धर्म क्रिया का महत्त्व विस्मृत हो जाता है एवं क्रिया मात्र यंत्रवत आचरण बनकर रह जाती है।

5. **भ्रान्ति-** क्रिया के मुख्य केन्द्रीभूत आशय को छोड़कर अन्य विचारों का चित्त में भ्रमण करना भ्रान्ति दोष है। इस दोष के सेवन से क्रिया का यथार्थ फल सिद्ध होने में विघ्न उपस्थित होते हैं।

6. **अन्यमुद्-** क्रिया करते हुए, क्रिया के विशुद्ध परिणामों का अवलंबन छोड़कर अन्य प्रसंग के कारण हर्षित होना अन्यमुद् दोष है। इस दोष के परिणामस्वरूप आचरित क्रिया का फल प्रायः व्यर्थ हो जाता है।

7. **रोग-** राग-द्वेष और मोह रूप त्रिदोष से अनेक भाव रोग उत्पन्न होते हैं। इस कारण क्रिया करते समय शुद्ध आशय की जानकारी न होने के कारण

क्रिया से भाव रोग के क्षय रूप फल की सिद्धि नहीं होती। ऐसी क्रियाएँ वंध्य स्त्री के समान निष्फलदायी होती है।

8. आसंग– किसी एक क्रिया से चिपके रहना या उसका आग्रह रखना आसंग दोष है। गुणस्थान आरोहण में सहायक किसी एक क्रिया में रुचि उत्पन्न होने से उसमें गुंद की तरह चिपके रहना आसंग क्रिया दोष है। ऐसी क्रिया करने से गुणस्थान में आरोहण नहीं होता।

क्रिया करते समय कई दुर्भाव एवं शंकाएँ हमारे हृदय में उत्पन्न होती है। जिन छोटी-छोटी शंकाओं के कारण साधक क्रिया का यथोक्त फल प्राप्त नहीं कर पाता अत: यथासंभव ऐसे दोषों से बचने का प्रयास करना चाहिए एवं तपाराधना के साथ निर्दिष्ट क्रियाओं को सम्यक प्रकार से करना चाहिए।

इस पुस्तक में आगम काल से अब तक प्रचलित विभिन्न तपों का प्रामाणिक शास्त्रोक्त स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। इस वर्णन के माध्यम से आराधक वर्ग अपनी इच्छा एवं सामर्थ्य अनुसार तप का चयन करते हुए उनका वहन कर सकता है। इसमें कई ऐसे तप हैं जिनका आचरण वर्तमान में दु:साध्य होने से नहीं किया जा सकता तदुपरांत उनके वर्णन करने का मुख्य उद्देश्य उन तपों के स्वरूप से परिचित करवाना एवं आगमोक्त तप की महत्ता को उजागर करना है।

इसमें लौकिक इच्छा पूर्ति के उद्देश्य से किए जाने वाले एवं लोकोत्तर दृष्टि प्रधान ऐसे दोनों प्रकार के तपों की चर्चा भी विस्तार से की गई है।

इस कृति का मुख्य उद्देश्य जिनवाणी के माध्यम से भवि जीवों को कर्म निर्जरा के मार्ग पर अग्रसर करना है। तप ही धर्म मार्ग में प्रवेश करने का Entry Gate और अंतिम लक्ष्य तक पहुँचाने वाला Exit Gate है। इस तप निर्देशिका में हर वर्ग की अपेक्षा से तप बताए गए हैं। जिससे तप मार्ग पर प्रथम बार आरूढ़ होने वाला व्यक्ति अपने सामर्थ्य अनुसार लघु तप का चयन कर सकें तथा तप साधना के अभ्यस्त साधक उत्कृष्ट कोटि की तप साधना के द्वारा शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। अंतत: आराधक वर्ग इसके माध्यम से जिन उपदिष्ट तप मार्ग पर अग्रसर होकर कर्म विमुक्त बन पाएं, इसी मनोभिलाषा के साथ।

वन्दना की झंकार

जैन विधि-विधानों से सम्बन्धित एक बृहद्स्तरीय अन्वेषण आज पूर्णाहुति की प्रतीक्षित अरूणिम वेला पर है। जिनका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संबल इस विराट् विषय के प्रतिपादन में आधार स्तंभ बना उन सभी उपकारी जनों की अभिवन्दना-अनुमोदना करने के लिए मन तरंगित हो रहा है। यद्यपि उन्हें पूर्णतः अभिव्यक्ति देना असंभव है फिर भी सामर्थ्य जुटाती हुई करबद्ध होकर सर्वप्रथम, जिनके दिव्य ज्ञान के आलोक ने भव्य जीवों के हृदयान्धकार को दूर किया, जिनकी पैंतीस गुणयुक्त वाणी ने जीव जगत का उद्धार किया, जिनके रोम-रोम से निर्झरित करूणा भाव ने समस्त जीवराशि को अभयदान दिया तथा मोक्ष मार्ग पर आरोहण करने हेतु सम्यक चारित्र का महादान दिया, ऐसे भवो भव उपकारी सर्वज्ञ अरिहंत परमात्मा के चरण सरोजों में अनन्त-अनन्त वंदना करती हूँ।

जिनके स्मरण मात्र से दुःसाध्य कार्य सरल हो जाता है ऐसे साधना सहायक, सिद्धि प्रदायक श्री सिद्धचक्र को आत्मस्थ वंदन।

चिन्तामणि रत्न की भाँति हर चिन्तित स्वप्न को साकार करने वाले, कामधेनु की भाँति हर अभिलाषा को पूर्ण करने वाले एवं जिनकी वरद छाँह में जिनशासन देदीप्यमान हो रहा है ऐसे क्रान्ति और शान्ति के प्रतीक चारों दादा गुरूदेव तथा सकल श्रुतधर आचार्यों के चरणारविन्द में भावभीनी वन्दना।

प्रबल पुण्य के स्वामी, सरलहृदयी, शासन उद्धारक, खरतरगच्छाचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागर सूरीश्वरजी म.सा. के पवित्र चरणों में श्रद्धा भरी वंदना। जिन्होंने सदा अपनी कृपावृष्टि एवं प्रेरणादृष्टि से इस शोध यात्रा को लक्ष्य तक पहुँचाने हेतु प्रोत्साहित किया।

जिनके प्रज्ञाशील व्यक्तित्व एवं सृजनशील कर्तृत्व ने जैन समाज में अभिनव चेतना का पल्लवन किया, जिनकी अन्तस् भावना ने मेरी अध्ययन रुचि को जीवन्त रखा ऐसे उपाध्याय भगवन्त पूज्य गुरुदेव श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. के चरण नलिनों में कोटिशः वन्दन।

मैं हृदयावनत हूँ प्रभुत्वशील एवं स्नेहिल व्यक्तित्व के धनी, गुण गरिमा से

मंडित प.पू. आचार्य पद्मसागरसूरीश्वरजी म.सा. की, जिन्होंने कोबा लाइब्रेरी के माध्यम से दुष्प्राप्य ग्रन्थों को उपलब्ध करवाया तथा सहृदयता एवं उदारता के साथ मेरी शंकाओं का समाधान कर प्रगति पाथेय प्रदान किया। उन्हीं के निश्रावर्ती मनोज्ञ स्वभावी, गणिवर्य्य श्री प्रशांतसागरजी म.सा. की भी मैं ऋणी हूँ जिन्होंने निस्वार्थ भाव से सदा सहयोग करते हुए मुझे उत्साहित रखा।

मैं कृतज्ञ हूँ सरस्वती साधना पथ प्रदीप, प.पू. ज्येष्ठ भ्राता श्री विमलसागरजी म.सा. के प्रति, जिन्होंने इस शोध कार्य की मूल्यवत्ता का आकलन करते हुए मेरी अंतश्चेतना को जागृत रखा।

मैं सदैव उपकृत रहूंगी प्रवचन प्रभावक, शास्त्र वेत्ता, सन्मार्ग प्रणेता प.पू. आचार्य श्री कीर्तियश सूरीश्वरजी म.सा एवं आगम मर्मज्ञ, संयमोत्कर्षी प.पू. रत्नयश विजयजी म.सा के प्रति, जिन्होंने नवीन ग्रन्थों की जानकारी देने के साथ-साथ शोध कार्य का प्रणयन करते हुए इसे विबुध जन ग्राह्य बनाकर पूर्णता प्रदान की।

मैं आस्था प्रणत हूँ जगवल्लभ प.पू. आचार्य श्री राजयश सूरीश्वरजी म.सा एवं वात्सल्य मूर्ति प.पू. बहन महाराज वाचंयमा श्रीजी म.सा के प्रति, जिन्होंने समय-समय पर अपने अनुभव ज्ञान द्वारा मेरी दुविधाओं का निवारण कर इस कार्य को भव्यता प्रदान की।

मैं नतमस्तक हूँ समन्वय साधक, भक्त सम्मोहक, साहित्य उद्धारक, अचल गच्छाधिपति प.पू. आचार्य श्री गुणरत्नसागर सूरीश्वरजी म.सा. के चरणों में, जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से मेरी जिज्ञासाओं का समाधान करके मेरे कार्य को आगे बढ़ाया।

मैं आस्था प्रणत हूँ लाडनूं विश्व भारती के प्रेरणा पुरुष, अनेक ग्रन्थों के सृजनहार, कुशल अनुशास्ता, साहित्य मनीषी आचार्य श्री तुलसी एवं आचार्य श्री महाप्रज्ञजी के चरणों में, जिनके सृजनात्मक कार्यों ने इस साफल्य में आधार भूमि प्रदान की।

इसी श्रृंखला में श्रद्धानत हूँ त्रिस्तुतिक गच्छाधिपति, पुण्यपुंज प.पू. आचार्य श्री जयन्तसेन सूरीश्वरजी म.सा. के प्रति, जिन्होंने हर संभव स्व सामाचारी विषयक तथ्यों से अवगत करवाते हुए इस शोध को सुलभ बनाया।

मैं श्रद्धावनत हूँ विश्व प्रसिद्ध, प्रवचन प्रभावक, क्रान्तिकारी सन्त प्रवर श्री

तरुणसागरजी म.सा के प्रति, जिन्होंने यथोचित सुझाव देकर रहस्य अन्वेषण में सहायता प्रदान की।

मैं आभारी हूँ मृदुल स्वभावी प.पू. पीयूषसागरजी म.सा. एवं गूढ़ स्वाध्यायी प. पू. सम्यक्रत्नसागरजी म.सा. की जिन्होंने सदैव मेरा उत्साह वर्धन किया।

उपकार स्मरण की इस कड़ी में अन्तर्हृदय से उपकृत हूँ महत्तरा पद विभूषिता पू. विनीता श्रीजी म.सा., प्रवर्त्तिनी प्रवरा पू. चन्द्रप्रभा श्रीजी म.सा., सरलमना पू. चन्द्रकला श्रीजी म.सा., मरूधर ज्योति पू. मणिप्रभा श्रीजी म.सा., स्नेह गंगोत्री पू. हेमप्रभा श्रीजी म.सा. एवं अन्य सभी समादृत साध्वी मंडल के प्रति, जिनके अन्तर मन की मंगल कामनाओं ने मेरे मार्ग को निष्कंटक बनाया तथा आत्मीयता प्रदान कर सम्यक् ज्ञान के अर्जन को प्रवर्द्धमान रखा।

जिनकी मृदुता, दृढ़ता, गंभीरता, क्रियानिष्ठता एवं अनुभव प्रौढ़ता ने सुज्ञजनों को सन्मार्ग प्रदान किया, जिनका निश्छल व्यवहार **'जहा अंतो तहा बहिं'** का जीवन्त उदाहरण था, जो पंचम आरे में चौथे आरे की साक्षात प्रतिमूर्ति थी, ऐसी श्रद्धालोक की देवता, वात्सल्य वारिधि, प्रवर्त्तिनी महोदया, गुरूवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा के पावन पद्मों में सर्वात्मना वंदन करती हूँ।

मैं उऋण भावों से कृतज्ञ हूँ जप एवं ध्यान की निर्मल ज़्योति से प्रकाशमान तथा चारित्र एवं तप की साधना से दीप्तिमान सज्जनमणि प.पू. गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा के प्रति, जिन्होंने मुझ जैसे अनघड़ पत्थर को साकार रूप प्रदान किया।

मैं अन्तर्हृदय से आभारी हूँ मेरे शोध कार्य की प्रारंभकर्त्ता, अनन्य गुरू समर्पिता, ज्येष्ठ गुरू भगिनी पू. प्रियदर्शना श्रीजी म.सा. तथा सेवाभावी पू. दिव्य दर्शना श्रीजी म.सा., स्वनिमग्ना पू. तत्त्वदर्शना श्रीजी म.सा., दृढ़ मनोबली पू. सम्यग्दर्शना श्रीजी म.सा., स्मित वदना पू. शुभदर्शना श्रीजी म.सा., मितभाषी पू. मुदितप्रज्ञा श्रीजी म.सा., समन्वय स्वभावी पू. शीलगुणाजी मृदु भाषिणी साध्वी कनकप्रभाजी, कोमल हृदयी श्रुतदर्शनाजी, प्रसन्न स्वभावी साध्वी संयमप्रज्ञाजी आदि समस्त गुरु भगिनि मण्डल की, जिन्होंने सामाजिक दायित्त्वों से निवृत्त रखते हुए सद्भावों की सुगन्ध से मेरे मन को तरोताजा रखा।

मेरी शोध यात्रा को पूर्णता के शिखर पर पहुँचाने में अनन्य सहयोगिनी,

सहज स्वभावी **स्थितप्रज्ञा जी** एवं विनम्रशीला **संवेगप्रज्ञा जी** तथा इसी के साथ अल्प भाषिणी **सुश्री मोनिका बैराठी** एवं शान्त स्वभावी **सुश्री सीमा छाजेड़** को साधुवाद देती हुई उनके उज्ज्वल भविष्य की तहेदिल से कामना करती हूँ।

मैं अन्तस्थ भावों से उपकृत हूँ श्रुत समाज के गौरव पुरुष, ज्ञान पिपासुओं के लिए सद्ज्ञान प्रपा के समान, आदरणीय डॉ. सागरमलजी के प्रति, जिनका सफल निर्देशन इस शोध कार्य का मूलाधार है।

इस बृहद् शोध के कार्य काल में हर तरह की सेवाओं के लिए तत्पर, उदारहृदयी श्रीमती मंजुजी सुनीलजी बोथरा (रायपुर) के भक्तिभाव की अनुशंसा करती हूँ।

जिन्होंने दूरस्थ रहकर भी इस ज्ञान यज्ञ को निर्बाध रूप से प्रवाहमान बनाए रखने में यथोचित सेवाएँ प्रदान की, ऐसी श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख (जगदलपुर) भी साधुवाद के पात्र हैं।

सेवा स्मरण की इस श्रृंखला में मैं ऋणी हूँ कोलकाता निवासी, अनन्य सेवाभावी श्री चन्द्रकुमारजी शकुंतलाजी मुणोत की, जिन्होंने ढ़ाई साल के कोलकाता प्रवास में भ्रातातुल्य स्नेह एवं सहयोग प्रदान करते हुए अपनी सेवाएँ अनवरत प्रदान की। श्री खेमचंदजी किरणजी बांठिया की अविस्मरणीय सेवाएँ भी इस शोध यात्रा की पूर्णता में अनन्य सहयोगी बनी।

सहयोग की इस श्रृंखला में मैं आभारी हूँ, टाटा निवासी श्री जिनेन्द्रजी नीलमजी बैद की, जिनके अथक प्रयासों से मुद्राओं का रेखांकन संभव हो पाया।

अनुमोदना की इस कड़ी में कोलकाता निवासी श्री कान्तिलालजी मुकीम, मणिलालजी दूसाज, कमलचंदजी धांधिया, विमलचन्दजी महमवाल, विजयेन्द्रजी संखलेचा, अजयजी बोथरा, महेन्द्रजी नाहटा, पन्नालाल दूगड़, निर्मलजी कोचर आदि की सेवाओं को विस्मृत नहीं कर सकती हूँ।

बनारस निवासी श्री अश्विनभाई शाह, ललितजी भंसाली, कीर्ति भाई ध्रुव दिव्येशजी शाह, राहुलजी गांधी आदि भी साधुवाद के अधिकारी हैं जिन्होंने अपनी आत्मियता एवं नि:स्वार्थ सेवाएँ बनारस प्रवास के बाद भी बनाए रखी।

इसी कड़ी में बनारस सेन्ट्रल लाइब्रेरी के मुख्य लाइब्रेरियन श्री संजयजी सर्राफ एवं श्री विवेकानन्दजी जैन की भी मैं अत्यंत आभारी हूँ कि उन्होंने पुस्तकें उपलब्ध करवाने में अपना अनन्य सहयोग दिया।

इसी श्रृंखला में श्री कोलकाता संघ, मुंबई संघ, जयपुर संघ, मालेगाँव संघ, अहमदाबाद संघ, बनारस संघ, शाजापुर संघ, टाटा संघ के पदाधिकारियों एवं धर्म समर्पित सदस्यों ने स्थानीय सेवाएँ प्रदान कर इस शोध यात्रा को सरल एवं सुगम बनाया अत: उन सभी को साधुवाद देती हूँ।

इस शोध कार्य को प्रामाणिक बनाने में कोबा लाइब्रेरी (अहमदाबाद) एवं वहाँ के सदस्यगण मनोज भाई, केतन भाई, अरूणजी आदि, एल. डी. इन्स्टीट्यूट (अहमदाबाद), प्राच्य विद्यापीठ (शाजापुर), पार्श्वनाथ शोध संस्थान (वाराणसी) एवं लाइब्रेरियन ओमप्रकाश सिंह तथा संस्थान अधिकारियों ने यथेच्छित पुस्तकों के आदान-प्रदान में जो सहयोग दिया, उसके लिए मैं उनकी सदैव आभारी रहूंगी।

प्रस्तुत कार्य को जन समुदाय के लिए उपयोगी बनाने में जिनकी पुण्यराशि संबल बनी है उन समस्त श्रुतप्रेमी लाभार्थी परिवार की उन्मुक्त कण्ठ से अनुमोदना करती हूँ।

इन शोध कृतियों को कम्प्यूटराईज्ड, संशोधन एवं सेटिंग करने में अनन्य सहयोगी विमलचन्द्र मिश्रा (वाराणसी) का अत्यन्त आभार मानती हूँ। आपके विनम्र, सुशील एवं सज्जन स्वभाव ने मुझे अनेक बार के प्रूफ संशोधन की चिन्ताओं से सदैव मुक्त रखा। स्वयं के कारोबार को संभालते हुए आपने इस बृहद् कार्य को जिस निष्ठा के साथ पूर्ण किया है यह सामान्य व्यक्ति के लिए नामुमकिन है।

इसी श्रृंखला में शांत स्वभावी श्री रंजनजी, रोहितजी कोठारी (कोलकाता) भी धन्यवाद के पात्र हैं। सम्पूर्ण पुस्तकों के प्रकाशन एवं कॅवर डिजाइनिंग में अप्रमत्त होकर अंतरमन से सहयोग दिया। शोध प्रबंध की सम्पूर्ण कॉपी बनाने का लाभ लेकर आप श्रुत संवर्धन में भी परम हेतुभूत बने हैं।

23 खण्डों को आकर्षक एवं चित्तरंजक कॅवर से नयनरम्य बनाने के लिए कॅवर डिजाईनर शंभु भट्टाचार्य की भी मैं तहेदिल से आभारी हूँ।

इसे संयोग कहूँ या विधि की विचित्रता? मेरी प्रथम शोध यात्रा की संकल्पना लगभग 17 वर्ष पूर्व जहाँ से प्रारम्भ हुई वहीं पर उसकी चरम पूर्णाहुति भी हो रही है। श्री जिनरंगसूरि पौशाल (कोलकाता) अध्ययन योग्य सर्वश्रेष्ठ स्थान है। यहाँ के शान्त-प्रशान्त परमाणु मनोयोग को अध्ययन के प्रति जोड़ने

में अत्यन्त सहायक बने हैं। इसी के साथ मैं साधुवाद देती हूँ श्रीजिनरंगसूरि पौशाल, कोलकाता के ट्रस्टी श्री कमलचंदजी धांधिया, कान्तिलालजी मुकीम, विमलचंदजी महमवाल, मणिलालजी दूसाज आदि समस्त भूतपूर्व एवं वर्तमान ट्रस्टियों को, जिन्होंने अध्ययन एवं स्थान की महत्त्वपूर्ण सुविधा के साथ कम्पोजिंग में भी पूर्ण रूप से अर्थ सहयोग दिया। इन्हीं की पितृवत छत्र-छाया में यह शोध कार्य शिखर तक पहुँच पाया है। इस अवधि के दौरान ग्रन्थ आदि की आवश्यक सुविधाओं हेतु शाजापुर, बनारस आदि शोध संस्थानों में प्रवास रहा। उन दिनों से ही जौहरी संघ के पदाधिकारी गण कान्तिलालजी मुकीम, मणिलालजी दूसाज, विमलचन्दजी महमवाल आदि बार-बार निवेदन करते रहे कि आप पूर्वी क्षेत्र की तरफ एक बार फिर से पधारिए। हम आपके अध्ययन की पूर्ण व्यवस्था करेंगे। उन्हीं की सद्भावनाओं के फलस्वरूप शायद इस कार्य का अंतिम प्रणयन यहाँ हो रहा है। इसी के साथ शोध प्रतियों के मुद्रण कार्य में भी श्री जिनरंगसूरि पौशाल ट्रस्टियों का हार्दिक सहयोग रहा है।

अन्ततः यही कहूँगी–

प्रभु वीर वाणी उद्यान की, सौरभ से महकी जो कृति ।
जड़ वक्र बुद्धि से जो मैंने, की हो इसकी विकृति ।
अविनय, अवज्ञा, आशातना, यदि हुई हो श्रुत की वंचना ।
मिच्छामि दुक्कडम् देती हूँ, स्वीकार हो मुझ प्रार्थना ।।

●

मिच्छामि दुक्कडं

आगम मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, जैन जगत की अनुपम साधिका, प्रवर्त्तिनी पद सुशोभिता, खरतरगच्छ दीपिका पू. गुरूवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की अन्तरंग कृपा से आज छोटे से लक्ष्य को पूर्ण कर पाई हूँ।

यहाँ शोध कार्य के प्रणयन के दौरान उपस्थित हुए कुछ संशय युक्त तथ्यों का समाधान करना चाहूँगी-

सर्वप्रथम तो मुनि जीवन की औत्सर्गिक मर्यादाओं के कारण जानते-अजानते कई विषय अनछुए रह गए हैं। उपलब्ध सामग्री के अनुसार ही विषय का स्पष्टीकरण हो पाया है अतः कहीं-कहीं सन्दर्भित विषय में अपूर्णता भी प्रतीत हो सकती है।

दूसरा जैन संप्रदाय में साध्वी वर्ग के लिए कुछ नियत मर्यादाएँ हैं जैसे प्रतिष्ठा, अंजनशलाका, उपस्थापना, पदस्थापना आदि करवाने एवं आगम शास्त्रों को पढ़ाने का अधिकार साध्वी समुदाय को नहीं है। योगोद्वहन, उपधान आदि क्रियाओं का अधिकार मात्र पदस्थापना योग्य मुनि भगवंतों को ही है। इन परिस्थितियों में प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या एक साध्वी अनधिकृत एवं अननुभूत विषयों पर अपना चिन्तन प्रस्तुत कर सकती है?

इसके जवाब में यही कहा जा सकता है कि 'जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' यह शोध का विषय होने से यत्किंचित लिखना आवश्यक था अतः गुरु आज्ञा पूर्वक विद्वद्वर आचार्य भगवंतों से दिशा निर्देश एवं सम्यक जानकारी प्राप्तकर प्रामाणिक उल्लेख करने का प्रयास किया है।

तीसरा प्रायश्चित्त देने का अधिकार यद्यपि गीतार्थ मुनि भगवंतों को है किन्तु प्रायश्चित्त विधि अधिकार में जीत (प्रचलित) व्यवहार के अनुसार प्रायश्चित्त योग्य तप का वर्णन किया है। इसका उद्देश्य मात्र यही है कि भव्य जीव पाप भीरू बनें एवं दोषकारी क्रियाओं से परिचित होवें। कोई भी आत्मार्थी इसे देखकर स्वयं प्रायश्चित्त ग्रहण न करें।

इस शोध के अन्तर्गत कई विषय ऐसे हैं जिनके लिए क्षेत्र की दूरी के कारण यथोचित जानकारी एवं समाधान प्राप्त नहीं हो पाए, अतः तद्विषयक पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं कर पाई हूँ।

कुछ लोगों के मन में यह शंका भी उत्पन्न हो सकती है कि मुद्रा विधि के अधिकार में हिन्दू, बौद्ध, नाट्य आदि मुद्राओं पर इतना गूढ़ अध्ययन क्यों?

मुद्रा एक यौगिक प्रयोग है। इसका सामान्य हेतु जो भी हो परंतु इसकी अनुश्रुति आध्यात्मिक एवं शारीरिक स्वस्थता के रूप में ही होती है।

प्रायः मुद्राएँ मानव के दैनिक चर्या से सम्बन्धित है। इतर परम्पराओं का जैन परम्परा के साथ पारस्परिक साम्य-वैषम्य भी रहा है अतः इनके सद्पक्षों को उजागर करने हेतु अन्य मुद्राओं पर भी गूढ़ अन्वेषण किया है।

यहाँ यह भी कहना चाहूँगी कि शोध विषय की विराटता, समय की प्रतिबद्धता, समुचित साधनों की अल्पता, साधु जीवन की मर्यादा, अनुभव की न्यूनता, व्यावहारिक एवं सामान्य ज्ञान की कमी के कारण सभी विषयों का यथायोग्य विश्लेषण नहीं भी हो पाया है। हाँ, विधि-विधानों के अब तक अस्पृष्ट पन्नों को खोलने का प्रयत्न अवश्य किया है। प्रज्ञा सम्पन्न मुनि वर्ग इसके अनेक रहस्य पटलों को उद्घाटित कर सकेंगे। यह एक प्रारंभ मात्र है।

अन्ततः जिनवाणी का विस्तार करते हुए एवं शोध विषय का अन्वेषण करते हुए अल्पमति के कारण शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा की हो, आचार्यों के गूढ़ार्थ को यथारूप न समझा हो, अपने मत को रखते हुए जाने-अनजाने अर्हतवाणी का कटाक्ष किया हो, जिनवाणी का अपलाप किया हो, भाषा रूप में उसे सम्यक अभिव्यक्ति न दी हो, अन्य किसी के मत को लिखते हुए उसका संदर्भ न दिया हो अथवा अन्य कुछ भी जिनाज्ञा विरुद्ध किया हो या लिखा हो तो उसके लिए त्रिकरण-त्रियोगपूर्वक श्रुत रूप जिन धर्म से मिच्छामि दुक्कड़म् करती हूँ।

●

विषयानुक्रमणिका

जैन धर्म की श्वेताम्बर परम्परा में प्रचलित तप-विधियाँ 1-246

1. श्वेताम्बर ग्रन्थों में वर्णित तपश्चर्या सूची

(i) अन्तकृतदशा सूत्र में उल्लिखित तप (ii) उत्तराध्ययन सूत्र में निर्दिष्ट तप (iii) पंचाशक प्रकरण में उपदिष्ट तप (iv) प्रवचनसारोद्धार में निरूपित तप (v) तिलकाचार्य सामाचारी में वर्णित तप (vi) सुबोधासामाचारी में प्रतिपादित तप (vii) विधिमार्गप्रपा में प्ररूपित तप (viii) आचारदिनकर में निर्दिष्ट तप।

2. तप विधियाँ– (i) केवलज्ञानी तीर्थंकर पुरुषों द्वारा प्ररूपित तप–

1. भिक्षु प्रतिमा-तप 2. सप्त सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा-तप 3. अष्टअष्टमिका भिक्षुप्रतिमा-तप 4. नवनवमिका भिक्षु प्रतिमा-तप 5. दशदशमिका भिक्षु प्रतिमा-तप 6. भद्रप्रतिमा-तप 7. महाभद्र प्रतिमा-तप 8. भद्रोत्तर प्रतिमा-तप 9. सर्वतोभद्र प्रतिमा-तप 10. गुणरत्नसंवत्सर-तप 11. लघुसिंह निष्क्रीडित-तप 12. महासिंहनिष्क्रीडित-तप 13. कनकावली-तप 14. मुक्तावली-तप 15. रत्नावली-तप 16. एकावली-तप 17. आयंबिल वर्धमान-तप 18. श्रेणी-तप 19. प्रतर-तप 20. घन-तप 21. महाघन-तप 22. वर्ग-तप 23. वर्ग-वर्ग तप 24. प्रकीर्ण-तप 25. इन्द्रियजय-तप 26. कषायजय-तप 27. योगशुद्धि-तप 28. धर्मचक्र-तप 29. लघुअष्टाह्निका-तपद्वय 30. अष्टकर्मसूदन-तप 31. उपासकप्रतिमा-तप।

(ii) गीतार्थ मुनियों द्वारा प्ररुपित तप–

1. कल्याणक-तप 2. तीर्थंकर दीक्षा-तप 3. तीर्थंकर केवलज्ञान-तप 4. तीर्थंकर निर्वाण-तप 5. ज्ञान दर्शन चारित्र-तप 6. चान्द्रायण-तप 7. वर्धमान-तप 8. परमभूषण-तप 9. ऊनोदरिका-तप 10. सल्लेखना-तप 11. सर्वसंख्या श्री महावीर-तप 12. ग्यारह अंग-तप 13. द्वादशांग-तप

14. चतुर्दशपूर्व-तप 15. ज्ञानपंचमी-तप 16. चतुर्विध संघ-तप 17. संवत्सर (वर्षी) तप 18. संवत्सर-तप 19. बारहमासिक-तप 20. अष्टमासिक-तप 21. छहमासिक-तप 22. पुण्डरीक-तप 23. नन्दीश्वर-तप 24. माणिक्य प्रस्तारिका-तप 25. पद्मोत्तर-तप 26. समवशरण-तप 27. एकादश गणधर-तप 28. अशोकवृक्ष-तप 29. एक सौ सित्तर जिन-तप 30. नवकार-तप 31. पंच परमेष्ठी-तप 32. दशविध यतिधर्म-तप 33. मेरू-तप 34. बत्तीस कल्याणक-तप 35. च्यवन-तप 36. सूर्यायण-तप 37. लोकनाली-तप 38. कल्याणक अष्टाह्निका-तप 39. माघमाला-तप 40. महावीर-तप 41. लक्षप्रतिपद-तप 42. अष्टापद पावड़ी-तप 43. मोक्षदण्ड-तप 44. अदुःखदर्शी-तप 45. गौतमपात्र-तप 46. निर्वाणदीप (दीपावली)-तप 47. अखण्डदशमी-तप 48. कर्मचूर्ण-तप 49. लघुनंद्यावर्त्त-तप 50. बृहत्नंद्यावर्त्त-तप 51. बीस स्थानक-तप 52. अष्टकर्मोत्तर प्रकृति-तप।

(iii) फल की आकांक्षा से किये जाने वाले तप–

1. सर्वाङ्गसुन्दर-तप 2. निरूजशिखा-तप 3. सौभाग्य कल्पवृक्ष-तप 4. दमयन्ती-तप 5. आयतिजनक-तप 6. अक्षयनिधि-तप 7. मुकुटसप्तमी-तप 8. अम्बा-तप 9. रोहिणी-तप 10. श्रुतदेवता-तप 11. श्री तीर्थंकर मातृ-तप 12. सर्वसुख सम्पत्ति-तप 13. लघु पखवासा-तप 14. अमृताष्टमी-तप 15. परत्रपाली-तप 16. नमस्कार फल-तप 17. अविधवा दशमी-तप

(iv) अर्वाचीन परम्परा में प्रचलित लौकिक तप–

1. अशुभ निवारण-तप 2. दारिद्रय निवारण-तप 3. कलंक निवारण-तप 4. स्वर्ण करण्डक-तप 5. अष्ट महासिद्धि-तप।

(v) अर्वाचीन परम्परा में प्रचलित लोकोत्तर तप–

1. मेरुत्रयोदशी-तप 2. पौषदशमी-तप 3. मौन एकादशी-तप 4. दस प्रत्याख्यान-तप 5. अट्ठाईस लब्धि-तप 6. अष्ट प्रवचन मातृ-तप 7. चत्तारि अट्ठ दस दोय-तप 8. कण्ठाभरण-तप 9. क्षीरसमुद्र-तप 10. पैंतालीस आगम-तप 11. तेरह काठिया-तप 12. देवलइंडा-तप 13. नवनिधि-तप 14. नव ब्रह्मचर्य गुप्ति-तप 15. निगोद आयुक्षय-तप 16. श्री पार्श्व गणधर-तप 17. रत्नरोहण-तप 18. बृहत् संसारतारण-तप 19. लघु संसार तारण-तप 20. षट्काय-तप 21 चिन्तामणि-तप 22. शत्रुञ्जय

मोदक-तप 23. शत्रुञ्जय छट्ठ-अट्ठम-तप 24. सिद्धि-तप 25. परदेशी राजा-तप 26. बावन जिनालय-तप 27. तीर्थ-तप 28. पञ्चरंगी-तप 29. चन्दनबाला-तप 30. नवपद ओली-तप 31. एक सौ आठ पार्श्वनाथ-तप 32. बीस विरहमान-तप 33.अष्टमी-तप 34. सहस्रकूट-तप।

परिशिष्ट – I : देववन्दन विधि 247-259

परिशिष्ट – II : प्रदक्षिणा-खमासमण सारणी 260-285

परिशिष्ट – III : तप सारणी 286-302

परिशिष्ट – IV : तप उपयोगी आवश्यक विधियाँ 303-310

●

जैन धर्म की श्वेताम्बर परम्परा में प्रचलित तप-विधियाँ

भरतीय संस्कृति तप-त्यागमूलक संस्कृति हैं। प्रत्येक धर्म संप्रदाय में तपमार्ग का अपना विशिष्ट महत्त्व रहा हुआ है। जैन परम्परा में तप को कर्मक्षय का मुख्य साधन माना गया है। इसकी विस्तृत साधना को बाह्य एवं आभ्यंतर तप के रूप में विभाजित किया गया हैं एवं दोनों का अपना वैशिष्ट्य हैं। बाह्य तप का स्वरूप अत्यंत विस्तृत है। इस अध्याय में आगम परम्परा से अब तक प्रचलित-अप्रचलित समस्त तपों का वर्णन किया है। इसके माध्यम से बाह्य तप की महत्ता उजागर होगी एवं बाह्य तप में रुचिवंत सुज्ञ जनों को अप्रतिम मार्ग की प्राप्ति होगी। आगमोक्त तप आराधना के द्वारा से साक्षात जिनवाणी की आराधना का लाभ प्राप्त हो सकता है। अत: यहाँ पर श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्परा में वर्णित तप-विधियों का वर्णन किया जा रहा है।

श्वेताम्बर ग्रन्थों में वर्णित तपश्चर्या सूची

श्वेताम्बर आगमों एवं पूर्ववर्ती ग्रन्थों में अनेकविध तपों का उल्लेख प्राप्त होता है। उनकी सामान्य जानकारी प्राप्त करवाने एवं कौन सा तप कितना प्राचीन है? इस मूल्य को दर्शाने हेतु कालक्रम पूर्वक एक सूची प्रस्तुत की जा रही है।

अन्तकृत्दशासूत्र में उल्लिखित तप

1. भिक्षुप्रतिमा तप 2. गुणरत्नसंवत्सर तप 3. रत्नावली तप 4. कनकावली तप 5. महासिंहनिष्क्रीडित तप 6. लघुसिंहनिष्क्रीडित तप 7. लघुसर्वतोभद्र तप 8. महासर्वतोभद्र तप 9. भद्रोत्तरप्रतिमा तप 10. मुक्तावली तप 11. आयंबिल वर्धमान तप **(पहला एवं आठवाँ वर्ग)**

उत्तराध्ययनसूत्र में निर्दिष्ट तप

इन आगम में निम्न छह तपों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है– 1. श्रेणी तप 2. प्रतर तप 3. घन तप 4. वर्ग तप 5. वर्गवर्ग तप 6. प्रकीर्ण तप।

(30/10-11)

आचार्य हरिभद्ररचित (8वीं शती) पंचाशक प्रकरण में उपदिष्ट तप

इस प्रकरण में लगभग 23 तप विधियों का वर्णन है उनके नाम इस प्रकार हैं – 1. तीर्थङ्कर दीक्षा तप 2. तीर्थङ्कर केवलज्ञान तप 3. तीर्थङ्कर निर्वाण तप 4. चान्द्रायण तप 5. रोहिणी तप 6. अम्बा तप 7. श्रुतदेवता तप 8. सर्वाङ्गसुन्दर तप 9. निरुजशिखा तप 10. परमभूषण तप 11. आयतिजनक तप 12. सौभाग्यकल्पवृक्ष तप 13. दर्शन-ज्ञान-चारित्र तप 14. योगशुद्धि तप 15. इन्द्रियविजय तप 16. कषायमथन तप 17. अष्टकर्मसूदन तप 18. तीर्थङ्करमातृका तप 19. समवसरण तप 20. नन्दीश्वर तप 21. पुण्डरीक तप 22. अक्षयनिधि तप 23. सर्वसौख्यसम्पत्ति तप।

आचार्य हरिभद्रसूरि ने गाथा 38 में 'आदि' शब्द का उल्लेख कर अन्य तपों की ओर भी सूचित किया है। साथ ही इन तपों की प्रामाणिक विधियाँ एवं कौनसा तप कब करना चाहिए? इस सम्बन्ध में अनुभवी लोगों से ज्ञात करने का निर्देश दिया है। **(19वाँ प्रकरण)**

आचार्य नेमिचन्द्र (10वीं शती) रचित प्रवचनसारोद्धार में निरूपित तप

प्रस्तुत ग्रन्थ में 38 तप विधियों का विवेचन है। उनके नाम इस प्रकार हैं– 1. इन्द्रियजय तप 2. योगशुद्धि तप 3. रत्नत्रय तप 4. कषायविजय तप 5. कर्मसूदन तप 6. लघुसिंहनिष्क्रीडित तप 7. महासिंहनिष्क्रीडित तप 8. मुक्तावली तप 9. रत्नावली तप10 कनकावली तप 11. भद्र तप 12. महाभद्र तप 13. भद्रोत्तर तप 14. सर्वतोभद्र तप 15. सर्वसुखसम्पत्ति तप 16. रोहिणी तप 17. श्रुतदेवता तप 18. सर्वाङ्गसुन्दर तप 19. निरुजशिखा तप 20. परमभूषण तप 21. आयतिजनक तप 22. सौभाग्यकल्पवृक्ष तप 23. तीर्थङ्करमाता तप 24. समवसरण तप 25. अमावस्या तप 26. पुण्डरीक तप 27. अक्षयनिधि तप 28. चन्द्र प्रतिमा तप 29. सप्तसप्तमिका तप 30. अष्टअष्टमिका तप 31. नवनवमिका तप 32. दशदशमिका तप 33. आयंबिल वर्धमान तप 34. गुणरत्नसंवत्सर तप 35. तीर्थङ्कर निष्क्रमण तप 36. तीर्थङ्कर केवलज्ञान तप 37. तीर्थङ्कर निर्वाण तप 38. बीसस्थानक तप।

(10वाँ, 43 से 45वाँ, 271 वाँ द्वार)

तिलकाचार्यकृत (13वीं शती) 'सामाचारी' में वर्णित तप

इस सामाचारी ग्रन्थ में 30 तप-विधियों का उल्लेख है, उनके नाम निम्न हैं – 1. कल्याणक तप 2. ज्ञानपंचमी तप 3. इन्द्रियजय तप 4. कषायविजय

तप 5. योगशुद्धि तप 6. उपधान तप 7. सर्वाङ्गसुन्दर तप 8. निरुजशिखा तप 9. आयतिजनक तप 10. परमभूषण तप 11. सौभाग्यकल्पवृक्ष तप 12. चान्द्रायण तप 13. ऊनोदरी तप 14. कर्मसूदन तप 15. तीर्थङ्कर दीक्षा तप 16. तीर्थंकर केवलज्ञान तप 17. तीर्थङ्कर निर्वाण तप 18. दवदन्ती तप 19. वर्धमान तप 20. भद्र तप 21. महाभद्र तप 22. भद्रोत्तर तप 23. महाभद्रोत्तर तप 24. गुणरत्नसंवत्सर तप 25. कनकावली तप 26. रत्नावली तप 27. मुक्तावली तप 28. सिंहनिष्क्रीडित तप 29. आयंबिल वर्धमान तप 30. ग्यारह प्रतिमा तप 31. योगोद्वहन तप।

(तप कुलक नाम का 12वाँ तथा 22-32 अधिकार)

श्रीमत् चन्द्राचार्य (12वीं शती) संकलित 'सुबोधा सामाचारी' में प्रतिपादित तप

प्रस्तुत सामाचारी प्रकरण में लगभग 39 तपों का स्वरूप बतलाया गया है। इन तपों की नाम सूची इस प्रकार है–

1. इन्द्रियजय तप 2. कषायमंथन तप 3. योगशुद्धि तप 4. अष्टकर्मसूदन तप 5. तीर्थङ्करमाता तप 6. समवसरण तप 7. नन्दीश्वर तप 8. पुण्डरीक तप 9. अक्षयनिधि तप 10. सर्वसौख्यसम्पत्ति तप 11. रोहिणी तप 12. अम्बा तप 13. श्रुतदेवता तप 14. सर्वाङ्गसुन्दर तप 15. निरुजशिखा तप 16. परमभूषण तप 17. आयतिजनक तप 18. सौभाग्यकल्पवृक्ष तप 19. ज्ञान-दर्शन-चारित्र तप 20. वज्रमध्य चान्द्रायण तप 21. यवमध्य चान्द्रायण तप 22. तीर्थङ्कर दीक्षा तप 23. तीर्थङ्कर केवलज्ञान तप 24. तीर्थङ्कर निर्वाण तप 25. ज्ञानपंचमी तप 26. मुकुटसप्तमी तप 27. माणिक्य प्रस्तारिका तप 28. भद्र तप 29. महाभद्र तप 30. भद्रोत्तर प्रतिमा तप 31. सर्वतोभद्र प्रतिमा तप 32. आयम्बिल वर्धमान तप 33. दवदन्ती तप 34. सप्तसप्तमिका तप 35. अष्टअष्टमिका तप 36. नवनवमिका तप 37. दशदशमिका तप38. उपधान तप 39. योगोद्वहन तप।

(पृ. 8-12, 21-34)

आचार्य जिनप्रभसूरि (14वीं शती) रचित विधिमार्गप्रपा में प्ररूपित तप

प्रस्तुत कृति में लगभग 45 तपों का विधिवत स्वरूप प्राप्त होता है। उनकी नाम सूची निम्नोक्त है–

1. तीर्थङ्कर दीक्षा तप 2. तीर्थङ्कर केवलज्ञान तप 3. तीर्थङ्कर निर्वाण तप 4. कल्याणक तप 5. सर्वाङ्गसुन्दर तप 6. निरुजशिखा तप 7. परमभूषण तप 8. आयतिजनक तप 9. सौभाग्य कल्पवृक्ष तप 10. इन्द्रियजय तप 11. कषायमंथन

तप 12. योगशुद्धि तप 13. अष्टकर्मसूदन तप 14. ज्ञान-दर्शन-चारित्र तप 15. रोहिणी तप 16. अम्बा तप 17. श्रुतदेवता तप 18. ज्ञानपंचमी तप 19. नन्दीश्वर तप 20. सत्य सुख सम्पत्ति तप 21. पुण्डरीक तप 22. तीर्थङ्कर मातृ तप 23. समवसरण तप 24. अक्षयनिधि तप 25. स्थविर वर्धमान तप 26. दवदन्ती तप 27. अष्टकर्म उत्तर-प्रकृति तप 28. चन्द्रायण तप 29. ऊनोदरी तप 30. भद्र तप 31. महाभद्र तप 32. भद्रोत्तर तप 33. सर्वतोभद्र तप 34. एकादश अंग तप 35. द्वादशांग तप 36. चतुर्दशपूर्व आराधना तप 37. अष्टापद तप 38. एक सौ सत्तर जिन आराधना तप 39. नवकार तप 40. बीस स्थानक तप 41. धर्मचक्र तप 42. सांवत्सरिक तप 43. बारहमासिक तप 44. अष्टमासिक तप 45. छहमासिक तप।

इनके अतिरिक्त माणिक्यप्रस्तारिका, मुकुटसप्तमी, अमृत-अष्टमी, अविधवादशमी, गौतमपड़वा, मोक्षदण्डक, अदुःखदीक्षिता, अखण्डदशमी आदि तपों का नामोल्लेख करते हुए यह सूचन दिया है कि ये तप आगम एवं गीतार्थ द्वारा आचरित न होने के कारण इनका विवेचन नहीं किया है। ग्यारह अंग, अष्टापद आदि तप विशेष स्थविरों (गीतार्थों) द्वारा अप्रवर्तित होने पर भी आराधना के योग्य हैं, इसलिए उनका वर्णन किया है तथा एकावली, कनकावली, रत्नावली, मुक्तावली, गुणरत्नसंवत्सर,क्षुद्रमहल्ल, सिंहनिष्क्रीड़ित आदि तप विशेष वर्तमान में दुष्कर होने से इनका स्वरूप नहीं बतलाया है। इस तरह विधिमार्गप्रपा में अतिरिक्त बहुत से तपों का नाम निर्देश है। **(14वाँ द्वार)**

आचार्य वर्धमानसूरि (15वीं शती) रचित आचारदिनकर में निर्दिष्ट तप

आचारदिनकर में लगभग 100 तपों का निरूपण करते हुए उन्हें तीन भागों में इस तरह विभक्त किया है– 1. तीर्थङ्कर प्ररूपित तप 2. गीतार्थ प्ररूपित तप और 3. सामान्य रूप से आचरित तप। इन तपों की नाम सूची यह है –

• 1. उपधान तप 2. श्राद्धप्रतिमा तप 3. यतिप्रतिमा तप 4. योग तप 5. इन्द्रियजय तप 6. कषायजय तप 7. योगशुद्धि तप 8. धर्मचक्र तप 9-10. अष्टाह्निकाद्वय तप 11. कर्मसूदन तप।

उक्त ग्यारह तप जिनेश्वर परमात्मा द्वारा कहे गये हैं। इनमें योगोद्वहन तप को छोड़कर शेष सभी तप साधु एवं श्रावकों द्वारा करने योग्य हैं। योगोद्वहन तप साधु-साध्वी के लिए ही करणीय है।

• 1. कल्याणक तप 2. ज्ञान-दर्शन-चारित्र तप 3. चान्द्रायण तप 4. वर्धमान तप 5. परमभूषण तप 6. तीर्थङ्कर दीक्षा तप 7. तीर्थङ्कर केवलज्ञान

तप 8. तीर्थङ्कर निर्वाण तप 9. ऊनोदरिका तप 10. संलेखना तप 11. सर्वसंख्या महावीर तप 12. कनकावली तप 13. मुक्तावली तप 14. रत्नावली तप 15. लघुसिंह निष्क्रीडित तप 16. बृहद्सिंह निष्क्रीडित तप 17. भद्रतप 18. महाभद्र तप 19. भद्रोत्तर तप 20. सर्वतोभद्र तप 21. गुणरत्नसंवत्सर तप 22. ग्यारह अंग तप 23. संवत्सर तप 24. नन्दीश्वर तप 25. पुण्डरीक तप 26. माणिक्य प्रस्तारिका तप 27. पद्मोत्तर तप 28. समवसरण तप 29. वीरगणधर तप 30. अशोकवृक्ष तप 31. एक-सौ-सत्तर जिन तप 32. नवकार तप 33. चौदहपूर्व तप 34. चतुर्दशी तप 35. एकावली तप 36. दशविध यतिधर्म तप 37. पंचपरमेष्ठी तप 38. लघुपंचमी तप 39. बृहत्पंचमी तप 40. चतुर्विधसंघ तप 41. धन तप 42. महाघन तप 43. वर्ग तप 44. श्रेणी तप 45. मेरू तप 46. बत्तीस कल्याणक तप 47. च्यवन तप 48. जन्म तप 49. लोकनालि तप 50. कल्याणकाष्टाह्निका तप 51. सूर्यायन तप 52. आचाम्लवर्धमान तप 53. महावीर तप 54. माघमाला तप 55. लक्षप्रतिपत तप।

ये उपरोक्त तप गीतार्थों द्वारा आचरित कहे गये हैं तथा साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप सभी साधकों के द्वारा आचरण करने योग्य हैं।

• 1. सर्वाङ्गसुन्दर-तप 2. निरुजशिखा-तप 3. सौभाग्यकल्पवृक्ष-तप 4. दमयन्ती-तप 5. आयतिजनक-तप 6. अक्षयनिधि-तप 7. मुकुटसप्तमी-तप 8. अम्बा-तप 9. श्रुतदेवी-तप 10. रोहिणी-तप 11. मातृ-तप 12. सर्वसुख-सम्पत्ति-तप 13. अष्टापदपावड़ी-तप 14. मोक्षदण्ड-तप 15. अदुःखदर्शी-तप 16. गौतमपडवा-तप 17. निर्वाण-तप 18. दीपक-तप 19. अमृताष्टमी-तप 20. अखण्डदशमी-तप 21. परत्रपाली-तप 22. सोपान-तप 23. कर्मचतुर्थ-तप 24. लघु नवकार-तप 25. अविधवादशमी-तप 26. बृहत्नंद्यावर्त्त-तप 27. लघुनंद्यावर्त्त-तप।

उपर्युक्त तप गृहस्थों के लिए सांसारिक फल आदि की अपेक्षा कहे गये हैं, जो किसी इच्छा की पूर्ति हेतु किये जाते हैं। **(भा. 2. पृ. 336)**

तुलना – यदि हम ऊपर वर्णित तप सूचियों का गहराई से अवलोकन करते हैं तो बोध होता है कि आगम-साहित्य में प्रायः बृहद् (कठिन) तपों का ही वर्णन है जिन्हें वर्तमान युग में क्रियान्वित कर पाना दुर्भर है। आचार्य जिनप्रभसूरि ने तो इस सम्बन्ध में स्पष्ट मन्तव्य दर्शाते हुए लिखा है कि मेरे द्वारा एकावली, कनकावली, रत्नावली आदि तपों का स्वरूप-विवेचन नहीं किया

गया है, क्योंकि ये तप इस समय दुःसाध्य हैं।

तदनन्तर 8वीं शती से 13वीं शती तक के ग्रन्थों में आगम का अनुसरण करते हुए अन्य अनेक तप निरूपित किये गये हैं, किन्तु वहाँ किसी तरह का विभागीकरण नहीं किया गया है। जबकि 14वीं शती (विधिमार्गप्रपा) एवं 15वीं शती (आचारदिनकर) के ग्रन्थों में तप संख्या की अधिकता के साथ-साथ उनका विभाजन भी प्राप्त होता है।

आचार्य जिनप्रभसूरि ने विधिमार्गप्रपा में उन्हीं तपों का विधि स्वरूप दिखलाया है जो गीतार्थ आचरित और आगम सम्मत हैं। उन्होंने गीतार्थ द्वारा अनाचरित तपों का मात्र नामोल्लेख किया है तथा अनाचरित होने से उनका स्वरूप दर्शाने में अपनी अरुचि प्रकट की है। आचार्य वर्धमानसूरि ने पूर्वाचार्यों की तुलना में सबसे अधिक तप-विधियों का उल्लेख किया है। उन्होंने अपना ध्यान न केवल तप संख्या की अभिवृद्धि की ओर दिया है अपितु उनका एक समुचित वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया है।

जब हम विधिमार्गप्रपा और आचारदिनकर इन दोनों ग्रन्थों के वर्गीकरण की ओर ध्यान देते हैं तो किञ्चित विरोधाभास परिलक्षित होता है। जैसे कि विधिमार्गप्रपा में माणिक्यप्रस्तारिका नामक तप को गीतार्थ अनाचरित कहा गया है, किन्तु आचारदिनकर के कर्त्ता ने इसे गीतार्थ भाषित कहा है।

आचारदिनकर में श्रावक की ग्यारह प्रतिमा नामक तप को तीर्थङ्कर प्रज्ञप्त कहते हुए उसे अधुनाऽपि स्वीकार करने का उपदेश दिया गया है जबकि विधिमार्गप्रपा में प्रतिमा रूप श्रावक धर्म को व्युच्छिन्न हुआ, ऐसा माना गया है इसलिए उसकी विधि भी नहीं कही गयी है। आचारदिनकर में श्रावक प्रतिमाओं का सम्यक् वर्णन उपलब्ध है।

विधिमार्गप्रपा में तीर्थङ्कर उपदिष्ट एवं गीतार्थ स्वीकृत तपों का वर्णन युगपद् है। इससे यह स्पष्ट नहीं हो पाता है कि जिनप्रभसूरि ने किन तपों को जिनेश्वर प्रणीत और किन तपों को गीतार्थ भाषित माना है जबकि आचारदिनकर में यह विभाजन सुन्दर ढंग से किया गया है।

यहाँ यह प्रश्न खड़ा हो सकता है कि आचार्य वर्धमानसूरि ने इन्द्रियजय, कषायजय, योगशुद्धि, धर्मचक्र आदि किञ्चित तपों को तीर्थङ्कर भाषित कहा है तो उनका उल्लेख आगम-साहित्य के पृष्ठों पर अवश्य होना चाहिए जबकि उन तपों के नाम से वहाँ कोई चर्चा दृष्टिगत नहीं होती, तो यह विरोधाभास कैसे?

इसका समाधान यह है कि तीर्थङ्करों ने जिन तपों का प्रयोग किया, वह सब

आगम पृष्ठों पर तप संज्ञा के रूप में उल्लिखित हो यह आवश्यक नहीं, क्योंकि जैसे भगवान महावीर ने साधनाकाल के दरम्यान एकमासी तप, द्विमासी तप, ढाईमासी तप, चातुर्मासिक तप आदि अनेक तपस्याएँ की। उनका वर्णन प्रभु के जीवन चरित्र (कल्पसूत्र टीका) में अवश्य आता है, परन्तु उसके अतिरिक्त किन्हीं आगम या परवर्ती साहित्य में वह चर्चा तप-विधि के रूप में प्राप्त नहीं होती है। इसी भाँति इन्द्रियजय आदि तपों के विषय में समझना चाहिए।

कालक्रम से तप संख्या में जो अभिवृद्धि हुई उसका मुख्य कारण तत्कालीन परिस्थिति कही जा सकती है। द्रव्य, क्षेत्र और काल के अनुसार जब साधक कठिन या दीर्घ तप करने से विमुख होने लगे, तो उन्हें तप-साधना में जुटाये रखने के उद्देश्य से गीतार्थों ने छोटे-छोटे तपों की स्थापना की। उनमें भी मनोबल एवं देहबल को ध्यान में रखते हुए कुछ सामान्य तो कुछ विशिष्ट तपों का निरूपण किया, ताकि हर वर्ग के साधक इस साधना से जुड़ सकें। अति साधारण प्राणियों के लिए सांसारिक फल देने वाले तपों का भी निर्देश किया गया जिन्हें प्रारम्भ में भले ही किसी तरह की कामना पूर्ति हेतु अपनाया जाए, परन्तु धीरे-धीरे साधक उनसे ऊपर उठ जाता है।

आचार्य हरिभद्रसूरि ने पंचाशकप्रकरण में इस विषय का अच्छा स्पष्टीकरण किया है। हम इस विषयक खुलासा आगे करेंगे। यहाँ इतना ही ज्ञातव्य है कि देश-काल की स्थितियों एवं साधक की मनोवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए नये-नये तपों की प्रतिस्थापना के द्वारा तप संख्या में बढ़ोत्तरी होती गयी, प्रत्युत शास्त्रीय सम्बद्ध दुःसह तपों की मूल्यवत्ता को सुरक्षित रखने हेतु उनका विवेचन भी यथावत दर्शाया जाता रहा है।

यहाँ ध्यातव्य हैं कि विधिमार्गप्रपा एक प्रामाणिक, सामाचारीबद्ध एवं सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसमें इससे पूर्ववर्ती ग्रन्थों में वर्णित सभी तप-विधियाँ भी समाविष्ट हैं। दूसरे, आचारदिनकर में इससे भी अधिक तप-विधियों का निरूपण है, अतः यहाँ प्रमुख रूप से उक्त ग्रन्थों के आधार पर ही सभी तपों की आवश्यक चर्चा करेंगे।

तप-विधियाँ

तप भारतीय साधना का प्राण तत्त्व है। जैसे शरीर में उष्मा जीवन के अस्तित्व की द्योतक है वैसे ही साधना में तप उसके मूल अस्तित्व को

अभिव्यक्त करता है। तप के बिना न निग्रह संभव है न अभिग्रह शास्त्रानुसार केवल आहार का त्याग करना ही तप नहीं है प्रत्युत विषय-वासना, कषाय आदि कलुषित भावों का त्याग करना ही तप है। भोजन आदि का परित्याग बाह्य तप है तथा वासनादि प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण करना आभ्यन्तर तप कहलाता है। तप अन्तर्मानस में पल्लवित हुए या हो रहे विकारों को जलाकर भस्म कर देता है और साथ ही मिथ्यात्वादि से आच्छादित अज्ञान रूपी अन्धकार को भी नष्ट कर देता है। इसलिए तप ज्वाला भी है और ज्योति भी है। तप एक ऐसा कल्पवृक्ष है जिसकी निर्मल छत्र छाया में साधना के अमृत फल प्राप्त होते रहते हैं।

पूर्वाचार्यों ने तप की महिमा का संगान करते हुए कहा है कि –

यद्दूरं यद्दूराराध्यं, यच्च दूरे व्यवस्थितम् ।
तत् सर्वं तपसा साध्यं, तपो हि दुरतिक्रमम् ।।

(आचारदिनकर, भा.2, पृ. 334)

जो वस्तु अत्यन्त दूर है, अत्यन्त दुस्साध्य है और कष्ट द्वारा आराधी जा सकती है वे सब वस्तुएँ तपश्चर्या द्वारा ही साध्य होती हैं, क्योंकि तपश्चर्या का प्रभाव दुरतिक्रम है अर्थात उसका उल्लंघन कोई कर नहीं सकता।

इसी क्रम में आचार्य वर्धमानसूरि यह भी कहते हैं कि जो व्यक्ति शिवकुमार की तरह गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी तपस्या का आचरण करता है वह देव सभा में कान्ति, द्युति, महत्ता और स्फूर्ति को प्राप्त करने वाला (देव) होता है। जैसे– अग्नि के प्रचण्ड ताप में तप कर सुवर्ण उज्ज्वलता, सर्व धातुओं में विशिष्टता एवं श्रेष्ठता को प्राप्त करता है, उसी प्रकार तप करने वाला मनुष्य सर्वोच्च एवं विशिष्ट स्थान को प्राप्त करता है।

तप से समग्र कर्मों का भेदन होता है तथा विविध प्रकार की लब्धियाँ प्राप्त होती हैं। शास्त्रों में नंदीषेण नामक ब्राह्मण का कथानक आता है कि वह सर्वत्र महादुर्भागी माना जाता था, किन्तु चारित्रपूर्वक क्षमा युक्त तप करने से देव एवं मनुष्यों के द्वारा पूजा गया।

एक जगह कहा गया है कि

अथिरं पि थिरं वंकंपि, उज्जुअं दुल्लहं पि तह सुलहं ।
दुसज्झं पि सुसज्झं, तवेण संपज्जए वज्जं ।।

तप के प्रभाव से अस्थिर वस्तु स्थिर होती है, वक्र वस्तु सरल होती है, दुर्लभ वस्तु सुलभ होती है तथा जो दुःसाध्य है वह सुसाध्य होती है।

चक्रवर्ती की छः खण्ड जैसी कठिन साधना भी तप के द्वारा ही फलीभूत होती है। इस प्रकार तीर्थङ्करों एवं गीतार्थ-मुनियों द्वारा निर्दिष्ट तप को विधिवत करने से मनुष्यों को मनवांछित सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। जैनाचार्यों ने तपस्या पर बल देते हुए इतना तक निर्दिष्ट किया है कि यदि दान देने की शक्ति न हो तो पुण्यवन्त मनुष्यों को स्वयं की शारीरिक-शक्ति के अनुसार तपःकर्म अवश्य करना चाहिए।

सामान्यतया तपश्चर्या के मुख्य दो प्रकार हैं – 1. बाह्य तप और 2. आभ्यन्तर तप। ये द्विविध तप छह-छह प्रकार के कहे गये हैं इस तरह तप के बारह प्रकार होते हैं। षड्विध बाह्य तप के अवान्तर अनेक भेद हैं।

तीर्थङ्करों एवं मुनिवरों ने तप के प्रत्येक भेद-प्रभेदों की क्रम पूर्वक विधि बतलायी है। उनमें से कुछ तप केवलज्ञानियों द्वारा कहे गये हैं, कुछ तप गीतार्थ मुनिवरों द्वारा बताये गये हैं तथा कुछ तप ऐहिक फल के इच्छुकों द्वारा आचरित हैं। इस प्रकार सर्व तपों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

यहाँ तप विधियों का स्वरूप बतलाने के पूर्व मुख्य रूप से कहने योग्य यह है कि आचारदिनकर नामक ग्रन्थ में सभी तपों को तीन भागों में बांटा गया है। उन वर्गीकृत किञ्चिद् तपों के सम्बन्ध में प्रश्नचिह्न उपस्थित होते हैं जैसे कि आचार्य वर्धमानसूरि ने वर्ग तप, श्रेणी तप, घन तप, महाघन तप आदि को गीतार्थ भाषित कहा है जबकि उनका मूल उल्लेख उत्तराध्ययनसूत्र में प्राप्त होता है। यह आगमसूत्र भगवान महावीर की साक्षात अन्तिम वाणी का संकलन रूप है और इसे अन्तिम उपदेश के रूप में मानते हैं तब उक्त वर्गादि तप तीर्थङ्कर प्रणीत होने चाहिए। आचार्य वर्धमानसूरि ने कनकावली, मुक्तावली, रत्नावली आदि आगम वर्णित तपों को भी गीतार्थ भाषित कहा है जबकि उन तपों की आराधना प्रायः श्रेणिक राजा की महारानियों ने की है। यह वर्णन अन्तकृत दशा नामक आठवें अंग सूत्र में है और अंग सूत्रों में तीर्थङ्करों की मूल वाणी को संकलित एवं गुम्फित मानते हैं। दूसरी बात, राजा श्रेणिक चौबीसवें तीर्थङ्कर परमात्मा महावीर के शासनकाल में हुए हैं, अतः उनकी रानियों द्वारा आचरित तप तीर्थङ्कर प्रज्ञप्त होने चाहिए।

इस प्रकार भले ही तप संख्या की अधिकता एवं प्रचलित सामाचारी में सर्वमान्य होने से विधिमार्गप्रपा और आचारदिनकर को मूलभूत आधार बनाया है फिर भी आगम कथित तपों का स्वरूप यथायोग्य वर्गीकरण के साथ किया जायेगा।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इन तपों में योगोपधान मुख्य है और उसकी विधि केवली द्वारा भाषित है, अतएव इस तप की चर्चा खण्ड-3 गृहस्थ के व्रतारोपण अधिकार में कर चुके हैं। गृहस्थों के लिए योगोद्वहन-तप का विधान नहीं है, किन्तु मुनियों को इसे अवश्य करना चाहिए।

ऐहिक फल की पूर्ति करने वाली तपस्याएँ साधु-साध्वियों तथा प्रतिमाधारी एवं सम्यक्त्वधारी श्रावकों को नहीं करनी चाहिए। शेष सभी तप गुणवान साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकाओं के द्वारा अवश्यमेव करणीय हैं।

केवलज्ञानी तीर्थङ्कर पुरुषों द्वारा प्ररूपित तप

1. भिक्षु प्रतिमा तप

प्रतिमा का सामान्य अर्थ है प्रतिज्ञा। विविध प्रकार के अभिग्रहों के साथ तप का आचरण करना प्रतिमा कहलाता है। प्रतिमाएँ बारह प्रकार की कही गयी हैं। यह प्रतिमा-तप मुनियों के द्वारा कष्ट साध्य परिस्थितियों को सहर्ष रूप से स्वीकार करने, समत्व योग की साधना करने एवं विपुल कर्मों की निर्जरा करने के उद्देश्य से वहन किया जाता है।

बारह प्रतिमाओं की तप-विधि कहने से पूर्व यह बतलाना जरूरी है कि प्रतिमाधारी साधु इस तपश्चरण के दरम्यान अग्रांकित नियमों का पालन करता हुआ उत्तरोत्तर आत्मदिशा की ओर अभिमुख होता है। दशाश्रुतस्कन्धसूत्र में इस विषयक विस्तृत चर्चा की गयी है। यह भी ध्यातव्य है कि भिक्षु प्रतिमा सम्बन्धी विशद् वर्णन इसी छेदसूत्र में उपलब्ध होता है।

- दशाश्रुत (सातवीं दशा) के अनुसार प्रतिमाधारी साधु जहाँ एक व्यक्ति के लिए भोजन बना है, वहाँ से आहार नहीं लेते हैं।
- गर्भवती या छोटे बच्चे की माँ के लिए बनाया गया भोजन नहीं लेते हैं।
- दुग्धपान छुड़वाकर भिक्षा देने वाली स्त्री तथा अपने आसन से उठकर भोजन देने वाली आसन्न प्रसवा स्त्री से भोजन नहीं लेते हैं।
- जिसके दोनों पैर देहली के भीतर या बाहर हो उससे आहार नहीं लेते हैं।

• दिन के आदि, मध्य और चरम इन तीन भागों में से एक भाग में भिक्षाटन करते हैं।

• परिचित स्थान पर एक रात तथा अपरिचित स्थान पर एक या दो रात रुकते हैं।

• प्रतिमाधारी भिक्षु 1. आहार की याचना करने हो 2. मार्ग पूछने 3. स्थान आदि के लिए आज्ञा लेने और 4. आवश्यक प्रश्नों का उत्तर देने – इन चार कार्यों से ही भाषा का प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त मौन रहते हैं।

• वे मुनि जीवन की सुरक्षा के लिए स्वयं के स्थान से बाहर नहीं निकलते।

• विहार करते समय यदि पाँव में कांटा लग जाये तो उसे निकालते नहीं हैं और आँखों में धूल पड़ जाये तो उसको भी दूर नहीं करते हैं।

• ज़हाँ सूर्यास्त हो जाए वहीं ठहर जाते हैं।

• मात्र लिंग शुद्धि के लिए जल का प्रयोग करते हैं।

• विहार के समय यदि कोई हिंसक जीव सामने आ जाए तो डरकर पीछे नहीं हटते।

• शीत निवारण के लिए गरम स्थानों या तद्रूप वस्त्रों का सेवन नहीं करते।

• गर्मी का परिहार करने के लिए शीत स्थान में नहीं जाते। इस तरह विशिष्ट नियमों के द्वारा प्रतिमाओं का पालन करते हैं।

द्वादश प्रतिमाओं का स्वरूप इस प्रकार है –

1. मासिकी प्रतिमा – इस प्रतिमा के धारक साधु एक अन्न की और एक पानी की दत्ति ग्रहण करते हैं। दत्ति का अभिप्राय है अखण्ड धारा यानि दाता भोजन देना प्रारम्भ करे, तब से जब तक वह क्रम बीच में नहीं टूटता तब तक का आहार एक दत्ति रूप कहलाता है। गृहस्थ अपने तरीके से भोजनादि देता है, अत: अन्न-पानी की धारा तुरन्त भी टूट सकती है और अधिक आहार के रूप में भी चल सकती है।

प्रथम प्रतिमाधारी साधु एक मास तक किसी प्रकार का सांसारिक चिन्तन न करते हुए हमेशा कायोत्सर्ग में रहते हैं। सिर्फ एक बार भिक्षा के लिए जाते हैं। उसमें भी कठोर नियम के साथ यदि आहार मिले तो लेते हैं वरना बिना लिए ही लौट आते हैं।

2-7. द्विमासिकी आदि प्रतिमाएँ – दूसरी प्रतिमा धारण करने वाले साधु दो मास तक दो दत्ति भोजन की एवं दो दत्ति पानी की ग्रहण करते हैं। शेष चर्या पहली प्रतिमा के समान जाननी चाहिए।

इसी भाँति तीसरी प्रतिमा धारण करने वाले साधु तीन मास तक तीन-तीन दत्ति ग्रहण करते हैं। इसी क्रम से चौथी प्रतिमा धारण करने वाले साधु चार मास तक भोजन-पानी की चार-चार दत्ति, पांचवीं प्रतिमा धारक साधु पाँच मास तक भोजन-पानी की पाँच-पाँच दत्ति, छठवीं प्रतिमाधारक साधु छह मास तक भोजन-पानी की छह-छह दत्ति, सातवीं प्रतिमा धारण करने वाले साधु सात मास तक भोजन-पानी की सात-सात दत्ति ग्रहण करते हैं।

8. आठवीं प्रतिमा – यह प्रतिमा सात अहोरात्रि की होती है। इसमें सात दिन एकान्तर चौविहार उपवास और पारणे में आयंबिल करते हैं, इस तरह तीन उपवास और चार आयंबिल होते हैं।

इस प्रतिमा में साधु गाँव के बाहर उत्तानासन, पार्श्वासन या निषद्यासन (पालथी मारकर) से कायोत्सर्ग में स्थिर रहते हैं।

9. नौवीं प्रतिमा – यह प्रतिमा पूर्ववत सात अहोरात्रि की होती है। इसमें भी सात दिन एकान्तर निर्जल उपवास और पारणे में आयंबिल करते हैं। विशेष यह है कि इस प्रतिमा के आराधन काल में साधु गाँव के बाहर दण्डासन (सीधे दण्डवत लेटना), लकुटासन (पीठ के बल लेटना) या उत्कटासन से कायोत्सर्ग में स्थिर रहते हैं।

10. दसवीं प्रतिमा – यह प्रतिमा पूर्ववत सात अहोरात्रि की होती है। इसमें भी सात दिन एकान्तर निर्जल उपवास और पारणे में आयंबिल करते हैं। विशेष यह है कि इस प्रतिमा के आराधन काल में भिक्षु गोदोहनिकासन, वीरासन या आम्रकुब्जासन से कायोत्सर्ग में स्थित रहते हैं।

11. ग्यारहवीं प्रतिमा – यह प्रतिमा एक अहोरात्रि की होती है। इसमें प्रतिमाधारी भिक्षु चौविहार (निर्जल) बेला करके गाँव के बाहर शून्य स्थान में व्याघ्र की भाँति भुजाएँ सीधी लम्बी करके कायोत्सर्ग करते हैं।

12. बारहवीं प्रतिमा – यह प्रतिमा एक रात्रि की होती है। इसमें साधु निर्जल अष्टम (तेला) तप करके गाँव के बाहर जिन मुद्रा (दोनों पैर के बीच चार अंगुल का अन्तर रखते हुए सीधे सम अवस्था में खड़े रहना) में स्थित होकर

भुजाओं को जानु पर्यन्त लम्बी करके, एक पदार्थ पर दृष्टि स्थिर रखते हुए अनिमेष नेत्रों से एक रात तक कायोत्सर्ग करते हैं।

इस प्रतिमा के सम्बन्ध में विशेष इतना है कि इसका कालमान अन्य प्रतिमाओं की अपेक्षा कम होने पर भी इसकी साधना कठोर होती है और इसीलिए विशिष्ट सत्त्वशाली व धीर पुरुष साधु ही इस प्रतिमा का आराधन कर सकते हैं। इस तपश्चरण में अनेक प्रकार के दैविक, मानुषिक एवं तिर्यञ्च-सम्बन्धी उपसर्ग आते हैं फिर भी वे चलित नहीं होते। इस आराधना में सफल होने पर उन्हें अवधिज्ञान या मनःपर्यवज्ञान की प्राप्ति अवश्य होती है। गजसुकुमाल मुनि ने श्मशान में इस महाप्रतिमा की आराधना करके एक ही दिन में मोक्ष प्राप्त किया था। प्राचीनकाल में भिक्षु प्रतिमा रूप तप धर्म सम्यक् रूप से प्रवर्त्तित था परंतु घटित वर्तमान में कष्ट सहिष्णुता से यह तप व्युच्छिन्न हो गया है किन्तु दिगम्बर परम्परा में आज भी न्यूनाधिक रूप से विद्यमान है।

इन बारह प्रतिमाओं में आठ सौ चालीस दत्तियाँ, छब्बीस उपवास एवं अट्ठाईस एक भक्त होते हैं। इस तरह कुल 28 मास और 26 दिन लगते हैं।

2. सप्तसप्तमिका भिक्षु प्रतिमा-तप

यह प्रतिमा तप सात सप्ताहों की अवधि में किया जाता है तथा इस प्रतिमा को विशिष्ट मुनिजन ही धारण कर सकते हैं। इसलिए इसे सप्तसप्तमिका भिक्षु प्रतिमा कहा गया है। यह प्रतिमा कर्मों की विशेष निर्जरा करने के उद्देश्य से धारण की जाती है। अन्तकृत्दशासूत्र (आंठवां वर्ग, अध्ययन पांचवां) के अनुसार श्रेणिक राजा की महारानी आर्य्या सुकृष्णा ने दीक्षा अंगीकार कर इस प्रतिमा को वहन किया था।

यहाँ विशेष ज्ञातव्य यह है कि बारह भिक्षु प्रतिमा से यह सप्तसप्तमिका भिक्षु प्रतिमा अलग है। उससे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। सातवीं भिक्षु प्रतिमा का समय एक मास है और उसमें सात दत्तियाँ भोजन की और सात दत्तियाँ पानी की ग्रहण की जाती हैं, परन्तु इस भिक्षु प्रतिमा का समय 49 दिन-रात्रि का है। यह सात सप्ताहों में पूर्ण होती है

विधि – सप्तसप्तमिका भिक्षु प्रतिमा की तप विधि इस प्रकार है–

इस प्रतिमा के आराधन काल के प्रथम सप्ताह में प्रतिदिन एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। इसी तरह द्वितीय सप्ताह में दो

दत्ति भोजन की और दो दत्ति पानी की ग्रहण करते हैं, इसी भाँति क्रमशः एक-एक की वृद्धि करते हुए तृतीय सप्ताह में तीन-तीन, चौथे सप्ताह में चार-चार, पांचवें सप्ताह में पाँच-पाँच, छठे सप्ताह में छह-छह और सातवें सप्ताह में सात-सात दत्तियाँ अन्न-पानी की ग्रहण की जाती हैं।

इस प्रकार सप्तसप्तमिका भिक्षु प्रतिमा में उनचास (49) दिन लगते हैं तथा दत्तियों की संख्या 196 होती है।

इसका यन्त्र निम्नोक्त है–

दत्ति संख्या							कुल दिन
1	1	1	1	1	1	1	7
2	2	2	2	2	2	2	14
3	3	3	3	3	3	3	21
4	4	4	4	4	4	4	28
5	5	5	5	5	5	5	35
6	6	6	6	6	6	6	41
7	7	7	7	7	7	7	49
तप दिन 49, दत्तियाँ 196							

3. अष्टअष्टमिका भिक्षु प्रतिमा तप

यह प्रतिमा पूर्ववत सप्तसप्तमिका नामक भिक्षु प्रतिमा की तरह ही वहन की जाती है। विशेष इतना है कि इस प्रतिमा की आराधना आठ अष्टकों में होती है।

विधि– अन्तकृत्दशासूत्र (2/5,18) के अनुसार यह प्रतिमा श्रेणिक राजा की रानी आर्या सुकृष्णा ने धारण की थी। इस प्रतिमा में पहले आठ दिनों में एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण करते हैं। दूसरे अष्टक में अन्न-

पानी की दो-दो दत्तियाँ ग्रहण करते हैं इसी तरह क्रमशः एक-एक की वृद्धि करते हुए तीसरे अष्टक में तीन-तीन, चौथे अष्टक में चार-चार, पांचवें अष्टक में पाँच-पाँच, छठवें अष्टक में छह-छह, सातवें अष्टक में सात-सात और आठवें अष्टक में अन्न-जल की आठ-आठ दत्तियाँ ग्रहण की जाती है।

इस अष्ट-अष्टमिका भिक्षुप्रतिमा की आराधना में कुल 64 दिन और 288 दत्तियाँ ग्रहण की जाती हैं।

अष्टअष्टमिका भिक्षुप्रतिमा का यन्त्र इस प्रकार है –

दत्ति संख्या								कुल दिन
1	1	1	1	1	1	1	1	8
2	2	2	2	2	2	2	2	16
3	3	3	3	3	3	3	3	24
4	4	4	4	4	4	4	4	32
5	5	5	5	5	5	5	5	40
6	6	6	6	6	6	6	6	48
7	7	7	7	7	7	7	7	56
8	8	8	8	8	8	8	8	64
तप दिन 64, दत्तियाँ 288								

4. नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा तप

यह प्रतिमा पूर्ववत सप्तसप्तमिका भिक्षु प्रतिमा की तरह वहन करते हैं। विशेष इतना है कि इस प्रतिमा की तपश्चर्या विधि नौ-नवकों में पूर्ण की जाती है। अन्तकृत्‌दशा सूत्र (8/5) के अनुसार यह तप आर्य्या सुकृष्णा रानी ने प्रव्रज्या काल में किया था। इसकी विधि निम्न है–

विधि – इस नवनवमिका भिक्षु प्रतिमा की आराधना करते समय प्रथम नवक (नौ दिन) में प्रतिदिन एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार आगे क्रमशः एक-एक दत्ति बढ़ाते हुए दूसरे नवक में दो-

दो, तीसरे नवक में तीन-तीन, चौथे नवक में चार-चार, पांचवें नवक में पाँच-पाँच, छठें नवक में छह-छह, सातवें नवक में सात-सात, आठवें नवक में आठ-आठ और नौवें नवक में अन्न-जल की नौ-नौ दत्तियाँ ग्रहण की जाती हैं।

इस प्रकार यह नव-नवमिका भिक्षु प्रतिमा इक्यासी (81) दिनों एवं 405 दत्तियों के द्वारा पूर्ण होती है।

नवनवमिका भिक्षु प्रतिमा का यन्त्र यह है –

दत्ति संख्या									कुल दिन
1	1	1	1	1	1	1	1	1	9
2	2	2	2	2	2	2	2	2	18
3	3	3	3	3	3	3	3	3	27
4	4	4	4	4	4	4	4	4	36
5	5	5	5	5	5	5	5	5	45
6	6	6	6	6	6	6	6	6	54
7	7	7	7	7	7	7	7	7	63
8	8	8	8	8	8	8	8	8	72
9	9	9	9	9	9	9	9	9	81
तप दिन 81 * दत्तियाँ 405									

5. दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा तप

यह प्रतिमा पूर्ववत सप्तसप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा की तरह वहन की जाती है। विशेष इतना है कि इस प्रतिमा की तपश्चर्या दश-दशकों में पूर्ण होती है। अन्तकृत्दशासूत्र (5वाँ अध्ययन) के अनुसार यह तप आर्य्या सुकृष्णा ने आराधित किया था।

विधि– इस दशदशमिका नामक भिक्षु प्रतिमा की आराधना करते समय प्रथम दशक (दस दिनों) में प्रतिदिन एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण करते हैं। फिर क्रमशः एक-एक दत्ति बढ़ाते हुए दूसरे दशक में दो-दो, तीसरे दशक में तीन-तीन, चौथे दशक में चार-चार, पांचवें दशक में पाँच-

पाँच, छठें दशक में छह-छह, सातवें दशक में सात-सात, आठवें दशक में आठ-आठ, नौवें दशक में नौ-नौ और दसवें दशक में भोजन-पानी की दस-दस दत्तियाँ ग्रहण की जाती हैं। इस प्रतिमा की तप साधना में कुल 100 दिन लगते हैं और 550 दत्तियाँ ग्रहण की जाती है।

दशदशमिका भिक्षु प्रतिमा का यन्त्र निम्न है –

दत्ति संख्या										कुल दिन
1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	10
2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	20
3	3	3	3	3	3	3	3	3	3	30
4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	40
5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	50
6	6	6	6	6	6	6	6	6	6	60
7	7	7	7	7	7	7	7	7	7	70
8	8	8	8	8	8	8	8	8	8	80
9	9	9	9	9	9	9	9	9	9	90
10	10	10	10	10	10	10	10	10	10	100
तप दिन 100 卐 दत्तियाँ 550										

6. भद्रप्रतिमा तप

भद्र शब्द का अर्थ है कल्याण। प्रतिमा का अर्थ होता है प्रतिज्ञा विशेष। यह तप विशिष्ट प्रतिज्ञा अथवा कठोर नियमों के साथ आत्म कल्याण के उद्देश्य से किया जाता है इसलिए इसका नाम भद्र प्रतिमा-तप है। इस तप की आराधना का मुख्य ध्येय आत्म कल्याण है अत: इस तपश्चर्या को करने से कल्याण की प्राप्ति होती है। यह तप साधुओं एवं गृहस्थों के करने योग्य आगाढ़ तप है।

अन्तकृत्‌दशासूत्र (5/6वाँ अध्ययन) में यह तप लघुसर्वतोभद्र-प्रतिमा के नाम से वर्णित है। सर्वतोभद्र यानि अंकों की इस प्रकार की स्थापना जिन्हें किसी भी तरफ से गिने तो भी योग एक समान आये जैसे– सर्वतोभद्र यन्त्र में चारों

तरफ से गिनने पर समान योगफल आता है वैसे ही इस तप यन्त्र की प्रत्येक पंक्ति की संख्या का योग समान है अर्थात चारों ओर से गिनने पर संख्या 15 आती है। आगम पाठ के अनुसार यह तपश्चर्या श्रेणिक राजा की महारानी महाकृष्णा ने की थी।

एकं द्वित्रिचतुः पंच, त्रिचतुः पंचभूद्वयैः ।
पंचैक-द्वित्रिवेदैश्च, द्वित्रिवेदेषु भूमिभिः ।।
चतुः पंचैक द्वित्रिभिश्चोपवासैः श्रेणिपंचकम् ।
भद्रे तपसि मध्यस्थ-पारणाश्रेणि संयुतम् ।।

आचारदिनकर, पृ. 352

यह तप पाँच श्रेणियों में किया जाता है। इस तप में उपवास से प्रारम्भ कर पाँच उपवास (पंचोला) तक बढ़ा जाता है।

इस तप की **प्रथम श्रेणी में** प्रथम एक उपवास करके पारणा करें। फिर दो, तीन, चार और पाँच उपवास कर एक-एक के बाद पारणा करें।

दूसरी श्रेणी में सर्वप्रथम तीन उपवास करें। फिर चार, पाँच, एक और दो उपवास कर हर एक के बाद पारणा करें।

तीसरी श्रेणी में सर्वप्रथम पाँच उपवास करें। फिर एक, दो, तीन एवं चार उपवास कर हर एक के बाद पारणा करें।

चौथी श्रेणी में सर्वप्रथम दो उपवास करें। फिर तीन, चार, पाँच और एक उपवास कर हर एक के बाद पारणा करें।

पांचवीं श्रेणी में सर्वप्रथम चार उपवास करें। फिर पाँच, एक दो और तीन उपवास कर हर एक के बाद पारणा करें।

इस प्रकार पाँच पंक्तियाँ पूर्ण होने पर एक परिपाटी होती है। एक परिपाटी में कुल 75 उपवास और पारणे के 25 दिन मिलाकर तीन माह और दस दिन लगते हैं। इस भाँति चार परिपाटियाँ तेरह मास और दस दिन में पूर्ण होती है।

प्रवचनसारोद्धार, तिलकाचार्यसामाचारी, सुबोधासामाचारी, विधिमार्गप्रपा आदि में भद्र तप की यही विधि बतायी गयी है।

इसका यन्त्र न्यास इस प्रकार है –

तप दिन 75, पारणा दिन 25, कुल दिन 100					
श्रेणी	**उप.**	**उप.**	**उप.**	**उप.**	**उप.**
प्रथम	1	2	3	4	5
द्वितीय	3	4	5	1	2
तृतीय	5	1	2	3	4
चतुर्थ	2	3	4	5	1
पंचम	4	5	1	2	3

उद्यापन – इस तप के उद्यापन में अरिहन्त परमात्मा की स्नात्र पूजा करें, यथाशक्ति फल, नैवेद्य, मोदक आदि चढ़ायें, साधर्मिक वात्सल्य करें एवं संघ पूजा करें।

● प्रचलित परम्परानुसार इस तपस्या के दौरान "श्री महावीरस्वामी नाथाय नमः" की बीस माला गिनें। स्वस्तिक आदि बारह-बारह करें।

साथिया	**खमासमण**	**कायोत्सर्ग**	**माला**
12	12	12	20

7. महाभद्र प्रतिमा तप

महाभद्र का अर्थ होता है महान कल्याणकारी। इस तप की आराधना आत्मा के विशिष्ट कल्याण के उद्देश्य से की जाती है। यहाँ महान कल्याण का तात्पर्य निर्वाण पद की प्राप्ति से है, अतः इसका नाम महाभद्र प्रतिमा तप है। इस तपश्चरण से सर्व विघ्नों का नाश होता है। इसे सर्वतोभद्र प्रतिमा भी कहते है।

यह तप भद्र तप के समान ही बीच-बीच में पारणा करते हुए सात श्रेणियों में किया जाता है और इसमें एक उपवास से लेकर सात उपवास तक चढ़ते हैं।

अंतकृत्दशासूत्र (8/7वाँ अध्ययन) में इसका नाम 'महत सर्वतोभद्र प्रतिमा' है। यहाँ 'सर्वतो' शब्द का गूढ़ार्थ यह है कि इससे सम्बन्धित यन्त्र को ऊपर-नीचे, दायें-बायें कहीं से भी गिनने पर 28 की संख्या ही आती है।

आगम पाठ के अनुसार इस तप की साधना आर्य्या वीरकृष्णा ने की थी। यह आगाढ़ तप साधुओं एवं गृहस्थों दोनों के करने योग्य है।

विधि

इस तप की **प्रथम श्रेणी में** – एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह और सात उपवास अनुक्रम से करते हुए हर एक के बाद पारणा करें।

दूसरी श्रेणी में - चार, पाँच, छह, सात, एक, दो, तीन उपवास अनुक्रम से करते हुए हर एक के बाद पारणा करें।

तीसरी श्रेणी में - सात, एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह उपवास अन्तर रहित पारणा से करें।

चौथी श्रेणी में - तीन, चार, पाँच, छह, सात, एक, दो, तीन उपवास क्रमशः अन्तर रहित पारणा से करें।

पांचवीं श्रेणी में - छह, सात, एक, दो, तीन, चार, पाँच उपवास अनुक्रम से करते हुए हर एक के बाद पारणा करें।

छठी श्रेणी में - दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, एक उपवास अन्तर रहित पारणा से करें।

सातवीं श्रेणी में - पाँच, छह, सात, एक, दो, तीन, चार उपवास अन्तर रहित पारणा से करें।

इस प्रकार सात पंक्तियाँ पूर्ण होने पर एक परिपाटी होती है। इस तप की एक परिपाटी में 196 उपवास और पारणे के 49 दिन मिलाकर 1 वर्ष, 1 महीना और 10 दिन लगते हैं। यह तप भी चार परिपाटी में पूर्ण होता है। चारों परिपाटियों का सम्पूर्ण कालमान 4 वर्ष, 5 मास और 10 दिन का है।

इस तप का यन्त्र न्यास इस प्रकार है –

तप दिन 196, पारणा दिन 49, कुल दिन 245							
श्रेणी	**उप.**	**उप.**	**उप.**	**उप.**	**उप.**	**उप.**	**उप.**
प्रथम	1	2	3	4	5	6	7
द्वितीय	4	5	6	7	1	2	3
तृतीय	7	1	2	3	4	5	6
चतुर्थ	3	4	5	6	7	1	2
पंचम	6	7	1	2	3	4	5
षष्ठ	2	3	4	5	6	7	1
सप्तम	5	6	7	1	2	3	4

उद्यापन – इस तप की पूर्णाहुति पर बृहत्स्नात्र-विधि से परमात्मा की पूजा करें, यथाशक्ति अक्षत, नैवेद्य, फल आदि चढ़ायें, संघवात्सल्य एवं गुरु पूजा करें।

• प्रचलित परम्परा के अनुसार इस तप में प्रतिदिन 'श्री महावीरस्वामी नाथाय नमः' की बीस माला गिनें। शेष साथिया आदि बारह-बारह करें। सुगम बोध के लिए इसका यन्त्र यह है–

साथिया	खमासमण	कायोत्सर्ग	माला
12	12	12	20

8. भद्रोत्तर प्रतिमा तप

भद्र अर्थात कल्याण, उत्तर अर्थात उत्तम। यह तप उत्तम (विशिष्ट) रूप से कल्याणकारी है, अतः इसका नाम भद्रोत्तर तप है। किन्हीं के मतानुसार मनोवांछित सिद्धि के लिए यह तप किया जाता है। वस्तुतः जहाँ कल्याण होता है वहाँ इच्छित कार्य स्वयमेव फलीभूत हो जाते हैं।

अन्तकृत्दशासूत्र (8/8वाँ अध्ययन) के अनुसार इस तप की आराधना राजी रामकृष्णा ने की थी। इस तप में पाँच उपवास से प्रारम्भ कर नौ उपवास तक चढ़ा जाता है तथा यह तप पाँच श्रेणियों में पूर्ण होता है। यह तप साधुओं एवं श्रावकों के करने योग्य आगाढ़ तप है।

विधि

भद्दोत्तरपडिमाए, पण छग सत्तट्ठ नव तहा सत्ता।
अड नव पंच छ तहा, नव पण छग सत्त अट्ठेव।।
तह छग सत्तड नव पण, तह ट्ठ नव पण छ सत्त भत्तट्ठा।
पणहत्तरसयमेवं, पारणगाणं तु पणवीसं।।

विधिमार्गप्रपा, पृ.28; प्रवचनसारोद्धार, 271/1537-40

इस तप की **प्रथम श्रेणी में** - अनुक्रम से पाँच, छह, सात, आठ और नव उपवास करके हर एक के बाद पारणा करें।

दूसरी श्रेणी में - अनुक्रम से सात, आठ, नव, पाँच और छह उपवास अन्तर रहित पारणा से करें।

तीसरी श्रेणी में - अनुक्रम से नव, पाँच, छह, सात और आठ उपवास अन्तर रहित पारणा से करें।

चौथी श्रेणी में - अनुक्रम से छह, सात, आठ, नव और पाँच उपवास अन्तर रहित पारणा से करें।

पांचवीं श्रेणी में - अनुक्रम से आठ, नव, पाँच, छह और सात उपवास बीच-बीच में पारणा पूर्वक करें।

इस प्रकार इस तप की एक परिपाटी में 175 उपवास तथा 25 पारणे कुल 200 दिन में यह तप सम्पूर्ण होता है। चारों परिपाटी पूर्ण करने में 2 वर्ष, 2 मास, 20 दिन लगते हैं।

इस तप में यन्त्र का न्यास इस प्रकार है –

तप दिन 175, पारणा 25, कुल दिन 200					
श्रेणी	**उप.**	**उप.**	**उप.**	**उप.**	**उप.**
प्रथम	5	6	7	8	9
द्वितीय	7	8	9	5	6
तृतीय	9	5	6	7	8
चतुर्थ	6	7	8	9	5
पंचम	8	9	5	6	7

उद्यापन – इस तप का उद्यापन भद्र तप की भाँति ही करें। यह तप साधु और श्रावक दोनों को करना चाहिए।

• प्रचलित परम्परानुसार इस तप की आराधना में प्रतिदिन "श्री महावीरस्वामी नाथाय नमः" की बीस माला गिनें। शेष साथिया आदि बारह-बारह करें।

साथिया	**खमासमण**	**कायोत्सर्ग**	**माला**
12	12	12	20

9. सर्वतोभद्र प्रतिमा तप

इस तप के नाम से ही सूचित होता है कि यह तपश्चर्या सर्व प्रकार की शान्ति, कल्याण एवं कर्म क्षय के लिए की जाती है। जिस तप की आराधना से सर्वतो अर्थात चिहुं ओर कल्याण ही कल्याण हो वह सर्वतोभद्र तप कहलाता है। इस तप की आराधना भगवान महावीर ने की थी। प्रामाणिक सन्दर्भ के रूप में इसका उल्लेख विक्रम की 10वीं शती के परवर्ती ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

यह तप सात परिपाटियों के द्वारा पाँच उपवास से प्रारम्भ कर ग्यारह उपवास तक की अभिवृद्धि करते हुए पूर्ण किया जाता हैं। इस तप की आराधना साधुओं एवं श्रावकों दोनों को करनी चाहिए। इसकी विधि निम्न प्रकार है –

विधि

पडिमाइ सव्वभद्दाए, पण छ सत्त ट्ठ नव दसेक्कारा।
तह अड नव दस एक्कार, पण छ सत्त य तहेक्कारा।।
पण छग सत्तग अड नव, दस तह सत्त ट्ठ नव दसेक्कारा।
पण छ तहा दस एगार, पण छ सत्तट्ठ नव य तहा।।
छग सत्तड नव दसगं, एक्कारस पंच तह य नव दसगं।
एक्कारस पण छक्कं, सत्त ट्ठ य इह तवे होंति।।
तिन्निसया बाणउया, इत्थुववासाण होंति संखाए।
पारणया गुणवन्ना, भद्दाइतवा इमे भणिया।।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 28

इस तप की **प्रथम श्रेणी में** - अनुक्रम से पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस और ग्यारह उपवास अन्तर रहित पारणा से करें।

दूसरी श्रेणी में - अनुक्रम से आठ, नौ, दस, ग्यारह, पाँच, छह और सात उपवास अन्तर रहित पारणा से करें।

तीसरी श्रेणी में - अनुक्रम से ग्यारह, पाँच, छह, सात, आठ, नौ और दस उपवास बीच-बीच में पारणा पूर्वक करें।

चौथी श्रेणी में - अनुक्रम से सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, पाँच और छह उपवास पारणा पूर्वक करें।

पांचवीं श्रेणी में - अनुक्रम से दस, ग्यारह, पाँच, छह, सात, आठ और नौ उपवास पारणा पूर्वक करें।

छठी श्रेणी में - अनुक्रम से छह, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह और पाँच उपवास पारणा पूर्वक करें।

सातवीं श्रेणी में - अनुक्रम से नौ, दस, ग्यारह, पाँच, छह, सात और आठ उपवास अन्तर रहित पारणा से करें।

इस प्रकार इस तप में 392 उपवास तथा पारणा के 49 दिन मिलाकर यह तप 1 वर्ष, 2 मास, 21 दिनों में पूर्ण होता है।

प्रवचनसारोद्धार आदि विधि ग्रन्थों में सर्वतोभद्र तप की यही विधि कही गयी है।

इस तप का यन्त्र न्यास इस प्रकार है –

उपवास 362, पारणा 49, कुल दिन 441							
श्रेणी	**उप.**	**उप.**	**उप.**	**उप.**	**उप.**	**उप.**	**उप.**
प्रथम	5	6	7	8	9	10	11
द्वितीय	8	9	10	11	5	6	7
तृतीय	11	5	6	7	8	9	10
चतुर्थ	7	8	9	10	11	5	6
पंचम	10	11	5	6	7	8	9
षष्ठ	6	7	8	9	10	11	5
सप्तम	9	10	11	5	6	7	8

उद्यापन – इस तप का उद्यापन भद्रतप की भाँति ही करें। कुछ आचार्य इन चारों भद्रादि तप के उद्यापन में उपवास की संख्या के अनुसार पुष्प, फल एवं पकवान परमात्मा के आगे चढ़ाने के लिए कहते हैं।

इस तप से समस्त कर्मों का क्षय एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

• प्रचलित व्यवहार के अनुसार इस तपस्या के दरम्यान "श्री महावीरस्वामी नाथाय नमः" की बीस माला गिननी चाहिए तथा साथिया आदि बारह-बारह करना चाहिए। इसका यन्त्र यह है –

साथिया	**खमासमण**	**कायोत्सर्ग**	**माला**
12	12	12	20

10. गुणरत्न संवत्सर तप

गुण रूपी रत्न पार्थिव रत्नों से भी बढ़कर मूल्यवान है। इस तप के माध्यम से गुण रूपी रत्नों के प्राप्ति की साधना लगभग एक वर्ष पर्यन्त किया जाता है। इसलिए इसका नाम गुणरत्न संवत्सर तप है। वस्तुतः गुण रूपी रत्नों की प्राप्ति होने के कारण इस तप को गुणरत्न संवत्सर तप कहते हैं। इसमें तप के दिन एक वर्ष से अधिक होते हैं, इसलिए भी इसका नाम गुणरत्न संवत्सर तप है।

यह तप 16 महीनों में पूर्ण होता है। प्रथम महीने में एकान्तर उपवास किये जाते हैं, द्वितीय महीने में बेले-बेले पारणा किया जाता है, तृतीय महीने में तेले-

तेले पारणा इस प्रकार क्रमशः बढ़ते हुए सोलहवें महीने में सोलह-सोलह उपवास का तप किया जाता है। इस तरह प्रत्येक मास में तप की वृद्धि होती है। यहाँ तप वृद्धि का अभिप्राय बढ़ते हुए गुणों की प्राप्ति से है। इस कारण भी यह तप गुणरत्न संवत्सर कहलाता है।

अन्तकृत्दशासूत्र (1/प्रथम अध्ययन) के अनुसार इस तप की आराधना भगवान महावीर के शिष्य स्कन्धक मुनि एवं भगवान अरिष्टनेमि के शिष्य गौतमकुमार आदि ने की थी। यह आगाढ़ तप साधुओं एवं श्रावकों दोनों के लिए अवश्य करणीय है। इस तप की विधि इस प्रकार है–

विधि

गुणरत्नं षोडशभिर्मासैः, संपूर्यते पुनस्तत्र।
मासे चैकादिषोडशान्ताः, स्युरूपवासाः पंचदश।।

आचारदिनकर, पृ. 353

इस तप के **प्रथम मास में** - एक उपवास और एक पारणा, इस प्रकार पन्द्रह उपवास और पन्द्रह पारणा मिलकर तीस दिन पूरे होते हैं।

दूसरे मास में - दो-दो उपवास करके पारणा, इस प्रकार बीस उपवास और दस पारणा मिलकर तीस दिन पूरे होते हैं।

तीसरे मास में - तीन-तीन उपवास करके एक पारणा, इस प्रकार चौबीस उपवास और आठ पारणा मिलकर बत्तीस दिन होते हैं।

चौथे माह में - चार-चार उपवास करके एक-एक पारणा करने से चौबीस उपवास और छः पारणा के दिन मिलकर तीस दिन होते हैं।

पांचवें माह में - पाँच-पाँच उपवास करके एक-एक पारणा करने से पच्चीस उपवास और पाँच पारणे के दिन मिलकर तीस दिन होते हैं।

छठे माह में - छः-छः उपवास करते हुए पारणा करने से चौबीस उपवास और चार पारणा मिलकर अट्ठाईस दिन होते हैं।

सातवें माह में - सात-सात उपवास करते हुए पारणा करने से इक्कीस उपवास और तीन पारणा मिलकर चौबीस दिन होते हैं।

आठवें माह में - आठ-आठ उपवास पर पारणा करने से चौबीस उपवास और तीन पारणा के दिन मिलाकर सत्ताईस दिन होते हैं।

नौवें माह में - नौ-नौ उपवास पर पारणा करने से सत्ताईस उपवास और तीन पारणा मिलकर तीस दिन होते हैं।

दसवें माह में - दस-दस उपवास पर एक-एक पारणा करने से तीस उपवास और तीन पारणा के दिन मिलाकर तैंतीस दिन होते हैं।

ग्यारहवें माह में - ग्यारह-ग्यारह उपवास पर पारणा करने से तैंतीस उपवास और तीन पारणा मिलकर छत्तीस दिन होते हैं।

बारहवें माह में - बारह-बारह उपवास पर पारणा करने से चौबीस उपवास और दो पारणा के दिन मिलाकर छब्बीस दिन होते हैं।

तेरहवें माह में - तेरह-तेरह उपवास पर पारणा करने से छब्बीस उपवास और दो पारणे के दिन मिलकर अट्ठाईस दिन होते हैं।

चौदहवें माह में - चौदह-चौदह उपवास पर पारणा करने से अट्ठाईस उपवास और दो पारणा मिलकर तीस दिन होते हैं।

पन्द्रहवें माह में - पन्द्रह-पन्द्रह उपवास पर पारणा करने से तीस उपवास एवं दो पारणा मिलकर बत्तीस दिन होते हैं।

सोलहवें माह में - सोलह-सोलह उपवास पर पारणा करने से बत्तीस उपवास एवं दो पारणा मिलकर चौंतीस दिन होते हैं।

इस प्रकार यह तप त्रुटित एवं वृद्धि दिनों से 16 मास में पूर्ण होता है। इसमें कुल 73 पारणा एवं 407 उपवास होते हैं। इस तप के दिनों में उत्कुटुक आसन में बैठकर सूर्य की आतापना ली जाती है और रात्रि को वस्त्र रहित वीरासन में बैठकर ध्यान लगाना होता है।

• प्रवचनसारोद्धार आदि विधि ग्रन्थों में गुणरत्न संवत्सर तप इसी प्रकार बतलाया गया है।

गुणरत्न संवत्सर तप के यन्त्र का न्यास इस प्रकार है –

			सर्व-दिन
32	16 16	2	34
30	15 15	2	32
28	14 14	2	30
26	13 13	2	28
24	12 12	2	26
33	11 11 11	3	36
30	10 10 10	3	33
27	9 9 9	3	30
24	8 8 8	3	27
21	7 7 7	3	24
24	6 6 6 6	4	28
25	5 5 5 5 5	5	30
24	4 4 4 4 4 4	6	30
24	3 3 3 3 3 3 3 3	8	32
20	2 2 2 2 2 2 2 2 2 2	10	30
15	1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1	15	30

उद्यापन– इस तप की पूर्णाहुति पर बृहत्स्नात्र से जिन पूजा, संघवात्सल्य एवं संघ पूजा करनी चाहिए। इस तप से मनुष्य उच्च गुणस्थान पर चढ़ता है।

• प्रचलित परम्परानुसार इस तप के आराधन काल में "गुणरत्न संवत्सर तपसे नमः" की 20 माला तथा साथिया आदि बारह-बारह करना चाहिए।

साथिया	खमासमण	कायोत्सर्ग	माला
12	12	12	20

11. लघुसिंह निष्क्रीडित तप

सिंहनिष्क्रीडित तप दो प्रकार का होता है। एक लघुसिंह निष्क्रीडित और दूसरा महासिंह निष्क्रीडित तप। लघुसिंह निष्क्रीडित तप का अर्थ है- जिस प्रकार

गमन करता हुआ सिंह अपने अतिक्रान्त मार्ग को पीछे लौटकर फिर देखता है, यह सिंह का जातिगत स्वभाव है। इसी अर्थ में 'सिंहावलोकन' शब्द का प्रयोग हुआ है। सिंह की इसी गति के समान क्रम से आगे बढ़ना और साथ ही पीछे आना, फिर आगे बढ़ना और फिर पीछे आना- इस प्रकार जिस तप में अतिक्रमण किये हुए उपवास के दिनों को फिर से सेवन करके आगे बढ़ा जाए, वह सिंहनिष्क्रीडित तप कहलाता है।

इस तप में उपवास अक्रम पूर्वक होते हैं, क्योंकि इसमें तप उतार-चढ़ाव के साथ किया जाता है। अन्तकृत्दशासूत्र (8/3) के अनुसार इस तप की आराधना श्रेणिक राजा की महारानी महाकाली ने की थी। इस सूत्र में प्रस्तुत तप का विधिवत उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत आगम की अनुवादिका ने लिखा है कि जैसे काली देवी ने रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी के पारणे में दूध, घृतादि सभी पदार्थों को ग्रहण किया, दूसरी परिपाटी के पारणे में इन रसों को छोड़ दिया, तीसरी परिपाटी में लेप मात्र का भी त्याग कर दिया तथा चतुर्थ परिपाटी में उपवासों का पारणा आयंबिल से किया वैसे ही महाकाली देवी ने लघु सिंह-निष्क्रीडित तप की प्रथम परिपाटी में विगयों को ग्रहण किया, दूसरी परिपाटी में विगयों का त्याग किया, तीसरी परिपाटी में लेप-मात्र का भी त्याग और चौथी परिपाटी में उपवासों का पारणा आयंबिल तप से किया।

यह आगाढ़ तप साधु एवं श्रावक दोनों के लिए करने योग्य है।

इसकी तप-विधि निम्न प्रकार है –

विधि

गच्छन् सिंहो यथा नित्यं, पश्चात भागं विलोकयेत्।
सिंह-निष्क्रीडिताख्यं च, तथा तप उदाहृतम्।।
एक द्वयेक त्रियुग्मैर्युग-गुण-विशिखैर्वेदषट् पंचताक्ष्यैः।
षट्कुंभाश्वैर्निधानाष्ट, निधिहयगजैः षट्हयैः पंचषड्भिः।।
वेदैर्बाणैर्युगद्वित्रिशशि-भुजकुभिश्चोपवासैश्च मध्ये।
कुर्वाणानां समन्तादशनमिति तपः सिंह-निष्क्रीडितं स्यात्।।

आचारदिनकर, पृ. 350

इस तप में सर्वप्रथम एक उपवास करके पारणा किया जाता है। इसी प्रकार आगे दो उपवास कर पारणा, पुनः एक उपवास कर पारणा, तीन उपवास कर

पारणा, पश्चात दो उपवास कर पारणा, चार उपवास कर पारणा, तीन उपवास कर पारणा, फिर क्रमशः पाँच-चार, छह-पाँच, सात-छह, आठ-सात और नौ-आठ इस प्रकार उपवास करके पारणा किया जाता है।

तत्पश्चात पश्चानुपूर्वी से उपवास करें अर्थात पहले नौ उपवास, फिर सात, फिर आठ, उसके बाद क्रमशः छह-सात, पाँच-छह, चार-पाँच, तीन-चार, दो-तीन, एक- दो और फिर एक उपवास करके पारणा करें।

इस तप में 154 उपवास और 33 पारणे कुल मिलाकर इस तप की एक परिपाटी में 6 माह और 7 दिन लगते हैं। चारों परिपाटी में 2 वर्ष और 28 दिन लगते हैं।

इस तप का यन्त्र न्यास इस प्रकार है –

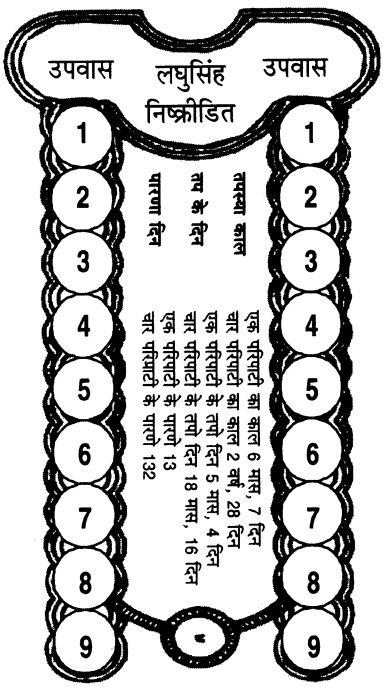

उद्यापन – इस तप की पूर्णाहुति होने पर जिनेश्वर परमात्मा के उपकारों की स्मृति निमित्त बृहत्स्नात्र पूजा करनी चाहिए। उपवास की संख्या के अनुसार पुष्प, नैवेद्य एवं फल चढ़ाने चाहिए। साधर्मीवात्सल्य एवं संघपूजा करनी चाहिए।

• प्रचलित परम्परानुसार इस तप की सफलता हेतु 'ॐ नमो अरिहंताणं' पद की 20 माला एवं साथिया आदि 12-12 करना चाहिए। तप आराधना यन्त्र यह है –

साथिया	खमासमण	कायोत्सर्ग	माला
12	12	12	20

12. महासिंहनिष्क्रीडित तप

इस तप का स्वरूप लघुसिंहनिष्क्रीडित-तप के समान ही जानना चाहिए। विशेष इतना है कि उसमें अधिक से अधिक नौ दिन की तपस्या की जाती है जबकि इस तप में अधिकाधिक सोलह दिन का तप होता है और फिर उसी क्रम से उतार भी होता है। इसी अपेक्षा से उसे 'लघुसिंह' और इसे 'बृहत्सिंह' तप की संज्ञा दी गयी है।

अन्तकृत्दशासूत्र (8/4) के अनुसार यह तप आर्य्या कृष्णा ने किया था। प्रस्तुत आगम में इस तप-विधि का उल्लेख भी किया गया है। यह तप साधु एवं श्रावक दोनों के लिए अवश्य करणीय है। जैनाचार्यों के अनुसार इस तप के करने से उपशम श्रेणी की प्राप्ति होती है।

विधि

एकद्रव्येयकपाटयोनियमलै, वेंदत्रि वीणाब्धिभिः ।
षट्पंचाश्वरसाष्टसप्तनवभि, र्नगैश्च दिग्नन्दकैः ।।
रूद्राशारविभद्र ...... विबुधैर्मातंडमन्वन्वितैः-
विश्वेदेवतिथि-प्रमाणमनुभिश्चाष्टि-प्रतिथ्यन्वितैः ।।
कलामनुतिथित्रयोदश, चतुर्दशार्कन्विते-
स्त्रयोदश शिवांशुभिर्दश- गिरीशनन्दैरपि ।।
दशाष्ट नवसप्तभिर्गजरसाश्च बाणैः रसैश्चतु-
र्विशिखवन्हिभिर्युगभुजत्रिभूद्वीन्दुभिः ।।
उपवासैः क्रमात्कार्या, पारणा अन्तरान्तरा ।
सिंह निष्क्रीडितं नाम, बृहत्संजायते तपः ।।

आचारदिनकर, पृ. 351

पूर्वानुपूर्वी – इसमें सर्वप्रथम एक उपवास करके पारणा करें, फिर दो उपवास करके पारणा करे, फिर एक उपवास करके पारणा करें। तत्पश्चात क्रमशः तीन, दो, चार, तीन, पाँच, चार, छः, पाँच, सात, छः, आठ, सात, नौ, आठ, दस, नौ, ग्यारह, दस, बारह, ग्यारह, तेरह, बारह, चौदह, तेरह, पन्द्रह, चौदह, सोलह और फिर पन्द्रह उपवास करके पारणा करें।

पश्चानुपूर्वी – उसके बाद पश्चानुपूर्वी से उपवास करें। सर्वप्रथम सोलह उपवास, फिर चौदह उपवास, फिर पन्द्रह, तेरह, चौदह, बारह, तेरह, ग्यारह, बारह, दस, ग्यारह, नौ, दस, आठ, नौ, सात, आठ, छः, सात, पाँच, छः, चार, पाँच, तीन, चार, दो, तीन, एक, दो और अन्त में एक उपवास करके पारणा करें। इस प्रकार हर एक के बाद पारणा करें।

इस तप में 497 उपवास एवं 61 पारणा कुल मिलाकर 1 वर्ष, 6 माह, 18 दिनों में यह तप पूरा होता है। इस तप की चारों परिपाटी में 6 वर्ष, 2 महिने, 12 दिन लगते हैं।

उद्यापन – इस तप की निर्विघ्न पूर्णाहुति के मंगल कलश के रूप में बृहत्स्नात्र पूजा करनी चाहिए। उपवास की संख्या के अनुसार प्रभु के सामने पुष्प, फल और नैवेद्य आदि चढ़ाने चाहिए। साधर्मी वात्सल्य एवं संघ पूजा करनी चाहिए।

• जीतव्यवहार के अनुसार इस तप की श्रेष्ठ आराधना के लिए 'नमो अरिहंताणं' पद की 20 माला तथा साथिया आदि 12-12 करने चाहिए। स्पष्ट यन्त्र यह है –

साथिया	खमासमण	कायोत्सर्ग	माला
12	12	12	20

इस तप का यन्त्र न्यास निम्न प्रकार है –

13. कनकावली तप

कनक + आवली का अर्थ है स्वर्ण का हार। जिस प्रकार स्वर्णहार पहनने वाले के हृदय को सुशोभित करता है उसी प्रकार यह तप तपस्वियों के हृदय (आत्म कमल) को शोभायमान करता है। यह तप स्वर्ण मणियों द्वारा निर्मित्त आभूषण विशेष के आकार की कल्पना के अनुसार किया जाता है, इसलिए इसका नाम कनकावली तप है। इस तप की आराधना आत्मिक सुख की प्राप्ति एवं मोक्ष पद की उपलब्धि के प्रयोजन से की जाती है।

अन्तकृत्दशासूत्र (8/2) में इस तप की स्वतन्त्र चर्चा की गयी है। तदनुसार इस तपश्चर्या की आराधना आर्या चन्दना की शिष्या सुकाली ने की थी। यह तप मुनियों एवं श्रावकों दोनों के लिए करने योग्य है।

इसकी सामान्य विधि इस प्रकार है –

विधि

तपसः कनकावल्याः, काहला दाडिमे अपि।
लता च पदकं चान्त्य, लता दाडिम-काहले।।
एक द्वित्र्युपवासतः प्रगुणिते, संपूरिते काहले।
तत्राष्टाष्टमितैश्च षष्ठकरणैः, संपादये द्दाडिमे।।
एकाद्यैः खलु षोडशान्तगणितैः, श्रेणी उभे युक्तितः।
षष्ठैस्तैः कनकावलै किल, चतुस्त्रिंशन्मितो नायकः।।

आचारदिनकर, पृ. 348

• इस तप में प्रथम उपवास कर पारणा करें, तत्पश्चात निरन्तर दो उपवास कर पारणा करें, फिर निरन्तर तीन उपवास कर पारणा करें। इस तरह एक काहलिका पूर्ण होती है। पारणा में एकाशना करें।

• तत्पश्चात निरन्तर आठ बेला करें, जिससे एक दाड़िम पूर्ण होती है।

• उसके बाद एक उपवास पारणा करें, दो उपवास पारणा करें, तीन उपवास पारणा करें- इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते सोलह उपवास कर पारणा करें (अर्थात यहाँ एक उपवास से लेकर सोलह उपवास तक बढ़ते हैं) ऐसा करने से हार की एक लता पूर्ण होती है।

• इसके पश्चात निरन्तर चौंतीस बेला (छट्ठ तप) करें और बीच में एकाशना से पारणा करें। इतना तप करने से उस लता के नीचे का पदक सम्पूर्ण

होता है।

• तदनन्तर विपरीत क्रम से सोलह उपवास कर पारणा करें, पन्द्रह उपवास कर पारणा करें, चौदह उपवास कर पारणा करें। इस तरह घटाते-घटाते एक उपवास कर पारणा करें। ऐसा करने से हार की दूसरी लता पूरी होती है।

• उसके बाद आठ षष्ठ भक्त (बेला) करें। इतना तप करने से उसकी ऊपर की दाड़िम पूरी होती है।

• फिर निरन्तर तीन उपवास (तेला) करके पारणा करें। फिर बेला करके पारणा करें और उसके बाद एक उपवास कर पारणा करें। इस क्रम पूर्वक तप करने से ऊपर की दूसरी काहलिका पूरी होती है।

उक्त विधि में उपवास, बेला, तेला आदि का जो निर्देश किया गया है, वह निरन्तर क्रम पूर्वक समझने चाहिए। पारणे के तुरन्त दूसरे दिन उपवास आदि कर लेना चाहिए, बीच में क्रम टूटना नहीं चाहिए।

यह कनकावली तप की पहली परिपाटी है। इस परिपाटी में तीन सौ चौरासी उपवास और अट्ठासी पारणा कुल 1 वर्ष, 3 मास, 22 दिन लगते हैं। इस तप की चार परिपाटी में 5 वर्ष, 2 मास और 28 दिन लगते हैं।

• इस तप की पहली श्रेणी के पारणे में विगय सहित इच्छित भोजन किया जाता है। दूसरी श्रेणी में सभी पारणे नीवि से करते हैं। तीसरे श्रेणी में सभी पारणे अलेप द्रव्य से करते हैं तथा चौथी श्रेणी में सभी पारणे आयम्बिल से करते हैं।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर तपो धर्म की प्रभावना हेतु बृहत्स्नात्र विधि पूर्वक अष्टप्रकारी पूजा करें। उपवास की संख्या के अनुसार स्वर्णटंक की माला बनवाकर जिनप्रतिमा के गले में पहनाएँ तथा छहों विगयों से युक्त पक्वान आदि चढ़ाएँ। साधुओं को वस्त्र, पात्र एवं अन्न का दान करें। साधर्मी वात्सल्य एवं संघ पूजा करें।

इस तप का यन्त्र न्यास इस प्रकार है –

कनकावली

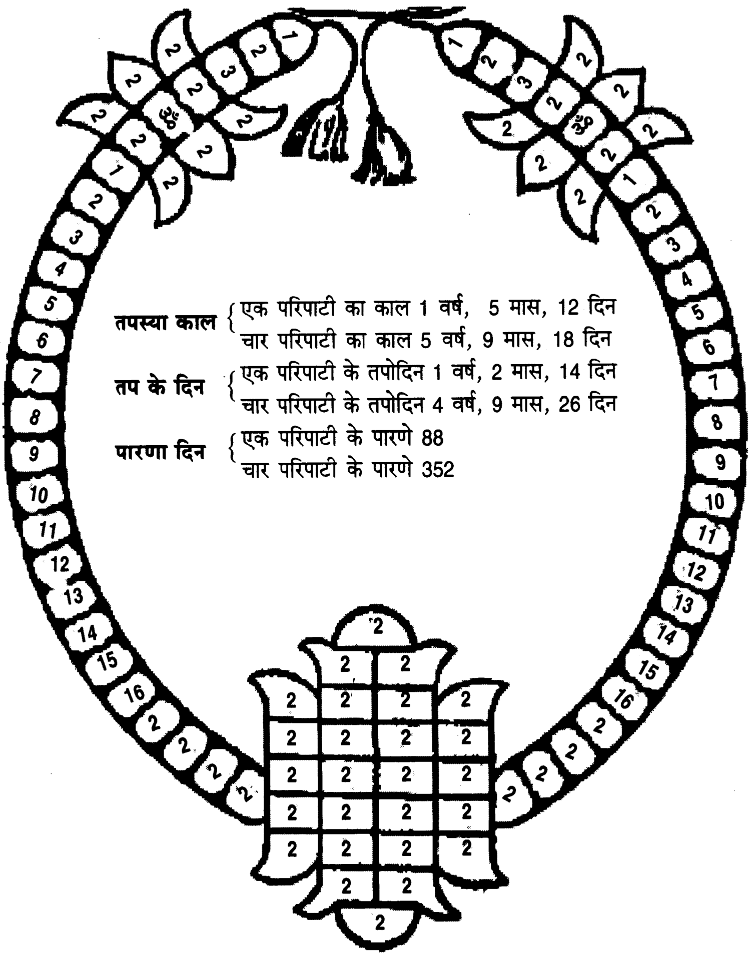

• प्रचलित विधि के अनुसार इस तप की विशिष्ट आराधना के लिए 'नमो अरिहंताणं' पद की 20 माला और साथिया आदि 12-12 करें।

आराधना यन्त्र यह है –

साथिया	खमासमण	कायोत्सर्ग	माला
12	12	12	20

14. मुक्तावली तप

मुक्ता + आवली का अर्थ है – मोतियों की माला। जिस प्रकार मोतियों की माला में उतार-चढ़ाव होता है उसी प्रकार इस तप में भी चढ़ाव-उतार वाली तपश्चर्या की जाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो इस तप में मोतियों के हार विशेष की आकृति की कल्पना के अनुसार एक चरण आगे बढ़कर फिर पीछे आया जाता है और फिर अगले चरण से एक चरण आगे बढ़ा जाता है, इसलिए इसे मुक्तावली तप कहते हैं। यह तपस्वियों के कण्ठ के आभरण रूप निर्मल मुक्तावली सदृश होने के कारण भी इसे मुक्तावली तप कहा जाता है। यह तप करने से मोतियों की भाँति विविध प्रकार के गुणों की प्राप्ति होती है।

अन्तकृत्दशा (8/9 वें) में मुक्तावली तप का सम्यक् वर्णन किया गया है। तदनुसार यह तप आर्या पितृसेन कृष्णा ने अंगीकार किया था। यह साधुओं एवं श्रावकों दोनों के करने योग्य आगाढ़ तप है।

इसकी स्पष्ट विधि निम्न प्रकार है –

विधि

मुक्तावल्यां चतुर्थादि, षोडशाद्यावली-द्वयम् ।
पूर्वानुपूर्व्या पश्चानुपूर्व्या, ज्ञेयं यथाक्रमम् ।।
एक द्वयेक-गुणैक-वेद-वसुधा-बाणैक-षड्भूमिभिः ।
सप्तैकाष्टमही- नवैक- दशभि-र्भूरूद्रभूभानुभिः ।।
भूविश्वैः शशिमन्विता तिथिधरा, विद्यासुरीभिर्मितैः ।
एतद् व्युत्क्रमणोपवास गणितै-र्मुक्तावली जायते ।।

आचारदिनकर, पृ. 349

इस तप में सर्वप्रथम एक उपवास करके पारणा करें फिर निरन्तर दो उपवास (बेला) करके पारणा करें फिर एक उपवास करके पारणा करें। उसके बाद तीन उपवास करके पारणा करें, फिर एक उपवास करके पारणा करें। तत्पश्चात क्रमशः चार उपवास करके पारणा करें, फिर पुनः एक उपवास करके पारणा करें। इसी प्रकार इस तप में एक उपवास से सोलह उपवास तक बीच-बीच में एक-एक उपवास करते हुए पारणा करें। सोलह उपवास के पारणा के बाद पुनः एक उपवास करके पारणा करें। इस प्रकार पूर्वानुपूर्वी क्रम से यह एक श्रेणी पूर्ण होती है।

तत्पश्चात पश्चानुपूर्वी से द्वितीय श्रेणी प्रारम्भ कर उसमें सर्वप्रथम एक उपवास करके पारणा करें, फिर सोलह उपवास करके पारणा करें, पुनः एक उपवास करके पारणा करें, फिर पन्द्रह उपवास करके पारणा करें- इस तरह क्रमशः सोलह से घटते-घटते एवं बीच-बीच में एक-एक उपवास करते हुए दो उपवास तक करें, फिर उतरते या घटते क्रम से एक उपवास करके पारणा करें।

यह इस तप की प्रथम परिपाटी है। इसमें 300 उपवास और 60 पारणा, कुल मिलाकर 1 वर्ष लगता है। इस प्रकार मुक्तावली तप की चार परिपाटियाँ लगभग चार वर्षों में पूर्ण होती हैं।

इस तप की पहली श्रेणी के सभी पारणों में विगय युक्त आहार लेते हैं। दूसरी श्रेणी में सभी पारणे नीवि से करते हैं। तीसरी श्रेणी में सभी पारणे अलेप द्रव्य से करते हैं। चौथी श्रेणी में सभी पारणे आयंबिल से करते हैं।

इस तप का यन्त्र इस प्रकार है –

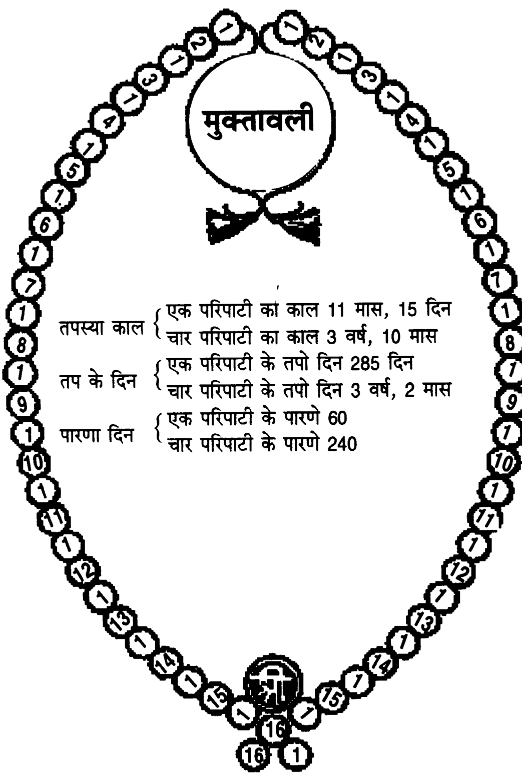

उद्यापन – इस तपस्या के सम्पूर्ण होने पर विधि पूर्वक जिनप्रतिमा के गले में मोटे-मोटे मोतियों की माला पहनाएँ। साधर्मी वात्सल्य एवं संघ पूजा करें।

• प्रचलित विधि के अनुसार इस तप की श्रेष्ठ उपलब्धि हेतु आराधना काल में 'नमो अरिहंताणं' पद की 20 माला एवं साथिया आदि 12-12 करें।

साथिया	खमासमण	कायोत्सर्ग	माला
12	12	12	20

15. रत्नावली तप

रत्नावली एक आभूषण विशेष का नाम है। रत्न+आवली का अर्थ है रत्नमणियों की पंक्ति। इस तप में रत्नमणियों की आकृति बनाने की कल्पना के अनुसार अथवा उसकी रचना के समान तप-विधि का आचरण किया जाता है। इसलिए इसे रत्नावली तप कहा गया है।

स्वर्ण और मोती से भी रत्न अधिक मूल्यवान होते हैं। यह तप गुण रूपी रत्नों की आवली होने से रत्नावली नाम से प्रसिद्ध है। जैसे- रत्नावली भूषण दोनों ओर से आरम्भ में सूक्ष्म फिर स्थूल, फिर उससे अधिक स्थूल, मध्य में विशेष स्थूल मणियों से युक्त होता है वैसे ही जो तप आरम्भ में स्वल्प फिर अधिक, फिर विशेष अधिक होता चला जाता है, वह रत्नावली तप कहलाता है। जिस प्रकार रत्नावली से शरीर की शोभा बढ़ती है, उसी प्रकार रत्नावली तप आत्मा को सद्गुणों से विभूषित करता है।

अन्तकृत्दशासूत्र (8/1) में इस तपश्चर्या का सविधि वर्णन किया गया है। तदनुसार आर्या काली ने रत्नावली तप की आराधना की थी। यह तप अन्तरंग लक्ष्मी की प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता है। इसके सुप्रभाव से विविध प्रकार की बाह्य लक्ष्मी भी प्राप्त होती है। यह आगाढ़ तप यति एवं श्रावक दोनों के करने योग्य है।

इसकी सामान्य विधि यह है –

काहलिका दाडिमकं, लता तरल एव च।
अन्य लता दाडिमकं, काहलिकेति च क्रमात्।।
एक-द्वि-त्र्युपवासैः सह, काहले दाडिमे पुनः।
तरलश्चाष्टमथो, रत्नावल्यांलतेव तत्।।
एक-द्वि-त्र्युपवासतो ह्युभे, इमे संपादिते काहले।
अष्टाष्टमसंपदा विरचयेद्युक्त्या पुनर्दाडिमे।।

एकाद्य खलु षोडषान्तगणितैः, श्रेणी-द्वयं च क्रमात्।
पूर्णं स्यात् तरलोऽष्टमैरपि चतुस्त्रिंशन्मितैनिर्मलैः।।

आचारदिनकर, पृ. 349

• इस तप में अनुक्रम से काहलिका, दाडिम, लता, तरल (पदक), दूसरी लता, दाडिम और काहलिका तप किये जाते हैं।

• प्रथम काहलिका के निमित्त एक उपवास करके पारणा करें। इसके बाद दो उपवास करके पारणा करें, फिर तीन उपवास करके पारणा करें। तत्पश्चात दाड़िम के निमित्त आठ बार निरन्तर तीन-तीन उपवास (तेला) करके पारणा करें। तत्पश्चात एक उपवास कर पारणा, फिर दो उपवास करके पारणा करें। इस प्रकार अनुक्रम से निरन्तर सोलह उपवास करने पर एक लता होती है। तत्पश्चात पदक में चौंतीस तेले होते हैं।

• फिर पश्चानुपूर्वी से सोलह उपवास करके पारणा, पन्द्रह उपवास करके पारणा– इस प्रकार उतरते-उतरते एक उपवास करके पारणा करें। पश्चात दाड़िम के निमित्त आठ तेला करें। फिर तेला, बेला एवं उपवास करें। ऐसा करने से दूसरी लता पूरी होती है।

इस तप में 434 उपवास एवं 88 पारणा, कुल मिलाकर 1 वर्ष, 5 मास और 12 दिनों में प्रथम परिपाटी का तप पूर्ण होता है। कुछ आचार्यों के अभिमत से यह तप भी चार परिपाटियों से 5 वर्ष, 9 मास, 18 दिनों में पूर्ण किया जाता है।

यहाँ विशेष ध्यातव्य है कि कनकावली और रत्नावली दोनों तप लगभग समान हैं। दोनों में मुख्य भेद यह है कि जहाँ रत्नावली में 8 तथा 34 बेले किये जाते हैं, वहाँ कनकावली तप में 8 और 34 तेले किये जाते हैं। शेष तप के दिन बराबर हैं। पारणे में भी समानता है। कनकावली तप की एक परिपाटी में 1 वर्ष, 5 मास एवं 12 दिन लगते हैं। इस प्रकार चारों परिपाटियों के 5 वर्ष, 9 मास और 18 दिन होते हैं। तुलनात्मक अध्ययन के लिए दोनों यन्त्रों का अवलोकन करना चाहिए।

इस तप का यन्त्र न्यास निम्न है –

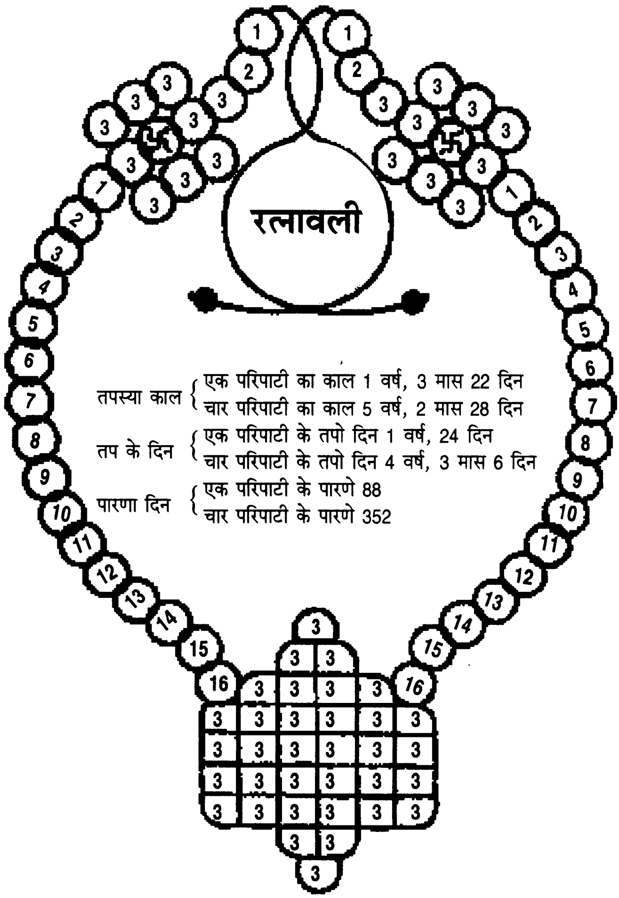

उद्यापन – आचारदिनकर में वर्णित विधि के अनुसार इस तपोद्यापन में बृहत्स्नात्र-विधि से स्नात्र पूजा करनी चाहिए। विविध प्रकार के मूल्यवान रत्नों की माला बनवाकर प्रभु के गले में पहनानी चाहिए। साधर्मी वात्सल्य एवं संघ पूजा करनी चाहिए।

• प्रचलित परम्परा का अनुसरण करते हुए इस तप के दिनों में 'नमो अरिहंताणं' की 20 माला एवं शेष क्रियाएँ 12-12 करें।

साथिया	खमासमण	कायोत्सर्ग	माला
12	12	12	20

16. एकावली-तप

एक+आवली का अर्थ है एक लड़ी का हार। इस तपश्चर्या में एक लड़ी वाले हार की रचना के समान तप-विधि का आचरण किया जाता है, अतः इसे एकावली तप कहते हैं। यह तप विमल गुणों की प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता है तथा कनकावली, मुक्तावली आदि तपःसाधनाओं की तरह चार परिपाटियों में पूर्ण होता है। यह साधुओं एवं श्रावकों के करने योग्य आगाढ़ तप है। इसकी सामान्य विधि निम्न है –

विधि

एक-द्वित्र्युपवासैः, काहलिके द्वे तथा च दाडमिके।
वसु संख्यैश्चतुर्थैः, श्रेणी कनकावली वच्च।।
चतुस्त्रिंशच्चतुर्थैश्च, पूर्यते तरलः पुनः।
समाप्तिमेति साधूनामेवमेकावली तपः।।

आचारदिनकर, पृ. 358

इस तप में अनुक्रम से काहलिका, दाडिम, प्रथम लता, पदक, दूसरी लता, दाडिम और काहलिका तप किये जाते हैं।

- प्रथम काहलिका में निरन्तर क्रमशः एक, दो, तीन उपवास करके पारणा करें।
- तत्पश्चात दाडिम के निमित्त एकान्तर पारणा करते हुए आठ उपवास करें।
- तदनन्तर एक उपवास पारणा, दो उपवास पारणा, तीन उपवास पारणा- इस तरह चढ़ते-चढ़ते सोलह उपवास पर पारणा करने से हार की एक आवलिका (लड़ी) पूरी होती है।
- उसके बाद पदक के निमित्त एकान्तर चौंतीस उपवास करें।

तत्पश्चात पश्चानुपूर्वी क्रम से सोलह उपवास पारणा, पन्द्रह उपवास पारणा– इस तरह निरन्तर उतरते-उतरते एक उपवास कर पारणा करने से द्वितीय आवलिका (लड़ी) पूरी होती है।

- पारणा के बाद पुनः द्वितीय दाडिम के लिए एकान्तर पारणा करते हुए आठ उपवास करें।
- उसके बाद तीन उपवास पारणा, दो उपवास पारणा और अन्त में एक

उपवास पारणा करने पर द्वितीय काहलिका पूर्ण होती है।

इस तप में कुल 334 उपवास और 88 पारणा होते हैं। सब मिलाकर 1 वर्ष, 2 मास, 2 दिनों में यह तप पूर्ण होता है। इस तप की चारों परिपाटियों में कुल 4 वर्ष, 8 मास और 8 दिन लगते हैं।

इस तप की पहली परिपाटी के सभी पारणे में समस्त रस ग्रहण करते हैं। दूसरी परिपाटी के पारणे में छह विगय का त्याग रखते हैं। तीसरी परिपाटी के पारणे में अलेपकृत आहार ग्रहण करते हैं तथा चौथी परिपाटी के पारणे में आयंबिल करते हैं।

एकावली तप का यन्त्र निम्न है-

पा.	उ.	1	काहलिका दाड़िम - 60, एकावली तप में दिन-334, पारणा-88	1	उ.	पा.
पा.	उ.	2		2	उ.	पा.
पा.	उ.	3		3	उ.	पा.
1	1	1		1	1	1
1		1		1		1
1	1	1		1	1	1
उ.	1			1		3
उ.	2			2		पा.
उ.	3			3		पा.
उ.	4			4		पा.
उ.	5			5		पा.
उ.	6			6		पा.
उ.	7			7		पा.
उ.	8			8		पा.
उ.	9			9		पा.
उ.	10			10		पा.
उ.	11			11		पा.
उ.	12			12		पा.
उ.	13			13		पा.
उ.	14			14		पा.
उ.	15			15		पा.
उ.	16			16		पा.
लता - 1				लता - 2		

1 आवलीका			1			आवलीका 2
			1			
		1	1	1		
	1	1	1	1	1	
1	1	1	1	1	1	1
1	1	1	1	1	1	1
	1	1	1	1	1	
पारणांतर		1	1	1		पदक
			1			
			1			

उद्यापन – इस तप की महिमा के प्रख्यापनार्थ बृहत्स्नात्र पूजा विधि पूर्वक करें। जिन प्रतिमा को एक लड़ वाला मोतियों का हार पहनाएँ। ज्ञान भक्ति निमित्त स्वर्ण अक्षरों में शास्त्र लिखवाएं, सुविहित मुनिराज को आहार-वस्त्रादि का दान दें, संघ वात्सल्य एवं गुरु भक्ति करें।

- जीत परम्परा का अनुसरण करते हुए इस तपोयोग के दौरान प्रतिदिन निम्न क्रियाएँ अवश्य करनी चाहिए।

साथिया	खमासमण	कायोत्सर्ग	माला
12	12	12	20

17. आयंबिल वर्धमान तप

वर्धमान अर्थात बढ़ता हुआ। आयंबिल द्वारा वृद्धि पाते हुए जो तप किया जाता है उसे आयंबिल वर्धमान तप कहते हैं। स्पष्ट है कि इसमें क्रमशः एक आयंबिल, एक उपवास, फिर दो आयंबिल एक उपवास, फिर तीन आयंबिल एक उपवास- इस तरह एक-एक बढ़ाते हुए एवं प्रत्येक लड़ी के अन्त में उपवास करते हुए सौ आयंबिल तक पहुँचा जाता है, अतः इसका नाम आयंबिल वर्धमान तप है।

अन्तकृत्दशासूत्र (8/10) का अध्ययन करने से अवगत होता है कि इस तप का प्ररूपण भगवान महावीर ने किया है तथा उस युग में इसकी आराधना श्रेणिक राजा की महासेनकृष्णा रानी ने की थी। वर्तमान की तप-सम्बन्धी प्रतियों में चन्द्र नरेश्वर का नाम आता है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक-परम्परा में इस तपश्चरण का अत्यधिक महत्त्व है। आज भी अनेकों साधु-साध्वी एवं गृहस्थ वर्ग इस तपाराधना में जुटे हुए हैं, कुछ साधक पूर्वानुक्रम से तो कुछ पूर्वानु और पश्चानुक्रम द्विविध रीतियों से यह तप पूर्ण कर चुके हैं। तीर्थङ्करोपदिष्ट इस तप की आराधना मुनियों एवं गृहस्थों सभी के लिए करणीय है। यह तप निरन्तर करने पर चौदह वर्ष, तीन मास और बीस दिनों में पूर्ण होता है। इस तप को लगातार या एक-एक ओली के बाद पारणा करके भी किया जा सकता है। इसमें यथानुकूलता दो, चार, दस, बीस आदि ओलियों को पूर्ण करके भी पारणा कर सकते हैं। इस तप में एक से लेकर सौ आयंबिल तक पुनः-पुनः चढ़ा जाता है, अतः इसमें सौ ओलियाँ होती है।

विधि

उपवासान्तरितानि च, शतपर्यन्तानां तथैकमारभ्य।
वृद्धया निरंतरतया भवति, तदाचाम्ल वर्धमानं च।।

आचारदिनकर, पृ. 364

इस तप में सर्वप्रथम एक आयंबिल करके उपवास करें, फिर दो आयंबिल करके उपवास करें, इस प्रकार एक-एक के बढ़ते क्रम से सौ आयम्बिल करके उपवास करें।

इस तरह यह तप चौदह वर्ष, तीन माह और बीस दिन में पूरा होता है। कुछ लोग इसके मध्य में पारणा भी करते हैं। महासेनकृष्णा ने इस तप के बीच में पारणा नहीं किया। तदनुसार इस तप की दिन संख्या बताई गई है। इस तप के फल से तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन होता है।

आयम्बिल-वर्धमान तप का यन्त्र इस प्रकार है –

वर्ष-14, मास-3, दिन-20																			
आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.
1	1	2	1	3	1	4	1	5	1	6	1	7	1	8	1	9	1	10	1
11	1	12	1	13	1	14	1	15	1	16	1	17	1	18	1	19	1	20	1
21	1	22	1	23	1	24	1	25	1	26	1	27	1	28	1	29	1	30	1
31	1	32	1	33	1	34	1	35	1	36	1	37	1	38	1	39	1	40	1
41	1	42	1	43	1	44	1	45	1	46	1	47	1	48	1	49	1	50	1
51	1	52	1	53	1	54	1	55	1	56	1	57	1	58	1	59	1	60	1
61	1	62	1	63	1	64	1	65	1	66	1	67	1	68	1	69	1	70	1
71	1	72	1	73	1	74	1	75	1	76	1	77	1	78	1	79	1	80	1
81	1	82	1	83	1	84	1	85	1	86	1	87	1	88	1	89	1	90	1
91	1	92	1	93	1	94	1	95	1	96	1	97	1	98	1	99	1	100	1

उद्यापन – इस तप की परिसमाप्ति होने पर बृहत्स्नात्र विधि पूर्वक चौबीस तीर्थङ्कर परमात्माओं की पूजा करें। यथाशक्ति साधर्मिक वात्सल्य एवं संघ पूजा करें। सुविहित मुनियों को आहारादि का दान करें।

• प्रचलित विधि का अनुसरण करते हुए इस तपाराधन काल में प्रतिदिन 'ॐ नमो अरिहंताणं' की 20 माला एवं निम्न क्रियाएँ अवश्य करें–

साथिया	खमासमण	कायोत्सर्ग	माला
12	12	12	20

18. श्रेणी तप

श्रेणी का अर्थ है पंक्ति। पंक्तिबद्ध जो तप किया जाता है वह श्रेणी-तप कहलाता है। टीकाकार शान्त्याचार्य (टीका- पत्र 600-601) के अनुसार इसमें उपवास से प्रारम्भ कर छह मास पर्यन्त क्रम पूर्वक तपस्या की जाती है। आचारदिनकर आदि कुछ ग्रन्थों में इस तप की छः श्रेणियाँ बतायी गयी हैं। उनमें प्रत्येक में एक-एक उपवास की वृद्धि करते हुए पुनः-पुनः से ऊपर चढ़ा जाता है।

इस तप के करने से क्षपक श्रेणी की प्राप्ति होती है। यह आगाढ़ तप साधु एवं श्रावक दोनों के लिए करणीय बतलाया गया है। इस तप का सर्वप्रथम उल्लेख उत्तराध्ययनसूत्र (30/10-11) में प्राप्त होता है। वहाँ इत्वरिक अनशन तप के छह प्रकारों में इसकी गणना की गयी है। वर्तमान में इसका स्थान प्रसिद्ध तपों में है।

विधि

श्रेणौ षट्श्रेण्यः प्रोक्ता, को द्वौ प्रथमे क्षणे।
द्वितीयादिषु चैकैक, क्रमवृद्धयाऽभिजायते।।

आचारदिनकर, पृ. 362

इस तप की **प्रथम श्रेणी में** सर्वप्रथम एक उपवास करके पारणा करें, फिर दो उपवास करके पारणा करें।

दूसरी श्रेणी में प्रथम एक उपवास करके पारणा करें, फिर दो उपवास करके पारणा करें, फिर तीन उपवास करके पारणा करें।

तीसरी श्रेणी में एक, दो, तीन और चार उपवास पारणापूर्वक करें।

चौथी श्रेणी में एक, दो, तीन, चार और पाँच उपवास पारणापूर्वक करें।

पाँचवीं श्रेणी में एक, दो, तीन, चार, पाँच और छह उपवास पारणापूर्वक करें।

छठी श्रेणी में एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह और सात उपवास पारणापूर्वक करें।

इस तरह छहों श्रेणियों में 83 उपवास और 27 पारणा, ऐसे कुल 110 दिनों में यह तप पूरा होता है।

उद्यापन – इस तप की महिमा के वर्धनार्थ तप पूर्णाहुति पर बृहत्स्नात्र पूजा करें, जिन प्रतिमा के आगे 110-110 पकवान, फल, पुष्प वगैरह चढ़ायें, साधर्मी वात्सल्य एवं संघ पूजा करें।

• प्रचलित विधि का अनुगमन करते हुए इस तप के दिनों में 'ॐ नमो अरिहंताणं' का जाप एवं निम्न क्रियाएँ अवश्य करें–

साथिया	खमासमण	कायोत्सर्ग	माला
12	12	12	20

19. प्रतर तप

श्रेणी को श्रेणी से गुणा करना प्रतर कहलाता है। उत्तराध्ययनसूत्र की शान्त्याचार्य टीका (पत्र 601) के अनुसार प्रतर क्रम से अर्थात श्रेणी को श्रेणी पदों से गुणाकार करके किया जाने वाला तप प्रतर तप कहा जाता है। उदाहरणार्थ– उपवास, बेला, तेला, चोला इन चार पदों की श्रेणी है। इन चार पदों को चार से गुणा करने पर 4×4 = 16 पद हो जाते हैं।

वे सोलह पद लम्बाई-चौड़ाई में बराबर होने चाहिए। जैसे– पहली श्रेणी में 1-2-3-4 यह क्रम बनेगा, दूसरी श्रेणी में 2-3-4-1 यह क्रम रहेगा। स्पष्ट बोध के लिए स्थापना यन्त्र इस प्रकार है –

उपवास 40, पारणा 17, कुल दिन 56				
पहली श्रेणी	उपवास	बेला	तेला	चोला
दूसरी श्रेणी	बेला	तेला	चोला	उपवास
तीसरी श्रेणी	तेला	चोला	उपवास	बेला
चौथी श्रेणी	चोला	उपवास	बेला	तेला

यह तप तीर्थङ्कर उपदिष्ट एवं इत्वरिक अनशन के छह प्रकारों में से एक है। उत्तराध्ययनसूत्र (30/10-11) में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यह साधु एवं श्रावक दोनों के लिए अवश्य करने योग्य है। वर्तमान में इस तपस्या के आराधक वर्ग प्राय: नहीं दिखते।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर बृहत्स्नात्र महोत्सव करना चाहिए, उपवास की संख्यानुसार जिनेश्वर प्रतिमा के सम्मुख फल, नैवेद्य आदि चढ़ाने चाहिए, यथाशक्ति साधर्मी वात्सल्य एवं संघ की पूजा भक्ति करनी चाहिए।

• इस तप में उपवास के दिन श्रेणी तप की भाँति साथिया आदि सर्व क्रियाएँ करनी चाहिए।

20. घन तप

प्रतर को श्रेणी से गुणा करना घन कहलाता है। शान्त्याचार्य (पत्र 601) टीकानुसार जैसे सोलह की संख्या प्रतर हुई, इसे श्रेणी 4 की संख्या से गुणा

करने पर 64 की संख्या आती है। यह घन संख्या कहलाती है तथा इस संख्या के क्रम से किया जाने वाला तप, घन तप कहा जाता है। आचारदिनकर के अनुसार विविध अंकों की युक्ति से किये जाने वाले तप को घन-तप कहते हैं।

यह तप मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता है। इस तप की आराधना श्रमण एवं गृहस्थ दोनों को करनी चाहिए। वर्तमान में यह तप प्रचलन में नहीं है। यह तप इत्वरिक अनशन के छह प्रकारों में से एक है।

इस तप विधि के सम्बन्ध में दो प्रकार प्राप्त होते हैं –

प्रथम रीति– प्रस्तुत रीति के अनुसार इस तप में 16×4 = 64 पद एवं आठ श्रेणियाँ होती हैं। एक श्रेणी को पूर्ण करने में 36 उपवास और 8 पारणा कुल 44 दिन लगते हैं। इस तरह आठों श्रेणियाँ पूर्ण करने में 352 दिन लगते हैं, जिनमें 288 उपवास और 64 पारणा दिन आते हैं।

इसका स्थापना यन्त्र इस प्रकार है –

उपवास 288, पारणा 64, कुल दिन 352							
1	2	3	4	5	6	7	8
2	3	4	5	6	7	8	1
3	4	5	6	7	8	1	2
4	5	6	7	8	1	2	3
5	6	7	8	1	2	3	4
6	7	8	1	2	3	4	5
7	8	1	2	3	4	5	6
8	1	2	3	4	5	6	7

दूसरी रीति – आचारदिनकर (पृ. 360) के अनुसार इस तप में क्रमशः एक उपवास करके पारणा करें, फिर दो उपवास करके पारणा करें। पुनः इसी प्रकार एक उपवास करके पारणा करें और फिर दो उपवास करके पारणा करें। तत्पश्चात पुनः दो उपवास, एक उपवास, दो उपवास एक उपवास एकान्तर पारणे से करें। इस प्रकार इसमें कुल बारह उपवास एवं आठ पारणे होते हैं।

उद्यापन – इस तप के उद्यापन में बृहत्स्नात्र-विधि पूर्वक पूजा करके उपवास की संख्या के अनुसार अर्थात बारह-बारह फल, पुष्प,नैवेद्य आदि चढ़ाएं। साधर्मीवात्सल्य एवं संघपूजा करें।

• इस तप की पूर्ण सफलता के लिए प्रतिदिन निम्न क्रियाएँ अवश्य करनी चाहिए –

साथिया	खमासमण	कायोत्सर्ग	माला
12	12	12	20

21. महाघन तप

महाघन का अर्थ है– घन से अधिक संख्या वाला तप महाघन तप कहलाता है। पूर्वाचार्यों के अनुसार इस तप को करने से चक्रवर्ती की ऋद्धि प्राप्त होती है तथा अशुभ कर्मों का क्षय होता है।

"तपसुधा निधि" नामक संकलित पुस्तक में इस तप सम्बन्धित अनेक प्रकारान्तर दिये गये हैं। यह तप साधु एवं गृहस्थ दोनों के लिए अवश्य करणीय है। इसकी सामान्य विधियाँ निम्न प्रकार हैं –

प्रथम रीति – आचारदिनकर के निर्देशानुसार यह तप नौ श्रेणियों में पूर्ण किया जाता है।

महाघनस्तपः-श्रेष्ठं, एक द्वि त्रिभिरेवहि ।
उपवासैर्नवकृत्वा, पृथक् श्रेणिमुपागतैः ।।

आचारदिनकर, पृ. 361

• इस तप की **प्रथम श्रेणी में** क्रमशः एक-दो-तीन उपवास एकान्तर पारणा से करें।

• **द्वितीय श्रेणी में** दो- तीन- एक उपवास एकान्तर पारणे से करें।

• फिर **तृतीय श्रेणी में** तीन-दो-एक उपवास एकान्तर पारणे से करें।

• तत्पश्चात **चौथी श्रेणी में** तीन-एक-दो उपवास एकान्तर पारणे से करें।

• **पांचवीं श्रेणी में** तीन-एक-दो उपवास एकान्तर पारणे से करें।

• **छठी श्रेणी में** एक-दो-तीन उपवास एकान्तर पारणे से करें।

• **सातवीं श्रेणी में** दो-तीन-एक उपवास एकान्तर पारणे से करें।

• **आठवीं श्रेणी में** तीन-एक-दो उपवास एकान्तर पारणे से करें।

• **नवीं श्रेणी में** दो-तीन-एक उपवास एकान्तर पारणे से करें।

इस प्रकार इस तप में 54 उपवास और 27 पारणे कुल 81 दिन में यह तप पूर्ण होता है।

इसका यन्त्र इस प्रकार है –

उपवास 54, पारणा 27 कुल दिन 81			
प्रथम श्रेणी	1	2	3
द्वितीय श्रेणी	2	3	1
तृतीय श्रेणी	3	1	2
चतुर्थ श्रेणी	2	3	1
पंचम श्रेणी	3	1	2
षष्ठम श्रेणी	1	2	3
सप्तम श्रेणी	2	3	1
अष्टम श्रेणी	3	1	2
नवम श्रेणी	2	3	1

दूसरी रीति – जैन प्रबोध ग्रन्थानुसार इस तप को निर्धारित तप संख्या से 16 श्रेणियों में पूर्ण किया जाता है। जैसे पहली श्रेणी में एक उपवास कर पारणा करें, फिर दो उपवास कर पारणा करें, फिर तीन उपवास कर पारणा करें, फिर चार उपवास कर पारणा करें। इसी प्रकार क्रमशः 16 श्रेणियाँ करने से यह तप पूर्ण होता है। इसकी स्पष्ट जानकारी हेतु यन्त्र निम्न प्रकार है–

उपवास 160, पारणा 64, कुल दिन 224				
श्रेणी	**उ.**	**उ.**	**उ.**	**उ.**
प्रथम श्रेणी	1	2	3	4
द्वितीय श्रेणी	2	3	4	1
तृतीय श्रेणी	3	4	1	2
चतुर्थ श्रेणी	4	1	2	3
पंचम श्रेणी	2	3	4	1
षष्ठम श्रेणी	3	4	1	2

सप्तम श्रेणी	4	1	2	3
अष्टम श्रेणी	1	2	3	4
नवमी श्रेणी	3	4	1	2
दशमी श्रेणी	4	1	2	3
एकादशमी श्रेणी	1	2	3	4
द्वादशमी श्रेणी	2	3	4	1
त्रयोदशमी श्रेणी	4	1	2	3
चतुर्दशमी श्रेणी	1	2	3	4
पंचदशमी श्रेणी	2	3	4	1
षोडशमी श्रेणी	3	4	2	1

तीसरी रीति – तीसरे प्रकार के अनुसार यह तप पाँच संख्या की घनराशी तक 25 श्रेणियों में पूर्ण होता है। जैसे पहली श्रेणी में क्रमश: एक, दो, तीन, चार, पाँच उपवास एकान्तर पारणे से करें।

इसी तरह नीचे दिये गये कोष्ठक अनुसार 25 परिपाटियाँ पूर्ण करने पर यह तप होता है।

उपवास 375, पारणा 125, कुल दिन 500 = 1 वर्ष, 4 मास, 20 दिन					
1 ली श्रेणी	1	2	3	4	5
2 री श्रेणी	2	3	4	5	1
3 री श्रेणी	3	4	5	1	2
4 थी श्रेणी	4	5	1	2	3
5 वीं श्रेणी	5	1	2	3	4
6 वीं श्रेणी	2	3	4	5	1
7 वीं श्रेणी	3	4	5	2	2

8 वीं श्रेणी	4	5	1	2	3
9 वीं श्रेणी	5	1	2	3	4
10 वीं श्रेणी	1	2	3	4	5
11 वीं श्रेणी	3	4	5	1	2
12 वीं श्रेणी	4	5	1	2	3
13 वीं श्रेणी	5	1	2	3	4
14 वीं श्रेणी	1	2	3	4	5
15 वीं श्रेणी	2	3	4	5	1
16 वीं श्रेणी	4	5	1	2	3
17 वीं श्रेणी	5	1	2	3	4
18 वीं श्रेणी	1	2	3	4	5
19 वीं श्रेणी	2	3	4	5	1
20 वीं श्रेणी	3	4	5	1	2
21 वीं श्रेणी	5	1	2	3	4
22 वीं श्रेणी	1	2	3	4	5
23 वीं श्रेणी	2	3	4	5	1
24 वीं श्रेणी	3	4	5	1	2
25 वीं श्रेणी	4	5	1	2	3

चौथी रीति – चतुर्थ प्रकार के अनुसार यह तप छह संख्या घन तक 36 परिपाटियों में पूर्ण होता है। जैसे पहली श्रेणी में क्रमशः एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह उपवास एकान्तर पारणे से करें। इसी तरह निम्न यन्त्र अनुसार 36 परिपाटियाँ पूर्ण करने पर यह तप होता है।

उपवास 756, पारणा 216, सर्व दिन 972 = 2 वर्ष, 8 मास, 12 दिन						
1 ली श्रेणी	1	2	3	4	5	6
2 री श्रेणी	2	3	4	5	6	1
3 री श्रेणी	3	4	5	6	1	2
4 थी श्रेणी	4	5	6	1	2	3
5 वीं श्रेणी	5	6	1	2	3	4
6 वीं श्रेणी	6	1	2	3	4	5
7 वीं श्रेणी	2	3	4	5	6	1
8 वीं श्रेणी	3	4	5	6	1	2
9 वीं श्रेणी	4	5	6	1	2	3
10 वीं श्रेणी	5	6	1	2	3	4
11 वीं श्रेणी	6	1	2	3	4	5
12 वीं श्रेणी	1	2	3	4	5	6
13 वीं श्रेणी	3	4	5	6	1	2
14 वीं श्रेणी	4	5	6	1	2	3
15 वीं श्रेणी	5	6	1	2	3	4
16 वीं श्रेणी	6	1	2	3	4	5
17 वीं श्रेणी	1	2	3	4	5	6
18 वीं श्रेणी	2	3	4	5	6	1
19 वीं श्रेणी	4	5	6	1	2	3
20 वीं श्रेणी	5	6	1	2	3	4
21 वीं श्रेणी	6	1	2	3	4	5
22 वीं श्रेणी	1	2	3	4	5	6

23 वीं श्रेणी	2	3	4	5	6	1
24 वीं श्रेणी	3	4	5	6	1	2
25 वीं श्रेणी	5	6	1	2	3	4
26 वीं श्रेणी	6	1	2	3	4	5
27 वीं श्रेणी	1	2	3	4	5	6
28 वीं श्रेणी	2	3	4	5	6	1
29 वीं श्रेणी	3	4	5	6	1	2
30 वीं श्रेणी	4	5	6	1	2	3
31 वीं श्रेणी	6	1	2	3	4	5
32 वीं श्रेणी	1	2	3	4	5	6
33 वीं श्रेणी	2	3	4	5	6	1
34 वीं श्रेणी	3	4	5	6	1	2
35 वीं श्रेणी	4	5	6	1	2	3
36 वीं श्रेणी	5	6	1	2	3	4

उद्यापन – महाघन-तप के पूर्ण होने पर विधि पूर्वक बृहत्स्नात्र की पूजा करें, उपवास की संख्या के अनुसार पुष्प, फल, नैवेद्य आदि चढ़ायें, यथाशक्ति साधर्मी वात्सल्य एवं संघ पूजा करें।

• प्रचलित विधि के अनुसार इस तप के दिनों में प्रतिदिन अरिहन्त पद की आराधना करें।

साथिया	खमासमण	कायोत्सर्ग	माला
12	12	12	20

22. वर्ग तप

घन को घन से गुणा करना वर्ग कहलाता है। घन-तप के 64 पद हैं। उन 64 पद को 64 से गुणा करने पर वर्ग-तप के 64×64=4096 पद होते हैं। वर्ग के इस आंकड़े के समान निर्धारित क्रम से तप करना, वर्ग तप कहलाता है।

इस तप से बाह्य एवं आभ्यन्तर द्विविध महाऋद्धियों की प्राप्ति होती है। यह इत्वरिक अनशन के छह प्रकारों में से एक है। वर्तमान में यह तप नहींवत रह गया है यद्यपि आगम सम्मत एवं तीर्थङ्कर प्रणीत होने से इसकी चर्चा उपयोगी प्रतीत होती है।

यह तप दो की संख्या तक आठ श्रेणियों में पूर्ण किया जाता है। इसकी विधि निम्न प्रकार है –

विधि

एक-द्वयेक-युग्म-युग्म- वसुधा युग्मेन्दु भूयामल-
क्ष्मा युग्मद्वयभूमि युग्मधरणीयुग्मेन्दु- युग्मैककैः।
एक-द्वयेक भुजद्विभूमि युगलज्याज्याद्वि-भूमिद्वयै-
रेक द्वयेक भुजद्विचन्द्र-यमलैरेकैकयुग्मेन्दुभिः।।
द्विद्वयेकद्विमहीद्विभूमियुगलज्याज्याद्विभूमिद्वयैः,
द्वयेकद्वयेक महीद्विचन्द्रयुगलैः, श्रेण्यष्टकत्वं गतैः।
वर्गाख्यं तप उच्यते ह्यनशनैर्मध्योल्लसत्पारणैः,
सर्वत्रापि निरन्तरैरपि दिनान्यस्मिन् खषट्भूमयः।।

आचारदिनकर, पृ. 361-62

• इस तप की प्रथम श्रेणी में क्रमशः एक,दो,एक,दो,दो,एक,दो एवं एक उपवास एकान्तर पारणे से करें।

• दूसरी श्रेणी में क्रमशः एक,दो,दो,एक,दो,एक,दो एवं एक उपवास एकान्तर पारणे से करें।

• तीसरी श्रेणी में क्रमशः दो, एक, दो, एक, एक, दो, एक एवं दो उपवास एकान्तर पारणे से करें।

• चौथी श्रेणी में क्रमशः दो, एक, एक, दो, एक, दो, एक एवं दो उपवास एकान्तर पारणे से करें।

• पांचवीं श्रेणी में क्रमशः एक, दो, एक, दो, दो, एक, एक एवं दो उपवास एकान्तर पारणे से करें।

• छठी श्रेणी में क्रमशः एक, दो, एक, दो, दो, एक, दो एवं एक उपवास एकान्तर पारणे से करें।

• सातवीं श्रेणी में क्रमशः दो, एक, दो, एक, एक, दो, दो एवं एक

उपवास एकान्तर पारणे से करें।

• आठवीं श्रेणी में दो, एक, दो, एक, दो, एक, दो एवं एक उपवास एकान्तर पारणे से करें।

इस प्रकार आठ श्रेणियों में 96 उपवास और 64 पारणा कुल 160 दिन में यह तप पूर्ण होता है।

वर्ग-तप का विधि यन्त्र इस प्रकार है –

उपवास 96, पारणा 64, कुल दिन 160								
प्रथम श्रेणी	1	2	1	2	2	1	2	1
द्वितीय श्रेणी	1	2	2	1	2	1	2	1
तृतीय श्रेणी	2	1	2	1	1	2	1	2
चतुर्थ श्रेणी	2	1	1	2	1	2	1	2
पंचम श्रेणी	1	2	1	2	2	1	1	2
षष्ठम श्रेणी	1	2	1	2	2	1	2	1
सप्तम श्रेणी	2	1	2	1	1	2	2	1
अष्टम श्रेणी	2	1	2	1	2	1	2	1

उद्यापन– इस तप के पूर्ण होने पर बृहद्स्नात्र पूजा करें, परमात्मा के सम्मुख 160-160 नैवेद्य, फल आदि चढ़ायें, यथासामर्थ्य साधर्मी भक्ति, गुरु सेवा एवं संघ पूजा करें।

• जीत व्यवहार के अनुसार इस तप की सम्यक् आराधना हेतु अरिहंत पद का जाप आदि करें।

साथिया	**खमासमण**	**कायोत्सर्ग**	**माला**
12	12	12	20

23. वर्ग-वर्ग तप

वर्ग संख्या को वर्ग संख्या से गुणा करना वर्ग-वर्ग कहलाता है। जैसे– वर्ग की संख्या 4096 है, उसे इसी संख्या (4096) से गुणा करने पर 16,77,72 16 की संख्या आती है। यही संख्या वर्ग-वर्ग है। इस संख्या के क्रम एवं निर्धारित विधि से जो तप किया जाता है, वह वर्ग-वर्ग तप कहलाता है।

24. प्रकीर्ण तप

प्रकीर्ण का अर्थ है- फुटकर अर्थात अनिश्चित विधि से किया जाने वाला तप प्रकीर्णक तप कहलाता है।

शान्त्याचार्य टीका (पत्र 601) के अनुसार जैसे श्रेणी आदि तपों में एक निश्चित विधि एवं निर्धारित कालमान रहता है, जबकि प्रकीर्ण तप श्रेणी आदि निश्चित पदों के बिना अपनी शक्ति और इच्छा के अनुसार किया जाता है। इसमें नवकारसी आदि तपों का समावेश होता है।

प्रकीर्ण-सम्बन्धी तपों का वर्णन आगम एवं टीका साहित्य में पृथक्-पृथक् स्थानों पर प्राप्त होता है। आचार्य हरिभद्र (पंचाशक प्रकरण 5वाँ), आचार्य देवेन्द्रसूरि (प्रत्याख्यानभाष्य), आचार्य नेमिचन्द्रसूरि (प्रवचनसारोद्धार द्वार 4) रचित ग्रन्थों में भी यह वर्णन पढ़ने को मिलता है। तदनुसार नवकारसी आदि का सामान्य स्वरूप इस प्रकार है –

नवकारसी (नमुक्कारसहित) तप– सूर्योदय से दो घड़ी (48 मिनट) पश्चात नवकार मन्त्र गिने जाने तक आहार का त्याग करना, नवकारसी तप कहलाता है। इसका दूसरा नाम नमस्कारिका भी है। बोलचाल की भाषा में इसे नवकारसी कहते हैं। नमस्कार मन्त्र पढ़कर ही इस तप को पूर्ण किया जाता है। इस कारण इसे 'नमस्कार सहिता' भी कहा जाता है। गीतार्थ परम्परानुसार नवकारसी तप चौविहार पूर्वक ही होता है। इसके गंठिसहियं, मुट्ठिसहियं आदि अनेक भेद हैं।

पौरुषी तप– पौरुषी यानी पुरुष के शरीर के बराबर छाया जिस काल में हो, वह काल पौरुषी कहलाता है। सूर्योदय के बाद एक प्रहर दिन चढ़ने पर (अर्थात दिन का चौथाई भाग बीत जाने पर) मनुष्य की छाया घटते-घटते अपने शरीर परिमाण रह जाती है, अत: उस कालमान को पौरुषी कहा जाता है। इसे प्रहर भी कहते हैं। प्राचीन युग में जब घड़ी आदि का आविष्कार नहीं हुआ था तब शरीर की छाया एवं नक्षत्रों आदि की गति से समय ज्ञान किया जाता था।

सूर्योदय से लगभग एक प्रहर तक आहार-पानी का त्याग करना, पौरुषी तप है।

साड्ढपोरिसी (सार्ध पौरुषी) तप– सूर्योदय से लेकर डेढ़ प्रहर तक *आहार-पानी का त्याग रखना, साड्ढपौरुषी-तप कहलाता है।*

पुरिमड्ड (पुरिमार्ध) तप– दिन का प्रथमार्ध भाग पुरिमड्ढ कहलाता है। सूर्योदय से लेकर दिन के प्रथम दो प्रहर तक आहार का त्याग करना, पुरिमड्ढ-तप है।

अवड्ढ (अपार्ध) तप– अवड्ढ में अप और अर्ध दो शब्द हैं, अप अर्थात पीछे का। अपराह्न के आधे का आधा भाग अपार्ध कहलाता है। इस प्रकार सूर्योदय से तीन प्रहर तक आहार का त्याग करना, अपार्ध तप है।

एकाशन तप– दिन में एक बार एक स्थान पर बैठकर भोजन करना, एकाशन तप है। एकाशन शब्द से दो अर्थ ध्वनित होते हैं – एक अशन और एक आसन। प्राकृत 'एगासण' शब्द के एकाशन एवं एकासन दोनों ही अर्थ होते हैं। प्रवचनसारोद्धार टीका (द्वार 4) में कहा गया है कि एक आसन पर बैठकर दिन में एक बार भोजन करना एकाशन तप है। प्राचीन परम्परा के अनुसार एकाशन में पौरुषी के बाद एक बार आहार किया जाता है।

एकस्थान (एकठाणा) तप– बोलचाल की भाषा में इसे एकलठाणा कहते हैं। भोजन प्रारम्भ करते समय शरीर की जो स्थिति हो अथवा जिस स्थिति में बैठे हों, भोजन के अन्त तक उसी स्थिति में बैठे रहना एक स्थान तप है।

एकासन और एक स्थान तप में मुख्य अन्तर यह है कि एकासण में बैठक के अतिरिक्त शरीर के सभी अंग हिला सकते हैं जबकि एकठाण में दाहिना हाथ एवं मुँह ही हिला सकते हैं। इसमें एक बार में ही आहार-पानी आदि ग्रहण किया जाता है।

आयंबिल तप– आचाम्ल शब्द से आयंबिल बना है। आच का अर्थ है मांड और अम्ल का अर्थ होता है खट्टा रस। सिर्फ उबले हुए उड़द, भुने हुए चने, पकाये गये चावल आदि के साथ मांड और खट्टा रस- इन दो पदार्थों या किसी एक का उपयोग करना, आयंबिल तप कहलाता है।

इस तप में घी- दूध- दही- पक्वान्न आदि छहों विगयों का त्याग किया जाता है एवं दिन में एक बार उबला हुआ भोजन ही ग्रहण किया जाता है।

अभक्तार्थ तप– भक्त का अर्थ होता है भोजन। जिस तप में भोजन का प्रयोजन ही न हो, वह उपवास तप कहलाता है। उपवास का दूसरा नाम 'चतुर्थ भक्त' भी है वह इस प्रकार है – उपवास के पूर्व दिन एक समय के भोजन का त्याग करना, उपवास के दिन दोनों समय के भोजन का त्याग करना तथा पारणे

के दिन भी एक समय के भोजन का त्याग करना। इस प्रकार उपवास के पहले और दूसरे दिन में एकाशन करने से चार समय के आहार का त्याग हो जाता है, अत: यह उपवास- चतुर्थभक्त के नाम से जाना जाता है।

दिवसचरिम तप– दिन के अन्तिम भाग में अर्थात सूर्यास्त के समय अथवा सूर्यास्त के कुछ समय पूर्व से दूसरे दिन सूर्योदय तक के लिए तीन आहार (तिविहार) या चारों आहार (चउविहार) का त्याग कर देना, दिवसचरिम-तप कहलाता है।

जीवन के अन्तिम समय तक (जीवन पर्यन्त) किया गया प्रत्याख्यान भवचरिम तप कहलाता है। दिवसचरिम प्रत्याख्यान में रात्रि भोजन का स्वत: त्याग हो जाता है तथा श्रावक के लिए रात्रि भोजन का त्याग करना आवश्यक भी है।

निर्विकृतिक (नीवि) तप– मन को विकृत करने वाली अथवा विगति-दुर्गति में ले जाने वाली विकृतियाँ जिसमें न हों, वैसा विगय रहित एक बार आहार लेना, नीवि तप है।

25. इन्द्रियजय तप

इन्द्र अर्थात जीव, इसे जिसके द्वारा जाना जाये उस साधन को इन्द्रिय कहते हैं। विशेषावश्यकभाष्य में इन्द्र शब्द का अर्थ-घटन करते हुए कहा गया है कि

इन्द्रो जीवो सव्वोवलद्धि, भोग-परमेस रत्तणओ।
सोत्ताई-भेयमिंदियमिह, तल्लिंगाई भावाओ।।

सर्व उपलब्धियों, सर्व भोगों और परम ऐश्वर्य का स्वामी होने से जीव 'इन्द्र' कहलाता है। जीव को जानने के साधन श्रोत्रादि विभिन्न लक्षणों से युक्त होने के कारण इन्द्रियाँ कहलाती हैं। इन्द्रियाँ पाँच कही गयी हैं– 1. स्पर्शेन्द्रिय (त्वचा) 2. रसनेन्द्रिय (जीभ) 3. घ्राणेन्द्रिय (नाक) 4. चक्षुरिन्द्रिय (आँख) 5. श्रोत्रेन्द्रिय (कान)।

इन इन्द्रियों के मुख्य विषय पाँच हैं, किन्तु अवान्तर 23 विषय हैं जैसे– स्पर्शेन्द्रिय के आठ विषय हैं– हल्का, भारी, कोमल, खुरदरा, ठण्डा, गरम, चिकना, रूखा। रसनेन्द्रिय के पाँच विषय हैं – मीठा, खट्टा, खारा, कड़वा और तीखा। घ्राणेन्द्रिय के दो विषय हैं – सुगन्ध और दुर्गन्ध। चक्षुरिन्द्रिय के पाँच विषय हैं – सफेद, काला, नीला, पीला और लाल। श्रोत्रेन्द्रिय के तीन विषय

हैं – 1. सचित्त – जीवित प्राणियों के शब्द 2. अचित्त – यान्त्रिक साधनों की ध्वनियाँ 3. मिश्र – गीत गाता हुआ, वाद्यादि बजाता हुआ मनुष्य।

सांसारिक मनुष्य ऐन्द्रिक विषयों में राग-द्वेष एवं सुख-दुःख की कल्पना करता है। यह सब इन्द्रिय आसक्ति की वजह से होता है। यह तप इन्द्रिय विषयों पर विजय प्राप्त करने के लिए करते हैं। इस तप के फल से सभी इन्द्रियों की अशुभ प्रवृत्तियाँ मन्द अथवा समाप्त हो जाती हैं। यह तप साधु एवं श्रावक दोनों के करने योग्य है और वर्तमान परम्परा में सामान्यतया प्रचलित भी है।

विधि

पूर्वार्धमेकभक्तं च, विरसाम्ले उपोषितं।
प्रत्येकमिन्द्रियजयः, पंचविंशतिवासरै ।।

आचारदिनकर, पृ. 337

इस तप में क्रमशः पुरिमड्ढ, एकाशन, नीवि, आयंबिल और उपवास, ऐसा पाँच दिन तक करने से इन्द्रिय जय तप की एक परिपाटी होती है। इस तरह पाँचों इन्द्रियों पर नियन्त्रण पाने हेतु पाँच परिपाटियाँ की जाती है। इस प्रकार $5\times5 = 25$ दिन में यह तप पूर्ण होता है।

• प्रवचनसारोद्धार, पंचाशकप्रकरण, विधिमार्गप्रपा आदि ग्रन्थों में भी इस तप की यथावत विवेचना की गयी है।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर जिनेश्वर परमात्मा के आगे विभिन्न प्रकार के पच्चीस-पच्चीस पकवान, फल आदि चढ़ाए और उतनी ही संख्या में पकवानों का साधुओं को दान दें। ज्ञान की भक्ति, साधर्मी-वात्सल्य एवं संघ पूजा करें।

• प्रचलित विधि के अनुसार इन्द्रियजय तप के दिनों में परिपाटी के अनुरूप निम्न आराधना अवश्य करें अथवा पांचों परिपाटियों में 'इन्द्रियजयाय नमः' की 20 माला तथा साथिया आदि पाँच-पाँच करें।

क्रम	जाप	साथिया	खमासमण	कायो.	माला
पहली परिपाटी	स्पर्शेन्द्रिय जय तपसे नमः	8	8	8	20
दूसरी परिपाटी	रसनेन्द्रिय जय तपसे नमः	5	5	5	20
तीसरी परिपाटी	घ्राणेन्द्रिय जय तपसे नमः	2	2	2	20
चौथी परिपाटी	चक्षुरिन्द्रिय जय तपसे नमः	5	5	5	20
पांचवीं परिपाटी	श्रोत्रेन्द्रिय जय तपसे नमः	3	3	3	20

26. कषायजय तप

कषाय शब्द 'कष्' धातु से बना है। कष् का अर्थ है खींचना, बिगाड़ देना। जीव के शुद्ध स्वरूप को जो कलुषित करे उसे कषाय कहते हैं। कष् का दूसरा अर्थ है संसार, जिससे जन्म-मरण रूपी संसार की वृद्धि हो वह कषाय है।

कषाय चार प्रकार के कहे गये हैं – क्रोध, मान, माया और लोभ। प्रत्येक के अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्वलन ये चार-चार भेद करने से 16 भेद होते हैं। अनन्तानुबन्धी तीव्र कषाय है, अप्रत्याख्यानादि कषाय उत्तरोत्तर मन्द, मन्दतर और मन्दतम होते हैं। इन चारों कषायों पर विजय पाने के उद्देश्य से यह तप किया जाता है। इस तप के प्रभाव से सर्व कषायों का नाश होता है। यह तप साधु एवं श्रावक दोनों के करने योग्य आगाढ़ तप है। इस तप की चर्चा कई ग्रन्थों में की गयी है जो सामान्य रूप से इस प्रकार है –

विधि

एकभक्तं निर्विकृति, सजलानशने तथा।
कषाय जय एकस्मिन्कषायेऽन्येष्वपीदृशं।।

आचारदिनकर, पृ. 337

इस तप में पहले दिन एकासना, दूसरे दिन नीवि, तीसरे दिन आयंबिल और चौथे दिन उपवास - इस प्रकार एक कषाय को जीतने के लिए चार दिन की एक ओली होती है। शेष तीन कषायों को जीतने के लिए भी इसी प्रकार तीन ओली होती है। इस प्रकार 4×4 = 16 दिन में यह तप पूर्ण होता है।

पंचाशक प्रकरण, प्रवचनसारोद्धार, तिलकाचार्य सामाचारी प्रभृति ग्रन्थों में कषायजय की यही विधि बतलायी गयी है।

उद्यापन – इस तप के सम्पन्न होने पर जिनेश्वर प्रतिमा के आगे सर्व जाति के फल तथा षट् विकृतियों से युक्त पकवान सोलह-सोलह की संख्या में चढ़ाएँ। मुनियों को दान देवें तथा संघ-साधर्मी की यथाशक्ति भक्ति करें।

• प्रचलित परम्परा के अनुसार इन तप दिनों को सफल बनाने हेतु प्रतिदिन निम्न आराधनाएँ अवश्य करें –

क्रम	जप मन्त्र	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1.	अनन्तानुबंधी-क्रोध जयाय नमः	16	16	16	20
2.	अप्रत्याख्यानी-क्रोध जयाय नमः	16	16	16	20
3.	प्रत्याख्यानी-क्रोध जयाय नमः	16	16	16	20
4.	संज्वलन-क्रोध जयाय नमः	16	16	16	20
5.	अनन्तानुबंधी-मान जयाय नमः	16	16	16	20
6.	अप्रत्याख्यानी-मान जयाय नमः	16	16	16	20
7.	प्रत्याख्यानी-मान जयाय नमः	16	16	16	20
8.	संज्वलन-मान जयाय नमः	16	16	16	20
9.	अनन्तानुबन्धी-माया जयाय नमः	16	16	16	20
10.	अप्रत्याख्यानी-माया जयाय नमः	16	16	16	20
11.	प्रत्याख्यानी-माया जयाय नमः	16	16	16	20
12.	संज्वलन-माया जयाय नमः	16	16	16	20
13.	अनन्तानुबन्धी-लोभ जयाय नमः	16	16	16	20
14.	अप्रत्याख्यानी-लोभ जयाय नमः	16	16	16	20
15.	प्रत्याख्यानी-लोभ जयाय नमः	16	16	16	20
16.	संज्वलन-लोभ जयाय नमः	16	16	16	20

अथवा सोलह दिन 'सर्वकषाय जयाय नमः' का जाप करें अथवा चार-चार दिन निम्न अनुसार जाप करें–

जप मन्त्र	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1. क्रोधजय तपसे नमः	4	4	4	20
2. मानजय तपसे नमः	4	4	4	20
3. मायाजय तपसे नमः	4	4	4	20
4. लोभजय तपसे नमः	4	4	4	20

27. योगशुद्धि तप

जैन-परम्परा में मन, वचन, काया की शुभाशुभ प्रवृत्ति को योग कहा गया है। यह प्रवृत्ति कार्मण परमाणुओं को आकृष्ट कर उन्हें आत्मप्रदेशों के साथ

एकाकार करने में कारणभूत है, इसलिए इसे आस्रव कहा जाता है। आस्रव- पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ द्विविध रूप होता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए दोनों प्रकार के आस्रवों का निरोध होना आवश्यक है। योगशुद्धि तप के द्वारा आस्रव बाधित होते है और आस्रव निरोध से आत्मा अयोगी अवस्था (मोक्षपद) को प्राप्त करती है। यह तप मन, वचन और काया की योग शुद्धि के उद्देश्य से किया जाता है। इसे साधु एवं श्रावक दोनों के लिए अवश्यकरणीय बतलाया गया है।

इस तप-विधि का सामान्य स्वरूप इस प्रकार है–

विधि

योगे प्रत्येकमरसमाचाम्लं वाप्युपोषितं ।
एव नवदिनैर्योग, शुद्धिः संपूर्यते ततः ।।

आचारदिनकर, पृ. 337

इस तप में मनोयोग के लिए पहले दिन नीवि, दूसरे दिन आयंबिल एवं तीसरे दिन उपवास करें। इसी प्रकार वचन एवं काया के योग के लिए भी तीन-तीन दिन यह तप किया जाता है। इस प्रकार नौ दिन में यह तप पूर्ण होता है।

• पंचाशकप्रकरण, प्रवचनसारोद्धार आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी इस तप का विधिवत उल्लेख किया गया है। इससे यह तप प्रामाणिक एवं आगम सम्मत सिद्ध होता है।

उद्यापन – इस तप की महिमा वर्द्धन के लिए जब तप पूर्ण हो जाये तब जिनेश्वर परमात्मा के आगे छह विगयों से युक्त पदार्थ चढ़ाएं तथा साधुओं को भी वही दान दें। ज्ञानपूजा और श्रुतभक्ति अवश्य करें। जैन प्रबोधानुसार उद्यापन में अष्टमंगल की रचना भी अवश्य करें।

• जीतव्यवहार के अनुसार योगशुद्धि तप के दिनों में प्रतिदिन निम्न क्रियाएँ करनी चाहिए–

क्रम	जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
पहली ओली	मनोयोग तपसे मन:	3	3	3	20
दूसरी ओली	वचोयोग तपसे नम:	3	3	3	20
तीसरी ओली	काययोग तपसे नम:	3	3	3	20

28. धर्मचक्र तप

जैन-परम्परा में धर्मचक्र का अद्वितीय स्थान है। यह एक चिह्न विशेष है। ऐतिहासिक दृष्टि से धर्मचक्र तीर्थङ्कर परमात्मा का देवकृत अतिशय है। जब भगवान विचरण करते हैं तब आकाश में यह चक्र उनके साथ-साथ चलता है। ऐसे उत्तम धर्मचक्र की प्राप्ति के लिए यह तप किया जाता है।

षट्खण्ड की साधना करने वाला चक्रवर्ती पृथ्वी पर श्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि उसकी ऋद्धि-सिद्धि, वैभव-विलास, सत्ता-ऐश्वर्य की तुलना कोई नहीं कर सकता। यह अपार सम्पदा वह अपने चक्र की सहायता से हासिल करता है, परन्तु शास्त्रकारों का कथन है कि धर्मचक्र के समक्ष चक्रवर्ती का चक्र फीका पड़ जाता है, क्योंकि धर्मचक्र अक्षय सुख को देने वाला है। आचारदिनकर के मत से इस तप के द्वारा अतिचार रहित बोधि की प्राप्ति होती है। यह तप साधु एवं श्रावक दोनों के लिए करने योग्य है।

इस तप की चार विधियाँ निम्न हैं–

प्रथम विधि

कीरंति धम्मचक्के, तवंमि आयंबिलाणि पणवीसं।
उज्जमणे जिणपुरओ, दायव्वं रूप्पमयचक्कं।।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 29

प्रथम रीति के अनुसार धर्मचक्र तप में निरन्तर पच्चीस आयंबिल किये जाते हैं तथा इस तप उद्यापन में जिन प्रतिमा के आगे रजतमय धर्मचक्र बनाकर रखना चाहिए।

दूसरी रीति के अनुसार

दो चेव तिरत्ताइं, सत्ततीसं तहा चउत्थाइं।
तं धम्मचक्कवालं, जिणगुरुपूया समत्तीए।।

विधिमार्गप्रपा., पृ. 29

इस तप में प्रथम एक अट्ठम (तेला) करके पारणा, फिर एकान्तर सैंतीस उपवास फिर पुनः एक अट्ठम (तेला) किया जाता है। इस प्रकार 43 उपवास और 38 पारणा कुल 81 दिनों में यह तप पूर्ण होता है। इस धर्मचक्र तप के पूर्ण होने पर जिनेश्वर प्रतिमा के आगे रजतमय चक्र चढ़ाना चाहिए और गुरु की

पूजा करनी चाहिए।

तीसरी विधि

तीसरी रीति के अनुसार इस तप में प्रथम एक अट्ठम (तेला) करके पारणा, फिर एकान्तर तीस उपवास, फिर पुनः एक अट्ठम (तेला) करके पारणा, फिर एकान्तर से तीस उपवास और अन्त में एक अट्ठम करके पारणा करते हैं।

इस तरह प्रस्तुत रीति में 69 उपवास और 63 पारणा ऐसे कुल 132 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

चौथी रीति के अनुसार

विधाय प्रथमं षष्ठं, षष्ठिमेकान्तरास्तथा।
उपवासान् धर्मचक्रे, कुर्याद्वहल्यर्क वासरैः ।।

आचारदिनकर, पृ. 330

इस तप के प्रारम्भ में बेला (निरन्तर दो उपवास) करके पारणा किया जाता है। उसके बाद साठ उपवास एकान्तर पारणे से करते हैं। इस प्रकार यह तप 123 दिनों में पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप की गरिमा बढ़ाने हेतु जिनप्रतिमा के सम्मुख रत्नजड़ित स्वर्ण अथवा चाँदी का धर्मचक्र बनवाकर रखें। उसके बाद संघपूजा करें।

• इस तप की विशिष्ट आराधना के लिए इन दिनों अरिहन्त पद का स्मरण करना चाहिए।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री धर्मचक्रिणे अरिहंताय नमः	12	12	12	20

29. लघुअष्टाह्निका तपद्वय

यह तप आठ-आठ दिनों का होने से अष्टाह्निका तप के नाम से कहा जाता है। पूर्वाचार्यों के अभिमतानुसार इस तप की आराधना से दुर्गति का अभाव और सद्गति का सर्जन होता है।

यह तप नवपद ओलिजी के दिनों में किया जाता है उन दिनों मनुष्य तो क्या देवी-देवता भी परमात्म भक्ति में जुटे रहते हैं। साधना-सिद्धि के लिए भी

ये दिन विशेष माने गये हैं अतः इन दिनों स्वाभाविक रूप से धर्म का वातावरण बना रहता है और धर्मफल से आत्मा उच्च गति को प्राप्त करती है। इसीलिए इस तप को दुर्गति का विनाशक कहा गया है। यह तप साधुओं एवं श्रावकों दोनों के लिए करने योग्य है। इसकी तप-विधि निम्न है –

विधि

अष्टमीभ्यां समारभ्य, शुक्लाश्वयुतचैत्रयोः ।
राकां यावत्सप्तवर्षं, स्वशक्त्याष्टाह्निकं तपः ।।

आचारदिनकर, पृ. 338

यह तप आश्विन और चैत्र मास की शुक्ला अष्टमी से प्रारम्भ कर पूर्णिमा तक किया जाता है। इसमें अपनी शक्ति के अनुसार एकाशना, नीवि, आयंबिल या उपवास करना चाहिए। इस प्रकार सात वर्ष तक करने से यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के दिनों में बृहत्स्नात्र-विधि से जिनेश्वर प्रभु की नित्य पूजा करनी चाहिए तथा तप के पूर्ण होने पर छप्पन-छप्पन लड्डू, नैवेद्य, फल आदि चढ़ाकर विशिष्ट पूजा करनी चाहिए। मुनियों को दान देना चाहिए एवं यथाशक्ति संघपूजा करनी चाहिए।

• इन दोनों तपों की आवश्यक आराधना जैसे-साथिया, खमासमण, माला आदि अग्रांकित अष्टकर्मसूदन-तप के अनुसार करें।

30. अष्टकर्मसूदन तप

प्रत्येक संसारी आत्मा ज्ञानावरणी आदि अष्ट कर्मों से आबद्ध है। इन कर्मों के प्रभाव से ही यह जीव जन्म-मरण रूप संसार अटवी में परिभ्रमण करता है और नानाविध कष्टों को भोगता है। उन दुष्कर्मों को निरस्त करने के लिए ही इस तप का विधान किया गया है। यदि इस तप का यथाविधि परिपालन किया जाये तो इससे अष्ट कर्मों का क्षय होता है। सूदन का अर्थ है नाश करना। स्वरूपतः यह तप निकाचित कर्मों को मन्द एवं क्षीण करने के उद्देश्य से किया जाता है। यह साधु एवं गृहस्थ दोनों के लिए अवश्यकरणीय तप है।

विधि

प्रत्याख्यानान्यष्टौ प्रत्येकं, कर्मणां विघाताय ।
इति कर्मसूदनतपः, पूर्णं स्याद्युगरसमिताह्नैः ।।

उपवासमेकभक्तं, तथैकसिक्थैकसंस्थिति-दत्तीः ।
निर्विकृतिमाचाम्लं, कवलाष्टकं च क्रमात्कुर्यात् ।।

आचारदिनकर, पृ. 338

इस तप में ज्ञानावरणी कर्म के क्षय निमित्त प्रथम दिन उपवास, दूसरे दिन एकासना, तीसरे दिन एक सिक्थ (एक दाना) से चौविहार आयंबिल, चौथे दिन एक स्थान पर चौविहार एकासना, पांचवें दिन एक दत्ति ठाम चौविहार (एक बार पात्र में आ जाये वही खाना), छठे दिन लूखी नीवि, सातवें दिन आयम्बिल एवं आठवें दिन आठ कवल का एकासन करें। इसी प्रकार शेष सात कर्मों की निर्जरा के लिए भी 8-8 दिन की ओलियाँ करें। इस तरह यह तप चौसठ दिन में पूरा होता है।

यह तप आश्विन एवं चैत्र शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा तक आठ दिनों में किया जाता है। इस तरह चार वर्षों में आठ ओली = 64 दिनों में पूर्ण होती हैं।

उद्यापन– इस तप के बहुमानार्थ एवं आठ कर्मों के निवारणार्थ आठ शाखाओं, आठ पत्तों वाला चांदी का वृक्ष तथा आठ कर्म रूपी वृक्ष को छेदने के लिए सोने की कुल्हाड़ी जिनबिम्ब या ज्ञान के आगे रखें। बृहत्स्नात्र-विधि से परमात्मा की पूजा करें। चौसठ मोदक आदि नैवेद्य, फल-फूल आदि चढ़ायें तथा संघ पूजा करें।

• परम्परानुसार अष्टकर्मसूदन तप में प्रतिदिन निम्न क्रियाएँ करनी चाहिए–

क्रम	जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1.	श्री अनन्तज्ञानगुण धारकाय नमः	5	5	5	20
2.	श्री अनन्तदर्शनगुण धारकाय नमः	9	9	9	20
3.	श्री अव्याबाधगुण धारकाय नमः	2	2	2	20
4.	श्री क्षायिकसम्यक्त्वगुण धारकाय नमः	28	28	28	20
5.	श्री अक्षयस्थितिगुण धारकाय नमः	4	4	4	20
6.	श्री अमूर्त्तगुण धारकाय नमः	103	103	103	20
7.	श्री अगुरुलघुगुण धारकाय नमः	2	2	2	20
8.	श्री अनन्तवीर्यगुण धारकाय नमः	5	5	5	20

31. उपासक प्रतिमा तप

प्रतिज्ञा का अर्थ है - प्रतिज्ञा, व्रत या तप विशेष। आगमों में गृहस्थ श्रावक के लिए 'उपासक' शब्द का प्रयोग है। अत: गृहस्थ साधक द्वारा निश्चित काल के लिए दृढ़ संकल्प पूर्वक धारण किया गया विशिष्ट आचरण, प्रतिमा तप कहा जाता है।

श्रावक प्रतिमाएँ गृही-जीवन में की जाने वाली साधना की विकासोन्मुख भूमिकाएँ (श्रेणियाँ) हैं। इन पर आरूढ़ हुआ साधक स्वस्वरूप को प्राप्त कर लेता है अत: यह तप नैतिक जीवन के विकास एवं चरम आदर्श की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

ये प्रतिमाएँ श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं में समान रूप से मान्य है। इसके नाम एवं क्रम में निम्न अन्तर दृष्टत्य है –

श्वेताम्बर मान्य उपासक भूमिकाओं के नाम क्रमश: इस प्रकार हैं – 1. दर्शन 2. व्रत 3. सामायिक 4. पौषध 5. नियम 6. ब्रह्मचर्य 7. सचित्त त्याग 8. आरम्भ त्याग 9. प्रेष्य परित्याग 10. उद्दिष्टभक्त त्याग और 11. श्रमणभूत।

(उपासकदशा, संपा. मधुकरमुनि, 1/70-71; समवायांग, संपा. मधुकरमुनि, 11/1)

दिगम्बर मान्य क्रम एवं नाम इस प्रकार हैं – 1. दर्शन 2. व्रत 3. सामायिक 4. पौषध 5. सचित्त त्याग 6. रात्रिभोजन एवं दिवा मैथुन विरति 7. ब्रह्मचर्य 8. आरम्भत्याग 9. परिग्रहत्याग 10. अनुमति त्याग और 11. उद्दिष्ट त्याग।

(चारित्रपाहुड– 22, रत्नकरण्डश्रावकाचार– 137-147, वसुनन्दिश्रावकाचार 4)

दोनों परम्पराओं में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर यह भी है कि सामान्यतया श्वेताम्बर-परम्परा में इन प्रतिमाओं के पालन के पश्चात पुन: पूर्व अवस्था में लौटा जा सकता है, लेकिन दिगम्बर-परम्परा में प्रतिज्ञा यावज्जीवन के लिए होती है और साधक पुन: पूर्व अवस्था की ओर नहीं लौट सकता।

यहाँ श्वेताम्बर-परम्परा सम्बन्धी तप-विधियों का उल्लेख किया जा रहा है, अत: उपासक प्रतिमा की चर्चा उसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए करेंगे–

1. दर्शन-प्रतिमा – इस संसार में वस्तु, व्यक्ति या पदार्थ जैसा है उसे

वैसा ही मानना, स्वीकार करना अथवा अध्यात्ममार्ग की यथार्थता के सम्बन्ध में दृढ़ निष्ठा एवं श्रद्धा होना दर्शन प्रतिमा है।

दर्शन-प्रतिमा का आराधक एक महीना सम्यक्त्व का निरतिचार पालन करता है। वह अपनी आस्था में इतना दृढ़ होता है कि विभिन्न मत-मतान्तरों को जानता हुआ भी उधर आकृष्ट नहीं होता। वह अपने अध्यवसायों को अत्यन्त विशुद्ध बनाये रखता है।

2. **व्रत-प्रतिमा** – व्रत-प्रतिमा का आराधक दो महीने तक पाँच अणुव्रतों एवं तीन गुणव्रतों का निरतिचार पालन करता है तथा चार शिक्षाव्रतों को भी स्वीकार करता है; किन्तु उनमें सामायिक और देशावगासिक व्रत का यथाविधि सम्यक् पालन नहीं कर पाता। वह अनुकम्पा आदि गुणों से युक्त होता है।

3. **सामायिक-प्रतिमा** – सामायिक-प्रतिमा धारण करने वाला साधक तीन महीने तक प्रतिदिन नियम से तीन बार सामायिक करता है। इस प्रतिमा में वह सामायिक एवं देशावकासिक व्रत का सम्यक् रूप से पालन करता है परन्तु अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा आदि विशिष्ट दिनों में पौषधोपवास की आराधना भली-भाँति नहीं कर पाता।

4. **पौषध-प्रतिमा** – पौषध-प्रतिमा स्वीकार करने वाला उपासक अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों पर पौषध-व्रत का पूर्णरूपेण पालन करता है। इस प्रतिमा की आराधना का समय चार मास है।

5. **नियम-प्रतिमा** – इसे कायोत्सर्ग प्रतिमा अथवा दिवा मैथुन विरत-प्रतिमा भी कहा जाता है। इसमें पूर्वोक्त प्रतिमाओं का निर्दोष पालन करते हुए पाँच विशेष नियम लिये जाते हैं – 1. स्नान नहीं करना 2. रात्रि-भोजन नहीं करना 3. धोती की एक लांग नहीं लगाना 4. दिन में ब्रह्मचर्य का पालन करना तथा रात्रि में मैथुन की मर्यादा निश्चित करना 5. अष्टमी, चतुर्दशी आदि किसी पूर्व दिन में रात्रि-पर्यन्त देहासक्ति त्याग कर कायोत्सर्ग करना।

इस प्रतिमा में कामासक्ति, भोगासक्ति अथवा देहासक्ति कम करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रतिमा की आराधना का समय पाँच मास है।

6. **ब्रह्मचर्य-प्रतिमा** – इस प्रतिमा को अंगीकार करने वाला गृहस्थ छह माह तक ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण रूपेण पालन करता है तथा ब्रह्मचर्य की रक्षा के निमित्त कुछ नियमों का पालन करता है जो इस प्रकार है– 1. स्त्री के साथ

एकान्त में नहीं बैठना 2. स्त्री वर्ग से अति परिचय नहीं रखना 3. शृंगार नहीं करना 4. स्त्री-जाति के रूप-सौन्दर्य सम्बन्धी तथा कामवर्धक वार्तालाप नहीं करना 5. स्त्रियों के साथ एक आसन पर नहीं बैठना आदि।

7. सचित्त आहारवर्जन-प्रतिमा – इस प्रतिमा को स्वीकार करने वाला साधक पूर्वोक्त प्रतिमाओं का यथावत पालन करते हुए सभी प्रकार की सचित्त वस्तुओं के आहार का त्याग कर देता है और उष्ण जल एवं अचित्त आहार का ही सेवन करता है।

इस प्रतिमा की आराधना का उत्कृष्ट काल सात मास का है।

8. आरम्भ त्याग-प्रतिमा – इस प्रतिमा में उपासक पूर्वोक्त सभी नियमों का पालन करते हुए स्वयं व्यवसाय आदि कार्यों में भाग नहीं लेता है और न स्वयं कोई आरम्भ ही करता है फिर भी अपने पुत्रादि को यथावसर व्यावसायिक एवं पारिवारिक कार्यों में मार्गदर्शन देता रहता है। दूसरे, वह व्यवसाय आदि कार्यों का संचालन तो पुत्रों को सौंप देता है लेकिन सम्पत्ति पर से स्वामित्व अधिकार का त्याग नहीं करता, क्योंकि कदाच् पुत्र अयोग्य सिद्ध हुआ तो वह सम्पत्ति किसी योग्य अधिकारी को दी जा सकती है। इस प्रतिमा आराधना की उत्कृष्ट अवधि आठ मास है।

9. भृतक प्रेष्यारम्भ वर्जन-प्रतिमा – इस प्रतिमा में उपासक पूर्ववर्ती प्रतिमाओं के प्रति सतर्क रहता हुआ स्वयं आरम्भ करने एवं दूसरे से आरम्भ करवाने का परित्याग कर देता है, लेकिन आरम्भजन्य अनुमति देने की छूट रखता है। इस प्रतिमा आराधना की अवधि नौ महीना है।

10. उद्दिष्टभक्तवर्जन-प्रतिमा – इस प्रतिमा की भूमिका को स्वीकार करने वाला साधक पूर्वोक्त नियमों का अनुपालन करता हुआ उद्दिष्ट अर्थात स्वयं के लिए तैयार किये गये भोजन का भी परित्याग कर देता है। वह अपने-आपको लौकिक कार्यों से प्राय: हटा लेता है। उस सन्दर्भ में वह कोई आदेश या परामर्श नहीं देता। किसी पारिवारिक बात के पूछे जाने पर वह दो विकल्पों में उत्तर दे सकता है कि मैं इसे जानता हूँ या मैं इसे नहीं जानता हूँ। इस प्रतिमा पालन का समय दस माह है।

11. श्रमणभूत-प्रतिमा – इस प्रतिमा की अवस्था तक पहुँचने वाला उपासक अपनी समस्त चर्या लगभग साधु जैसी बना लेता है। उसकी सभी क्रियाएँ एक श्रमण की तरह यत्ना और जागरूकता पूर्वक होती है। उसकी वेश-भूषा भी प्राय: वैसी ही होती है और वैसे ही पात्र, उपकरण आदि रखता है। मस्तक के बालों को उस्तरे से मुंडवाता है यदि शक्ति हो तो लुंचन भी कर सकता है। वह साधु की तरह भिक्षाचर्या से ही जीवन निर्वाह करता है। इतना अन्तर है कि साधु हर किसी के यहाँ भिक्षार्थ जाता है जबकि प्रतिमोपासक अपने सम्बन्धियों के घरों में ही जाता है।

इसे श्रमणभूत इसलिए कहा गया है कि यद्यपि वह उपासक श्रमण भूमिका में तो नहीं होता पर प्राय: श्रमण-सदृश होता है। इस प्रतिमा की आराधना ग्यारह महीना की जाती है।

यहाँ प्रतिमा तप के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि पूर्वोक्त ग्यारह प्रतिमाएँ क्रमश: एक के बाद एक धारण की जाती हैं। एक प्रतिमा और दूसरी प्रतिमा के बीच समय का अन्तराल रह सकता है, यानि गृहीत पहली प्रतिमा की अवधि पूर्ण होने के पश्चात दूसरी प्रतिमा अनन्तर से बिना रुके भी धारण कर सकते हैं और कुछ अवधि के बाद भी अपना सकते हैं। लेकिन बाद-बाद की प्रतिमाओं का परिपालन करते समय उससे पूर्व-पूर्व की सभी प्रतिमा नियमों का पालन करना आवश्यक है जैसे– पांचवीं प्रतिमा का पालन करने वाले उपासक को उससे पूर्व की चार प्रतिमाओं का पालन करना जरूरी है। इस तरह ग्यारहवीं प्रतिमा को स्वीकार करने वाला साधक ग्यारह की ग्यारह प्रतिमाओं के नियमों का अनुपालन करता है।

इन प्रतिमाओं में उपासक अनुक्रमश: त्याग व तप के क्षेत्र में उत्तरोत्तर वृद्धि करता है साथ ही दूसरे प्रतिमा धर्म प्रतिज्ञा या अभिग्रह विशेष होता है और प्रतिज्ञाएँ व्रत या तप से ही सम्बन्धित होती हैं इत्यादि कारणों से श्रावक प्रतिमाओं को तप साधना की कोटि में रखा गया है।

ग्यारह प्रतिमा का यन्त्र न्यास इस प्रकार है –

क्रम	नाम	जघन्यकाल	उत्कृष्टकाल
1.	दर्शन प्रतिमा	एक दिन से 29 दिन	एक माह
2.	व्रत प्रतिमा	1 दिन से 59 दिन	दो माह
3.	सामायिक प्रतिमा	1 दिन से 89 दिन	तीन माह
4.	पौषध प्रतिमा	1 दिन से 119 दिन	चार माह
5.	नियम प्रतिमा	1 दिन से 149 दिन	पाँच माह
6.	ब्रह्मचर्य प्रतिमा	1 दिन से 179 दिन	छह माह
7.	सचित्त आहारवर्जन प्रतिमा	1 दिन से 209 दिन	सात माह
8.	आरम्भत्याग प्रतिमा	1 दिन से 239 दिन	आठ माह
9.	भृतक प्रेष्यारम्भवर्जन प्रतिमा	1 दिन से 269 दिन	नौ माह
10.	उद्दिष्टभक्त त्याग प्रतिमा	1 दिन से 299 दिन	दस माह
11.	श्रमणभूत प्रतिमा	1 दिन से 329 दिन	ग्यारह माह

गीतार्थ मुनियों द्वारा प्ररूपित तप

1. कल्याणक तप

सामान्यतया जिस क्रिया या आराधना से आत्मा का कल्याण होता हो, उसे कल्याणक कहते हैं। दूसरे अर्थ के अनुसार कल्याण करने वाला कल्याणक कहलाता है। यहाँ कल्याणक तप का अभिप्राय तीर्थङ्कर पुरुषों से है। तीर्थङ्कर परमात्मा स्वयं का तो कल्याण करते ही हैं, किन्तु समस्त प्राणियों को भी कल्याण के मार्ग पर आरूढ़ करते हैं। यूं तो तीर्थङ्करों का प्रत्येक कर्म कल्याणकारक होता है फिर भी पूर्वाचार्यों ने उनके च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण – इन पाँच क्रियाओं को कल्याणक के रूप में स्वीकार किया है।

इसका तात्पर्य यह है कि तीर्थङ्कर आत्माओं का गर्भ से अवतरित होना, भगवान के प्रतिरूप में जन्म लेना, संसार से विराग की ओर प्रयाण करना, पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति होना एवं जन्म-मरण की परम्परा से मुक्त हो जाना। ये सभी क्रियाएँ सर्व जीवों के लिए हितकारी होती हैं।

इस तरह कल्याणक पाँच होते हैं – 1. च्यवन 2. जन्म 3. दीक्षा 4. केवलज्ञान और 5. निर्वाण।

वर्तमान अवसर्पिणी काल खण्ड के भरत क्षेत्र (जिस भूलोक पर हम निवास कर रहे हैं) में चौबीस तीर्थङ्कर हुए हैं। प्रत्येक तीर्थङ्कर के पाँच कल्याणक होने से चौबीस तीर्थङ्करों के कुल 120 कल्याणक होते हैं। भगवान महावीर के गर्भापहरण का एक कल्याणक गिनने पर 121 कल्याणक होते हैं।

आचार्य जिनप्रभसूरि ने विधिमार्गप्रपा (पृ. 25) में 121 कल्याणक का उल्लेख किया है, परन्तु खरतरगच्छाचार्य श्री वर्धमानसूरिकृत आचारदिनकर में 120 कल्याणकों की आराधना बतायी गयी है। इस तप में 'गर्भ अपहरण' को अलग से नहीं लिया गया है।

कौन से महीने में कितने कल्याणक ?

सग[7] तेरस[13] दस[10] चोद्दस,[14] पनरस[15] तेरस[13] य सत्तरस[17] दस[10] छ[6] ।
नव[9] चउ[4] ति[3] कत्तियाइसु, जिण कल्लाणाइं जह संखं ।।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 25

कार्तिक मास में सात, मृगशिर में तेरह, पौष में दस, माघ में चौदह, फाल्गुन में पन्द्रह, चैत्र में तेरह, वैशाख में सत्रह, ज्येष्ठ में दस, आषाढ़ में छः, श्रावण में नौ, भाद्रपद में चार और आश्विन में तीन इस प्रकार बारह मास में एक सौ इक्कीस कल्याणक होते हैं।

कितने तप के बराबर कितने कल्याणक ?

आचार्य वर्धमानसूरि के अनुसार अमुक संख्या में किये गये उपवास आदि के द्वारा अमुक कल्याणक तप की परिपूर्ति हो जाती है। उसका कोष्ठक इस प्रकार है–

एग उववासो दो अंबिलाइं, निविआइं तेरस हवंति ।
एगासणाइं चुलसी, कल्याण तवस्स परिमाणं ।।

आचारदिनकर, पृ. 340

1 उपवास	=	4 कल्याणक
2 आयम्बिल	=	6 कल्याणक
13 नीवि	=	26 कल्याणक
84 एकासना	=	84 कल्याणक

कुल 120 कल्याणकों का यह तप परिमाण है।

आचारदिनकर (पृ. 339) के अनुसार जिस दिन तीर्थङ्कर प्रभु का गर्भावतार

(च्यवन) जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष हुआ हो उस दिन जो तप किया जाता है उसे कल्याणक तप कहते हैं।

किस कल्याणक में कौन सा तप करना चाहिए, इस सम्बन्ध में तीन प्रकारान्तर हैं।

आचारदिनकर, पृ. 340

आचार्य वर्धमानसूरि के मतानुसार त्रिविध रीतियाँ इस प्रकार हैं –

प्रथम रीति – प्रथम रीति के अनुसार जिस दिन एक कल्याणक हो उस दिन एकासन करें, दो कल्याणक हों उस दिन नीवि करें, तीन कल्याणक हों उस दिन आयम्बिल करें, चार कल्याणक हों उस दिन उपवास करें और पाँच कल्याणक हों तो पहले दिन उपवास तथा दूसरे दिन एकासना करें।

इस प्रकार प्रत्येक तीर्थङ्कर के पाँच कल्याणक होने से चौबीस तीर्थङ्करों के 120 कल्याणकों की आराधना यदि एकाशन से करनी हो तो मिगसर शुक्ला दशमी को आयम्बिल करे और मिगसर शुक्ला एकादशी को उपवास कर सात कल्याणक तप की पूर्ति कर सकते हैं। मिगसर शुक्ला दशमी को दो तथा मिगसर शुक्ला एकादशी को पाँच कल्याणक हुए हैं। दोनों दिन के सात कल्याणक होते हैं।

दूसरी रीति – इसके अनुसार तीर्थङ्करों के च्यवन एवं जन्म-कल्याणक के दिन एक-एक उपवास करें तथा दीक्षा, केवलज्ञान एवं निर्वाण कल्याणक के दिन जिस परमात्मा द्वारा जो तप किया गया है, वही तप एकान्तर पूर्वक करें।

तीसरी रीति – तीसरे विकल्प के अनुसार चौबीस तीर्थङ्करों के प्रत्येक कल्याणकों में उपवास आदि तप करें। उसमें मिगसर शुक्ला दशमी व एकादशी को बेला करके यह तप शुरू करें। फिर प्रत्येक कल्याणक के दिन उपवास करना चाहिए। एक दिन में दो या अधिक कल्याणक आते हों तो एक उपवास से एक कल्याणक की आराधना होगी, शेष कल्याणकों की आराधना अगले-अगले वर्ष करनी चाहिए।

वर्तमान में कल्याणक तप की यही परिपाटी प्रचलित है। आजकल कुछ आराधक एकासन से भी कल्याणक तप करते हैं। इस प्रकार प्रतिवर्ष करते हुए सात वर्ष में यह तप पूरा होता है। कल्याणक-तप के दिनों का विवेचन आगम-

टीकाओं में भी किया गया है।

चौबीस तीर्थङ्करों के किस महीने में कौन-कौन से कल्याणक आते हैं और उन दिनों में सामान्य रूप से एवं प्रकारान्तर से कौन सा तप करना चाहिए? उसका यन्त्र न्यास इस प्रकार है–

तप	तिथि	किस तीर्थंकर का कौन सा कल्याणक	प्रकारान्तर से तप
		कार्तिक वदि	
ए.	5	संभवनाथ भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप. 2
नी.	12	नेमिनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप. 1
	12	पद्मप्रभु भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 1
ए.	13	पद्मप्रभु भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप. 2
ए.	15	वीर परमात्मा का मोक्ष-कल्याणक	उप. 2
		कार्तिक सुदी	
ए.	3	सुविधिनाथ भगवान का ज्ञान-कल्याणक	उप. 2
ए.	12	अरनाथ भगवान का ज्ञान-कल्याणक	उप. 2
		मार्गशीर्ष वदि	
ए.	5	सुविधिनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 1
ए.	6	सुविधिनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप. 2
ए.	10	महावीर प्रभु का दीक्षा-कल्याणक	उप. 2
ए.	11	पद्मप्रभु भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप. 30
		मार्गशीर्ष सुदी	
नी.	10	अरनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 1
	10	अरनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप. 30

तप	तिथि	किस तीर्थंकर का कौन सा कल्याणक	प्रकारान्तर से तप
उ.	11	अरनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप. 2
	11	नमिनाथ भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप. 2
	11	मल्लिनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 1
	11	मल्लिनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप. 3
ए.	11	मल्लिनाथ भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप. 3
ए.	14	संभवनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 1
ए.	15	संभवनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप. 2
		पौष वदि	
ए.	10	पारसनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 1
ए.	11	पारसनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप. 3
ए.	12	चन्द्रप्रभु भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 1
ए.	13	चन्द्रप्रभु भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप. 2
ए.	14	शीतलनाथ भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप. 2
		पौष सुदी	
ए.	6	विमलनाथ भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप.2
ए.	9	शान्तिनाथ भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप.2
ए.	11	अजितनाथ भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप.2
ए.	14	अभिनन्दन भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप.2
ए.	15	धर्मनाथ भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप.2

तप	तिथि	किस तीर्थंकर का कौन सा कल्याणक	प्रकारान्तर से तप
		माघ वदि	
ए.	6	पद्मप्रभु भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप.1
नी.	12	शीतलनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप.1
	12	शीतलनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप.2
ए.	13	ऋषभदेव भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप.6
ए.	15	श्रेयांसनाथ भगवान का केवल ज्ञान-कल्याणक	उप.2
		माघ सुदी	
नी.	2	वासुपूज्य भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप.1
	2	अभिनन्दनस्वामी का जन्म-कल्याणक	उप.1
नी.	3	विमलनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप.1
	3	धर्मनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 1
ए.	4	विमलनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप.2
ए.	8	अजितनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप.1
ए.	9	अजितनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप.2
ए.	12	अभिनन्दन भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप.2
ए.	13	धर्मनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप.2
		फाल्गुन वदि	
ए.	6	सुपार्श्वनाथ भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप.2
नी.	7	सुपार्श्वनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप.30
	7	चन्द्रप्रभु भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप.2

तप	तिथि	किस तीर्थंकर का कौन सा कल्याणक	प्रकारान्तर से तप
ए.	9	सुविधिनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप.1
ए.	11	ऋषभदेव भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप.3
नी.	12	श्रेयांसनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप.1
	12	मुनिसुव्रतस्वामी का केवलज्ञान-कल्याणक	उप.2
ए.	13	श्रेयांसनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप.2
ए.	14	वासुपूज्य भगवान का जन्म-कल्याणक	उप.1
ए.	15	वासुपूज्य भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप.1
		फाल्गुन सुदी	
ए.	2	अरनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप.1
ए.	4	मल्लिनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप.1
ए.	8	संभवनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप.1
नी.	12	मल्लिनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप.30
	12	मुनिसुव्रतस्वामी का दीक्षा-कल्याणक	उप.2
		चैत्र वदि	
नी.	4	पारसनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप.1
	4	पारसनाथ भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप.3
ए.	5	चन्द्रप्रभु भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप.1
नी.	8	ऋषभदेव भगवान का जन्म-कल्याणक	उप.1
	8	ऋषभदेव भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप.2

तप	तिथि	किस तीर्थंकर का कौन सा कल्याणक	प्रकारान्तर से तप
		चैत्र सुदी	
ए.	3	कुन्थुनाथ भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप. 2
आ.	5	संभवनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप. 30
	5	अनन्तनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप. 30
	5	अजितनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप. 30
ए.	9	सुमतिनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप. 30
ए.	11	सुमतिनाथ भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप. 2
ए.	13	महावीरस्वामी का जन्म-कल्याणक	उप. 1
ए.	15	पद्मप्रभु भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप. 2
		वैशाख वदि	
ए.	1	कुन्थुनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप. 30
ए.	2	शीतलनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप. 30
ए.	5	कुन्थुनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप. 2
ए.	6	शीतलनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप. 1
ए.	10	नमिनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 30
ए.	13	अनन्तनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 1
आ.	14	अनन्तनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप. 2
	14	अनन्तनाथ भगवान का ज्ञान-कल्याणक	उप. 2
	14	कुन्थुनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 1

तप	तिथि	किस तीर्थंकर का कौन सा कल्याणक	प्रकारान्तर से तप
		वैशाख सुदी	
ए.	4	अभिनन्दनस्वामी का च्यवन-कल्याणक	उप. 1
ए.	7	धर्मनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप. 1
नी.	8	अभिनन्दनस्वामी का मोक्ष-कल्याणक	उप. 30
	8	सुमतिनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 1
ए.	9	सुमतिनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप. 1
ए.	10	महावीर भगवान का केवलज्ञान-कल्याणक	उप. 2
ए.	12	विमलनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप. 1
ए.	13	अजितनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप. 1
		ज्येष्ठ वदि	
ए.	6	श्रेयांसनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप. 1
ए.	9	मुनिसुव्रतस्वामी का मोक्ष-कल्याणक	उप. 30
नी.	13	शान्तिनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 1
ए.	8	मुनिसुव्रतस्वामी का जन्म कल्याणक	उप. 1
	13	शान्तिनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप.30
ए.	14	शान्तिनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप. 2
		ज्येष्ठ सुदी	
ए.	5	धर्मनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप.30
ए.	9	वासुपूज्य भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप. 1
ए.	12	सुपार्श्वनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 1

तप	तिथि	किस तीर्थंकर का कौन सा कल्याणक	प्रकारान्तर से तप
ए.	13	सुपार्श्वनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप. 2
		आषाढ़ वदि	
ए.	4	ऋषभदेव भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप. 1
ए.	7	विमलनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप.30
ए.	9	नमिनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप. 2
		आषाढ़ सुदी	
ए.	6	वीर परमात्मा का च्यवन-कल्याणक	उप. 1
ए.	8	नेमिनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप.30
ए.	14	वासुपूज्य भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप.30
		श्रावण वदि	
ए.	3	श्रेयांसनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप.30
ए.	7	अनन्तनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप. 1
ए.	8	नमिनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 1
ए.	9	कुन्थुनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप. 1
		श्रावण सुदी	
ए.	2	सुमतिनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप. 1
ए.	5	नेमिनाथ भगवान का जन्म-कल्याणक	उप. 1
ए.	6	नेमिनाथ भगवान का दीक्षा-कल्याणक	उप. 2
ए.	8	पारसनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप.30
ए.	15	मुनिसुव्रतस्वामी का च्यवन-कल्याणक	उप. 1

तप	तिथि	किस तीर्थंकर का कौन सा कल्याणक	प्रकारान्तर से तप
		भाद्रपद वदि	
नी.	7	शान्तिनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप. 1
ए.	8	सुपार्श्वनाथ भगवान का च्यवन-कल्याणक	उप. 1
	7	चन्द्रप्रभु भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप. 1
		भाद्रपद सुदी	
ए.	9	सुविधिनाथ भगवान का मोक्ष-कल्याणक	उप.30
		आश्विन वदि	
ए.	13	महावीर स्वामी का गर्भापहार कल्याणक	उप. 3

इसे कल्याणक-तप कहने के पीछे दूसरा हेतु यह है कि जिस समय तीर्थङ्कर परमात्मा का जन्म, च्यवन, केवलज्ञान आदि होता है उस वक्त नारकी जीवों को भी मुहूर्त्त मात्र के लिए सुख की अनुभूति होती है। इस तरह तीनों विश्व का कल्याण करने वाला होने से इसे कल्याणक तप कहा गया है।

इस तप के प्रभाव से तीर्थङ्कर नाम कर्म का बंध होता है, जिसके परिणाम स्वरूप भवान्तर में तीर्थङ्कर पद की प्राप्ति होती है। यह तप साधु एवं श्रावक दोनों के लिए करणीय बताया गया है।

उद्यापन – इस तप के उद्यापन में जिनप्रतिमा के आगे चौबीस की संख्या में स्नात्र पट, स्नात्र कलश, चन्दन पात्र, धूपदहन पात्र, वस्त्र, नैवेद्य पात्र, कुम्पिका आदि पूजा के उपकरण रखें तथा बृहत्स्नात्र-विधि से परमात्मा की स्नात्र पूजा करें।

परमात्मा की प्रतिमा के समक्ष चौबीस जाति के विभिन्न फल, विभिन्न प्रकार के पकवान, पुष्प आदि चौबीस-चौबीस की संख्या में चढ़ाएँ। स्वर्णमय रत्नजटित चौबीस तिलक भी चढ़ाएं। साधुओं को अन्न, वस्त्र एवं पात्र दान दें। संघ की भक्ति करें।

जहाँ भगवान की कल्याणक-भूमि हो वहाँ महोत्सव पूर्वक यात्रा करने जायें। पंच-कल्याणक पूजा पढ़ायें। संघ-वात्सल्य, साधर्मी-भक्ति करें।

• प्रचलित विधि की मान्यतानुसार कल्याणक तप के दिनों में निम्न आराधना अवश्य करें।

जाप – जिस तीर्थंकर भगवान का जो कल्याणक हो उस तीर्थंकर का नाम जप पद में जोड़कर निम्नानुसार 20 माला गिनें–

1. च्यवन कल्याणक हो तो 'ॐ ह्रीँ श्रीं....परमेष्ठीने नमः'
2. जन्म कल्याणक हो तो 'ॐ ह्रीँ श्रीं....अर्हते नमः'
3. दीक्षा कल्याणक हो तो 'ॐ ह्रीँ श्रीं....नाथाय नमः'
4. केवलज्ञान कल्याणक हो तो 'ॐ ह्रीँ श्रीं....सर्वज्ञाय नमः'
5. निर्वाण कल्याणक हो तो 'ॐ ह्रीँ श्रीं....पारंगताय नमः'

साथिया	खमासमण	कायोत्सर्ग	माला
12	12	12	20

2. तीर्थङ्कर दीक्षा तप

यह तप कल्याणक-तप से किंचिद् भिन्न है, क्योंकि कल्याणक तप में च्यवन आदि पाँचों कल्याणक तिथियों की आराधना की जाती है और वह आराधना भी एक निर्धारित तप के द्वारा करते हैं जबकि इस तप में तीर्थङ्करों ने जिस तप के साथ दीक्षा ग्रहण की, उस तप विशेष की अथवा उसके परिमाण में किसी अन्य तप की आराधना की जाती है।

दूसरा उल्लेखनीय यह है कि दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण तप का कल्याणक-तप में समावेश हो जाता है, परन्तु कल्याणक का तप आगाढ़ होने से वह कल्याणक के दिनों का स्पर्श करके ही किया जाता है जबकि च्यवनादि तीनों तप अनागाढ़ होने से तप की संख्यानुसार किये जा सकते हैं। कुछ आचार्यों के निर्देशानुसार इस तप की आराधना दीक्षा का महीना, तिथि एवं तप- इन तीनों की स्पर्शना करते हुए की जाती है। यहाँ दोनों प्रकारों की चर्चा की जाएगी।

यह तप अरिहन्त परमात्मा के दीक्षा-तप का अनुसरण करने वाला होने से दीक्षा-तप कहलाता है। इस तप का दूसरा नाम 'तीर्थङ्कर निर्गम तप' है। निर्गमन

अर्थात निकलना। जब भोगावली कर्मों का सम्पूर्ण क्षय हो जाता है तब तीर्थङ्कर संसार की मोह-माया को छोड़कर विरति के मार्ग पर चल पड़ते हैं इसे ही दीक्षा कहा जाता है। इसमें गृहस्थ जीवन का परित्याग कर देना ही निर्गमन है।

इस तप को करने से निर्मल व्रत की प्राप्ति होती है तथा यह तप चारित्र धर्म की प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता है। यह साधु एवं श्रावकों के करने योग्य अनागाढ़ (अन्तराल से किया जाने वाला) तप है।

आचार्य हरिभद्र ने इस तप के निम्न दो प्रकार बतलाये हैं–

प्रथम रीति

सुमइत्थ निच्चभत्तेण, णिग्गओ वसुपुज्ज जिवो चउत्थेण।
पासो मल्लीवि य, अट्ठमेण सेसा उ छट्ठेण।।

पंचाशक (19/7), प्रवचनसारोद्धार (43/454)

• सुमतिनाथ भगवान ने एकाशन तप के साथ दीक्षा ग्रहण की, उसका एक उपवास।

• वासुपूज्य भगवान ने उपवास तप के साथ दीक्षा ग्रहण की, उसका एक उपवास।

• श्री पार्श्वनाथ भगवान और मल्लिनाथ भगवान ने अट्ठम तप से दीक्षा ग्रहण की, उसके छह उपवास।

• शेष बीस तीर्थङ्करों ने छट्ठ तप से दीक्षा ग्रहण की, उसके चालीस उपवास। इस तरह इसमें 48 उपवास और 23 पारणा ऐसे कुल 71 दिन में यह तप सम्पूर्ण होता है।

• यदि इस तप में बेला-तेला करने का सामर्थ्य न हों तो एकान्तर उपवास एवं पारणे में एकाशन करते हुए 95 दिनों में इस तप को पूर्ण करना चाहिए। वर्तमान विधि में दीक्षा कल्याणक के 48 उपवास एकान्तर एकाशन के पारणे से किये जाते हैं।

विधिमार्गप्रपा, सुबोधासामाचारी आदि ग्रन्थों में 'तीर्थङ्कर निर्गम तप' की यही विधि दर्शायी गयी है।

इसका यन्त्र न्यास निम्न है-

तप दिन 71, उपवास 48, पारणा 23																							
ऋषभ		अ.		सं.		अ.		सु.		प.		सु.		चं.		सु.		शी.		श्रे.		वासु.	
उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 1	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 1	ए. 1
वि.		अ.		ध.		शां.		कुं.		अ.		म.		मु.		न.		ने.		पा.		वर्ध.	
उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 3	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 3	ए. 1	उ. 2	ए. 1

दूसरी रीति– पंचाशक (19/9) के अनुसार ऋषभादि जिनेश्वरों की दीक्षा तप के जो महीने और तिथियाँ हैं उन महीनों और तिथियों में यह तप करना चाहिए। जैसे– ऋषभदेव भगवान के दीक्षा तप में चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन बेला तप करना चाहिए, महावीरस्वामी के दीक्षा तप में मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी के दिन बेला तप करना चाहिए। इसी प्रकार अन्य तीर्थङ्करों के दीक्षा तप के विषय में समझना चाहिए तथा ऋषभादि जिनों ने जिस द्रव्य से पारणा किया था उसी द्रव्य की प्राप्ति होना तप के निर्विघ्न पूर्ण होने का लक्षण है। इस प्रकार दूसरी विधि में उपवास की संख्या तो पूर्ववत निश्चित रहती है; किन्तु पारणा एवं कुल दिनों की संख्या का कोई निर्धारण नहीं होता।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर एकाशन तप करके बृहत्स्नात्र विधि से परमात्मा की स्नात्र एवं अष्टप्रकारी पूजा करें तथा षट्विकृतियों से युक्त नैवेद्य चढ़ाएँ।

• प्रचलित विधि के अनुसार इस तप के उपवास दिनों में निम्न जापादि करने चाहिए–

जाप – जिस तीर्थङ्कर के दीक्षा-कल्याणक की आराधना की जा रही हो उनके नाम के साथ 'नाथाय नमः' जोड़ें जैसे– श्री आदिनाथाय नमः, श्री अजितनाथाय नमः।

साथिया	खमासमण	लोगस्स	माला
12	12	12	20

3. तीर्थङ्कर केवलज्ञान तप

यह तीर्थङ्कर परमात्माओं के ज्ञान का अनुकरण करने वाला अथवा ज्ञान से उपलक्षित होने के कारण इस तप को तीर्थङ्कर केवलज्ञान-तप कहते हैं।

इस तप के माध्यम से वर्तमान अवसर्पिणी के चौबीस तीर्थङ्करों को जिस तप के साथ केवलज्ञान प्राप्त हुआ, उस तप विशेष की आराधना की जाती है, अत: इस तप के फल से विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह तप परिपूर्ण ज्ञान की सम्प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता है।

यह साधु एवं श्रावकों के करने योग्य आगाढ़ (लगातार श्रेणीबद्ध किया जाने वाला) तप है। इस तप का दूसरा नाम 'तीर्थङ्कर केवलज्ञानोत्पत्ति' है। यह तप द्विविध रीति से किया जाता है।

प्रथम रीति

अट्ठमभत्तवसाणे, पासोसहमल्लिरिट्ठनेमीणं।
वसुपुज्जस्स चउत्थेण, छट्ठभत्तेण सेसाणं।।

पंचाशक, 19/13; प्रवचनसारोद्धार, 44/455

• श्री आदिनाथ, श्री मल्लिनाथ, श्री नेमिनाथ और श्री पार्श्वनाथ भगवान ने अट्ठम (तेला) के साथ केवलज्ञान प्राप्त किया, उसके बारह उपवास।

• वासुपूज्य भगवान ने एक उपवास के द्वारा केवलज्ञान प्राप्त किया, उसका एक उपवास।

• शेष 19 तीर्थंकरों ने छट्ठ तप के साथ केवलज्ञान प्राप्त किया, उसके अड़तीस उपवास। इस प्रकार 12 + 1 + 38 = 51 उपवास और 23 पारणा होते हैं। ऐसे कुल 74 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

यदि बेला या तेला करने का सामर्थ्य न हो तो 51 उपवास एकान्तर एकाशना के पारणा पूर्वक करें, ऐसा करने पर 50 पारणे आते हैं और कुल 101 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

पंचाशक प्रकरण (19/8) के अनुसार यदि सात्त्विक जीवों में शक्ति हो तो उत्सर्गत: ऋषभादि जिनों के क्रम से यह तप करना चाहिए। यदि शक्ति न हो तो क्रम के बिना करने में भी कोई दोष नहीं है। आचार्य हरिभद्र कहते हैं कि यह तप गुर्वाज्ञा से परिशुद्ध होकर और अनवद्य अनुष्ठान पूर्वक (हिंसा से दूर रहते हुए) करना चाहिए।

इस तप का यन्त्र न्यास इस प्रकार है –

तप दिन 74, उपवास 51, पारणा 23																							
ऋषभ		अ.		सं.		अ.		सु.		प.		सु.		चं.		सु.		शी.		श्रे.		वासु.	
उ. 3	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 1	ए. 1
वि.		अ.		ध.		शां.		कुं.		अ.		म.		मु.		न.		ने.		पा.		वर्ध.	
उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 3	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 2	ए. 1	उ. 3	ए. 1	उ. 3	ए. 1	उ. 2	ए. 1

दूसरी रीति– पंचाशक प्रकरण (19/122) के अनुसार जिस महीने और तिथि को केवलज्ञान की उत्पत्ति हुई, उस महीने और तिथि को यह तप करना चाहिए।

इस प्रकार दूसरी विधि में भी 51 उपवास ही होते हैं, परन्तु पारणा एवं कुल दिनों की संख्या निश्चित नहीं होती।

उद्यापन – इस तप का उत्सव और प्रभु भक्ति आदि दीक्षा-तप की भाँति ही करें।

• प्रचलित परम्परानुसार इस तप के उपवास दिनों में निम्न जापादि करने चाहिए–

जाप – जिस तीर्थङ्कर के केवलज्ञान तप की आराधना प्रवर्त्तमान हो, उनके नाम के साथ 'सर्वज्ञाय नमः' जोड़ें। जैसे– आदिनाथ सर्वज्ञाय नमः, महावीरस्वामी सर्वज्ञाय नमः आदि।

साथिया	**खमासमण**	**कायो.**	**माला**
12	12	12	20

4. तीर्थङ्कर निर्वाण तप

तीर्थङ्कर परमात्माओं ने जिस तप के द्वारा निर्वाण प्राप्त किया, वह निर्वाण-तप कहलाता है। इस तप के माध्यम से उस तप विशेष की आराधना की जाती है इसलिए इसे निर्वाण-तप कहा गया है।

इस तप के करने से आठ भव में मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह तप साधु

एवं श्रावकों के करने योग्य अनागाढ़ तप है। इस तप की सामान्य विधि यह है –

विधि

निव्वाणमंतकिरिया सा, चोद्दसमेण पढमनाहस्स।
सेसाण मासिएणं, वीर जिणिंदस्स छट्ठेणं।।

पंचाशक, 19/16; प्रवचनसारोद्धार, 45/456

• आदिनाथ भगवान ने छह उपवास करके मोक्ष प्राप्त किया, उसके 6 उपवास।

• भगवान महावीर ने बेला तप के साथ निर्वाण प्राप्त किया, उसके 2 उपवास।

• अजितनाथ से लेकर पार्श्वनाथ तक के बाईस तीर्थङ्करों ने मासक्षमण तप के साथ निर्वाण प्राप्त किया, उसके 660 उपवास। इस प्रकार 6 + 2 + 600 = 668 उपवास और 24 पारणा होते हैं।

कुल 692 दिनों में यह तप पूर्ण होना चाहिए, किन्तु वर्तमान में इतने मासक्षमण तप करना दुःसाध्य है। अतः इतने उपवासों की परिपूर्ति एकान्तर उपवास के द्वारा की जा सकती है। पारणे में एकाशन तप करना जरूरी है।

यहाँ इस तप की मूल-विधि का ही यन्त्र दे रहे हैं –

तप दिन 692, उपवास 660, पारणा 24																							
ऋ.		अ.		सं.		अ.		सु.		प.		सु.		चं.		सु.		शी.		श्रे.		वा.	
उ. 6	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1
वि.		अ.		ध.		शां.		कुं.		अ.		म.		मु.		न.		ने.		पा.		वर्ध.	
उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 30	ए. 1	उ. 2	ए. 1

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर बृहत्स्नात्रपूर्वक जिनप्रतिमा के समक्ष चौबीस-चौबीस सर्व प्रकार के फल, नैवेद्य आदि चढ़ाएँ। साधुओं की भक्ति एवं संघपूजा करें।

• जीतव्यवहार के परिपालनार्थ इस तप के उपवास दिनों में जापादि क्रियाएँ निम्नवत करनी चाहिए–

जाप – जिस तीर्थङ्कर के निर्वाण तप की उपासना चल रही हो, उस नाम के साथ 'पारंगताय नमः' जोड़ दें। जैसे– महावीरस्वामी पारंगताय नमः, आदिनाथ पारंगताय नमः आदि।

साथिया	खमासमण	कायो.	माला
12	12	12	20

5. ज्ञान, दर्शन, चारित्र तप

यहाँ ज्ञान, दर्शन, चारित्र का तात्पर्य सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन और सम्यक्चारित्र है। आत्म तत्त्व की पहचान करना अथवा आत्माभिमुख करने वाला ज्ञान सम्यक्ज्ञान कहलाता है। जैनागमों में ज्ञान के पाँच प्रकार बतलाए गये हैं –

1. **मतिज्ञान** – इन्द्रियों और मन के द्वारा पदार्थों का ज्ञान होना।

2. **श्रुतज्ञान** – उपदेश श्रवण या शास्त्र पठन आदि के द्वारा ज्ञान होना।

3. **अवधिज्ञान** – इन्द्रियों और मन की अपेक्षा के बिना आत्मा द्वारा रूपी पदार्थों का मर्यादित ज्ञान होना।

4. **मनःपर्यवज्ञान** – सर्व संज्ञी जीवों के मनोगत भावों को जान लेना।

5. **केवलज्ञान** – समस्त लोकालोक के रूपी-अरूपी पदार्थों का हस्तामलकवत ज्ञान होना। इन पांचों ज्ञानों के कुल मिलाकर 28+14+6+2+1 = 5 भेद होते हैं।

जो पदार्थ जैसा है उसे वैसा ही जानना, उसके सत्य स्वरूप को समझने की रुचि होना अथवा विवेकयुक्त दृष्टि होना सम्यक्दर्शन कहलाता है। सम्यक्दर्शन तीन प्रकार का होता है –

1. **क्षायिक सम्यक्दर्शन** – अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय एवं मिथ्यात्व मोहनीय के क्षय से वस्तु की यथार्थता का बोध होना, वह क्षायिक सम्यक्दर्शन है।

2. **औपशमिक सम्यक्दर्शन** – अनन्तानुबन्धी चारों कषायों तथा मिथ्यात्व-मोहनीय आदि तीन- इन सातों के उपशम से जो वस्तु की सत्यता का बोध होता है, वह औपशमिक सम्यक्त्व है।

3. क्षायोपशमिक सम्यक्दर्शन – उपर्युक्त सातों कर्म-प्रकृतियों में से सम्यक्त्व-मोहनीय के सिवाय शेष छह प्रकृतियों के क्षयोपशम से तथा सम्यक्त्व मोहनीय के उदय से उत्पन्न होने वाली यथार्थ दृष्टि क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है।

अशुभ से निवृत्त होकर शुभ में प्रवृत्त होना सम्यक्चारित्र है।

यह तप रत्नत्रय की प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता है। इस तप के फल से निर्मल ज्ञान, निर्मल बोधि और निर्मल चारित्र की प्राप्ति होती है।

यह आगाढ़ तप साधुओं एवं श्रावकों दोनों के लिए करणीय बतलाया गया है। कुछ आचार्यों ने ''ज्ञान-दर्शन-चारित्र तप'' को अभिन्न तप के रूप में मान्य किया है तो किन्हीं ने तीनों को पृथक्-पृथक् तप के रूप में स्वीकारा है। कहीं दर्शन को प्रथम और ज्ञान को दूसरे क्रम पर रखा गया है। इस तप के दो प्रकारान्तर हैं–

प्रथम रीति

''तहा अट्ठमतिगेण नाण- दंसण-चरित्ता राहणतवो भवइ।''

विधिमार्गप्रपा, पृ. 26

विधिमार्गप्रपा के अनुसार ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना के निमित्त तीन अट्ठम (तेला) करें। इसमें निरन्तर नौ उपवास किये जाते हैं।

दूसरी रीति

एकान्तरोपवासैश्च, त्रिभिर्वापि निरन्तरैः ।
कार्यं ज्ञान-तपश्चोद्यापने, ज्ञानस्य पूजनम् ।।

आचारदिनकर, पृ. 340

आचार्य वर्धमानसूरि के अनुसार ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की पृथक्-पृथक् आराधना करें।

1. ज्ञान तप की आराधना हेतु निरन्तर अथवा एकान्तर से तीन उपवास करें। इस तप के उद्यापन में श्रुत की भक्ति करें, साधुओं को ज्ञान उपकरण दें, ज्ञान की पूजा करवायें और उसमें छह विगयों से युक्त पकवान चढ़ायें।

2. दर्शन पद की आराधना में भी निरन्तर या एकान्तर से तीन उपवास करें। इस तप के पूर्ण होने पर बृहत्स्नात्र विधि से परमात्मा का स्नात्र करें, जिनप्रतिमा के आगे छहों विगयों के पकवान रखें, मुनियों को अन्न-वस्त्रादि का दान देवें, समकित की छः भावनाओं का श्रवण करें, जिनमन्दिर का प्रमार्जन

आदि करें।

3. चारित्र पद की आराधना में पूर्ववत निरन्तर अथवा एकान्तर से तीन उपवास करें।

इस तप के उद्यापन में मुनियों को उत्तम आहार, वस्त्र, पात्रादि का दान दें।

इस प्रकार 9 या 18 दिन में यह तप पूर्ण होता है।

- जीतव्यवहार के अनुसार इस तप में निम्न जाप आदि करें –

तप	जाप	साथिया	खमा.	लोगस्स	माला
ज्ञान तप	ॐ ह्रीँ नमो नाणस्स	51	51	51	20
दर्शन तप	ॐ ह्रीँ नमो दंसणस्स	67	67	67	20
चारित्र तप	ॐ ह्रीँ नमो चारित्तस्स	70	70	70	20

6. चान्द्रायण तप

जैसे शुक्लपक्ष में चन्द्रमाँ की कलाओं में वृद्धि और कृष्ण पक्ष में हानि होती है उसी प्रकार यह तप चढ़ते-उतरते क्रम से किया जाता है, अत: इसे चान्द्रायण तप कहते हैं। चन्द्र + अयन इन दो शब्दों के योग से चान्द्रायण बना है। अयन का अर्थ है – पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा लगाना जैसे- चन्द्रमा के द्वारा परिक्रमा लगाते हुए उसकी कलाओं में स्वाभाविक वृद्धि-हानि होती है वैसे ही यह तप वृद्धि एवं हानि के क्रम से किया जाता है।

यह तप करने से पुण्य की वृद्धि और पापों का क्षय होता है जो कलाओं के वृद्धित्व और हानित्व गुण को दर्शाती है। इसे साधुओं एवं श्रावकों को आगाढ़ तप के रूप में करना चाहिए। आचार्य हरिभद्रसूरि (पंचाशक, 19/22) के अनुसार यदि यह तप साधु द्वारा किया जाता है तो इसमें निर्दोष क्रिया, निर्मल भाव एवं महारम्भ से रहित होने के कारण मोक्ष फलदायक होता है।

यह तप दो प्रकार से किया जाता है – 1. यवमध्य चान्द्रायण और 2. वज्रमध्य चान्द्रायण।

विधि

चान्द्रायणं च द्विविधं, प्रथमं यवमध्यमं ।
द्वितीयं वज्रमध्यं तु, तयोश्चर्या विधीयते ।।1।।

यवमध्ये प्रतिपदं, शुक्लामारभ्य वृद्धितः ।
एकैकयोग्रसिदत्त्यो, राकां यावत्समानयेत् ।।2।।
ततः कृष्णप्रतिपद, मारभ्यैकैकहानितः ।
अमावास्यां तदेकत्वे, यवमध्यं च पूर्यते ।।3।।
वज्रमध्ये कृष्णपक्षमारभ्य प्रतिपत्तिथिः ।
कार्या पंचदशग्रास, दत्तिभ्यां हानि रेकतः ।।4।।
अमावास्याश्च परतो, ग्रासदत्ती विवर्धयेत् ।
यावत्पंचदशैव स्युः, पूर्णमास्यां च मासतः ।।5।।
एवं मासद्वयेन स्यात्पूर्णं च यववज्रकं ।
चान्द्रायणं यतेर्दत्तेः, संख्या ग्रासस्य देहिनाम् ।।6।।

आचारदिनकर, पृ. 340,42

यवमध्य चान्द्रायण-तप

यव की तरह जिसका मध्यभाग स्थूल हो तथा आदि और अन्त का भाग पतला हो, वह यवमध्य कहलाता है। वज्र की तरह जो बीच में पतला हो तथा आदि और अन्त में स्थूल हो, वह वज्रमध्य कहलाता है। यहाँ स्थूलता और हीनता का अभिप्राय दत्ति या ग्रास की बहुलता या अल्पता से जानना चाहिए। पहला यवमध्य चान्द्रायण तप इस प्रकार से करें –

यह तप शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को प्रारम्भ करते हैं। प्रतिपदा (एकम) के दिन एक दत्ति या एक कवल ग्रहण करें, दूज के दिन दो दत्ति या दो कवल ग्रहण करें, तीज के दिन तीन दत्ति या तीन कवल इस प्रकार एक-एक दत्ति या कवल (ग्रास) की वृद्धि करते हुए पूर्णिमा के दिन पन्द्रह दत्ति या पन्द्रह कवल लें। तत्पश्चात कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को पन्द्रह दत्ति या पन्द्रह कवल ग्रहण करें, फिर द्वितीया तिथि को चौदह दत्ति या कवल, तृतीया को तेरह दत्ति या कवल - इस तरह एक-एक दत्ति अथवा कवल (ग्रास) कम करते हुए अमावस्या को एक दत्ति या एक कवल ग्रहण करें- यह यवमध्य चान्द्रायण तप कहलाता है।

वज्रमध्य चान्द्रायण तप

यह तप कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को प्रारम्भ करते हैं। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को पन्द्रह दत्ति या पन्द्रह कवल ग्रहण करें, दूज को चौदह दत्ति या चौदह कवल

ग्रहण करें, तीज को तेरह दत्ति या तेरह कवल- इस प्रकार एक-एक दत्ति अथवा कवल कम करते हुए अमावस्या के दिन एक दत्ति या एक ग्रास ग्रहण करें।

तत्पश्चात शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को एक दत्ति या एक ग्रास से प्रारम्भ कर क्रमश: एक-एक दत्ति या कवल बढ़ाते हुए पूर्णिमा को पन्द्रह दत्ति या पन्द्रह ग्रास ग्रहण करे- यह वज्रमध्य चान्द्रायण तप कहलाता है।

इस प्रकार यवमध्य एवं वज्रमध्य चान्द्रायण तप दो मास में पूर्ण होता है। इसमें दत्ति या कवल के परिमाण पूर्वक एकाशन तप होता है। पंचाशक प्रकरण, प्रवचनसारोद्धार, सुबोधासामाचारी आदि ग्रन्थों में यह तप पूर्ववत ही कहा गया है।

चान्द्रायण तप का यन्त्र इस प्रकार है–

यवमध्य चान्द्रायण-तप, शुक्ल पक्ष में वृद्धि, दिन 15															
शुक्लपक्ष तिथि	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	30
दत्ति या कवल संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15

यवमध्य चान्द्रायण-तप, कृष्ण पक्ष में हानि, दिन 15															
कृष्णपक्ष तिथि	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15
दत्ति या कवल संख्या	15	14	13	12	11	10	9	8	7	6	5	4	3	2	1

वज्रमध्य चान्द्रायण-तप, कृष्ण पक्ष में हानि, दिन 15															
कृष्णपक्ष तिथि	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15
दत्ति या कवल संख्या	15	14	13	12	11	10	9	8	7	6	5	4	3	2	1

वज्रमध्य चान्द्रायण-तप, शुक्ल पक्ष में वृद्धि, दिन 15															
शुक्लपक्ष तिथि	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	30
दत्ति या कवल संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15

उद्यापन– इस तप को शोभित करने हेतु तप की समाप्ति में जिनप्रतिमा

की बृहत्स्नात्र पूजा करें, छह विगयों के पकवान सहित रजत का चन्द्र, स्वर्ण के 32 यव और 32 वज्र चढ़ायें, 480 मोदक चढ़ायें, मुनियों को वस्त्रादि उपकरण बहरायें तथा संघ की भक्ति करें।

गीतार्थ परम्परानुसार इस तप की आराधना में निम्न जापादि करें–

जाप	साथिया	खमासमण	कायो.	माला
ॐ नमो सिद्धाणं	8	8	8	20

7. वर्धमान तप

वर्धमान का अर्थ है बढ़ता हुआ। यह तप बढ़ते हुए क्रम से किया जाता है अथवा इस तप में एकाशना आदि तप क्रमशः बढ़ते हुए किये जाते हैं इसलिए इसे 'वर्धमान तप' कहा गया है।

इस तप में अनुक्रमशः इस अवसर्पिणी कालखण्ड के भरत क्षेत्र में होने वाले चौबीस तीर्थङ्करों की आराधना की जाती है। इस तप के फल से तीर्थङ्कर नामकर्म का बंध होता है, क्योंकि जैसा साध्य होता है साधक को वैसे ही फल की प्राप्ति होती है। यह तप मुख्यतः तीर्थङ्कर पद प्राप्ति के लक्ष्य से साधु एवं गृहस्थ उभय के लिए आवश्यक बतलाया गया है।

इस तप के चार प्रकारान्तर प्राप्त होते हैं।

प्रथम रीति

जत्थ आइतित्थगरस्सएगं, दुइज्जस्स दुन्नि, जाव वीरस्स चउवीसं आयंबिल-निव्वियाईणि तस्स विसेसपूयापुव्वं कीरंति। पुणो वीरस्स एगं जाव उसहस्स चउवीसं, तओ पडिपुन्नो हो इत्ति।।

(विधिमार्गप्रपा, पृ. 27)

विधिमार्गप्रपा के अनुसार इस तप में पूर्वानुक्रम से सर्वप्रथम आदिनाथ भगवान की आराधना निमित्त एक आयंबिल, फिर अजितनाथ भगवान की आराधना निमित्त दो, फिर संभवनाथ भगवान की आराधना निमित्त तीन- इस प्रकार एक-एक आयंबिल की वृद्धि करते हुए भगवान महावीर की आराधना निमित्त चौबीस आयंबिल करें। फिर पश्चानुक्रम से प्रभु महावीर के निमित्त एक आयंबिल ऐसे चौबीस तीर्थंकरों के क्रम से एक-एक आयंबिल बढ़ाते हुए प्रभु आदिनाथ के निमित्त चौबीस आयंबिल करें।

इस प्रकार प्रत्येक तीर्थङ्कर के निमित्त पच्चीस-पच्चीस आयंबिल होने से कुल 600 आयंबिल होते हैं।

यह तप निरन्तर अथवा प्रत्येक तीर्थङ्कर की आराधना के पश्चात पारणा पूर्वक भी कर सकते हैं। यदि इस तप को निरन्तर करें तो इसमें 600 आयंबिल होते हैं जिसमें 1 वर्ष और 8 महीने लगते हैं तथा पारणा पूर्वक करने पर इस तप में 1 वर्ष, 9 महीने और 17 दिन लगते हैं।

दूसरी रीति

विधिमार्गप्रपा (पृ. 27) के अनुसार इस तप में पूर्वोक्त विधि से आयंबिल के स्थान पर नीवि करें।

आचार्य जिनप्रभसूरि ने 'निव्वियाईणि' शब्द का उल्लेख कर आदि शब्द से एकाशना तप की ओर भी सूचित किया है। तदनुसार उनके अभिमत से यह तप आयंबिल या नीवि के स्थान पर एकाशना तप करके भी किया जा सकता है। किन्तु आचार्य वर्धमानसूरि ने इस तप में एकाशना करने का ही सूचन किया है तथा उस सम्बन्ध में भी दो प्रकार बतलाये हैं।

तीसरी रीति

ऋषभादेर्जिनसंख्यावृद्धया, तावन्ति चैकभक्तानि ।
वीरादेरप्येवं, बलमानं वर्धमान तपः ।।1।।
अथवैकैकमर्हतं, प्रत्येकाशनकानि च ।
पंचविंशतिसंख्यानि, षट्शताहेन पूर्यते ।।2।।

आचारदिनकर, पृ. 343

आचार्य वर्धमानसूरि के अनुसार इस तप में पूर्वोक्त विधि पूर्वक चौबीस तीर्थङ्करों के क्रम से एक-एक एकाशना बढ़ाते हुए चौबीस के अन्त तक पहुँचे। फिर पुनः से पश्चानुक्रम पूर्वक एक-एक एकाशना बढ़ाते हुए आदिनाथ भगवान के निमित्त चौबीस एकाशना करें।

इस प्रकार प्रत्येक तीर्थङ्कर के 25-25 एकाशना होने से कुल 600 एकाशना होते हैं।

चौथी रीति

आचारदिनकर (पृ. 343) के अनुसार इस तप में प्रत्येक तीर्थङ्कर के एक साथ पच्चीस-पच्चीस एकाशना पारणा पूर्वक किये जा सकते हैं। तदनुसार इस

चतुर्थ रीति में 600 एकाशना और 24 पारणा-कुल 1 वर्ष, 8 महीने और 19 दिन में पूर्ण होते हैं।

उद्यापन – इस तप की प्रसिद्धि एवं उसके बहुमानार्थ चौबीस तीर्थङ्करों की बृहत्स्नात्र पूजा करें, परमात्मा के सम्मुख चौबीस-चौबीस की संख्या में पुष्प, फल, पकवान आदि चढ़ाएं, साधर्मीवात्सल्य एवं संघभक्ति करें।

प्रचलित-विधि के अनुसार इस तप के दौरान जिस दिन जिस तीर्थङ्कर की आराधना हो, उस दिन उस तीर्थङ्कर की विशेष रूप से पूजा भक्ति करें।

जाप – इस तप में प्रत्येक तीर्थङ्कर के नाम के आगे 'सर्वज्ञाय नमः' यह पद जोड़ें। जैसे– आदिनाथ सर्वज्ञाय नमः, इसी तरह अन्य तीर्थङ्करों का भी जाप करें।

साथिया	खमासमण	कायो.	माला
12	12	12	20

8. परमभूषण तप

यहाँ परमभूषण का अभिप्राय मोक्ष रूपी आभूषण से है। लोक व्यवहार में मानव की श्रेष्ठता का मापदण्ड उसके पहने हुए वस्त्रालंकारों से होता है, क्योंकि बाह्य जगत में रचे-पचे जीवों को बाहरी सजावट ही पसन्द आती है, किन्तु आभ्यन्तर जगत में मानव के श्रेष्ठतम गुणों का ही मूल्य होता है। आत्मज्ञान को प्राप्त करना श्रेष्ठ व्यक्ति का लक्षण है। जब आत्मा को आत्मा का भान हो जाता है तब उसे पाने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता। वह अपनी निजी सम्पत्ति का सदा के लिए सम्राट् बन जाता है।

इस तप के फल से मोक्ष रूपी परम आभूषण की प्राप्ति होती है। मोक्ष आभूषण की तुलना में जड़ जगत के सभी आभूषण कीचड़ के समान हैं। कीचड़ का जितना मूल्य है मोक्ष रूपी लक्ष्मी के सामने बाह्य वैभव का भी उतना ही मूल्य रह जाता है।

आचारदिनकर (पृ. 344) के अनुसार इस तप को करने से ज्ञान, दर्शन और चारित्रादिक उत्कृष्ट आभूषण प्राप्त होते हैं। किन्हीं ने 'आदि' शब्द से चक्रवर्ती के योग्य मुकुट, कुण्डल आदि आभूषणों को ग्रहण किया है।

आचार्य वर्धमानसूरि के मत से इस तप के द्वारा परम सम्पदा रूप आत्म गुणों की भी प्राप्ति होती है। सारांश यह है कि इस तप के सम्यक् आचरण से

साधक बाह्य सम्पदा के साथ-साथ आत्म-सम्पदा का भी स्वामी बन जाता है अर्थात सिद्धावस्था को प्रकट कर लेता है। यह अनागाढ़ तप साधु एवं गृहस्थ दोनों के लिए करने योग्य है। यह तप निम्न दो रीतियों से किया जाता है।

प्रथम रीति

बत्तीसं आयामं, एगंतरपारणेण सुविसुद्धो।
तह परम भूसणो खलु, भूसणदाणप्पहाणो य।।

पंचाशक प्रकरण– 19/33, प्रवचनसारोद्धार– 271/1546
विधिमार्गप्रपा– पृ. 25, आचारदिनकर– पृ. 344

उपरोक्त ग्रन्थों के निर्देशानुसार इस तप में बत्तीस आयंबिल एकान्तर एकाशन के पारणे पूर्वक करें अर्थात एक दिन आयंबिल, दूसरे दिन एकासना इस प्रकार बत्तीस आयंबिल और बत्तीस एकाशना करने पर चौसठ दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

दूसरी रीति – जैनप्रबोधसंग्रह के अनुसार यह तप निरन्तर बत्तीस आयंबिल करके बत्तीस दिनों में भी पूर्ण किया जाता है।

उद्यापन – इस तप के उद्यापन में जिनेश्वर परमात्मा की बृहत्स्नात्र पूजा करवायें, मूलनायक प्रभु को स्वर्णमय रत्नजटित मुकुट, कुण्डल, हार आदि सभी आभूषण चढ़ायें तथा बत्तीस-बत्तीस की संख्या में पकवान एवं फलादि चढ़ाएं।

• प्रचलित विधि के अनुसार परमभूषण-तप की विशिष्ट सफलता हेतु अरिहन्त पद की आराधना अवश्य करें–

जाप	**साथिया**	**खमा.**	**कायो.**	**माला**
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

9. ऊनोदरिका तप

ऊन+उदर इन दो शब्दों के योग से निष्पन्न ऊनोदरी शब्द का अर्थ है– ऊन = कम, उदर = पेट अर्थात नियत प्रमाण से कम भोजन करना अथवा उदर में जितनी भूख हो उससे कम भोजन करना ऊनोदरी तप कहलाता है।

इस तप के प्रभाव से पाप कर्मों की विशेष निर्जरा होती है। मानसिक, वाचिक एवं कायिक इन त्रिविध दृष्टियों से इस तप का अत्यधिक मूल्य है। यह तप साधु एवं गृहस्थ दोनों के लिए अवश्य करणीय है।

आगम-साहित्य में ऊनोदरिका तप पाँच प्रकार का बतलाया गया है–

अप्पाहारा अवड्ढा, दुभाग पत्ता तहेवा देसूणा।
अट्ठ दुवालस सोलस, चउवीस तहिक्कतीसा य।।

(i) अल्पाहारा (ii) अपार्धा (iii) द्विभागा (iv) प्राप्ता (v) किंचिदूना। यह पंचविध ऊनोदरी तप द्रव्य रीतियों से निम्न प्रकार किया जाता है –

द्रव्य ऊनोदरिका (पुरुष की अपेक्षा)

(i) **अल्पाहारा–** एक से आठ कवल तक आहार करना अल्पाहारा कहलाता है।

(ii) **अपार्धा–** नौ से बारह कवल तक आहार करना अपार्धा कहलाता है।

(iii) **द्विभागा–** तेरह से सोलह कवल तक आहार करना द्विभागा कहलाता है।

(iv) **प्राप्ता–** सत्तरह से चौबीस कवल तक आहार करना प्राप्ता ऊनोदरिका है।

(v) **किंचिदूना–** पच्चीस से इकतीस कवल तक आहार करना किंचिदूना ऊनोदरी है।

कवल का खुलासा– यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि ऊनोदरी के पाँच प्रकारों में कवल की जो संख्या बतायी गयी है वह पुरुष की अपेक्षा से है, क्योंकि पुरुष और स्त्री का आहार प्रमाण भिन्न-भिन्न होता है। आगमों में कहा गया है कि सामान्य रूप से पुरुष का भोजन बत्तीस कवल प्रमाण और स्त्री का अट्ठाईस कवल होता है। जितना खाद्य पदार्थ मुख में सरलता पूर्वक एक बार डाला जा सके उसे कवल कहते हैं।

उक्त पाँचों ऊनोदरिका जघन्य, मध्यम व उत्कृष्ट की अपेक्षा तीन-तीन प्रकार की होती है। जैसे–

(i) अल्पाहारा ऊनोदरी – एक कवल खाना जघन्य है, दो से पाँच कवल तक खाना मध्यम है और छह से आठ कवल तक खाना उत्कृष्ट है।

(ii) अपार्धा ऊनोदरी – नौ ग्रास खाना जघन्य है, दस से ग्यारह ग्रास ग्रहण करना मध्यम और बारह ग्रास लेना उत्कृष्ट है।

(iii) द्विभागा ऊनोदरी – तेरह ग्रास खाना जघन्य है, चौदह से पन्द्रह ग्रास ग्रहण करना मध्यम और सोलह ग्रास लेना उत्कृष्ट है।

(iv) प्राप्ता ऊनोदरी – सत्तरह से अट्ठारह ग्रास जघन्य, उन्नीस से बाईस ग्रास मध्यम और तेईस से चौबीस ग्रास ग्रहण करना उत्कृष्ट प्राप्ता ऊनोदरि है।

(v) किंचिदूना ऊनोदरी – पच्चीस से छब्बीस ग्रास जघन्य, सत्ताईस से उनतीस ग्रास मध्यम और तीस से इकतीस ग्रास ग्रहण करना उत्कृष्ट किंचिदूना ऊनोदरी है।

पुरुष का सम्पूर्ण आहार 32 कवल का होता है इसलिए 31 कवल तक किंचित ऊनोदरिका होती है। इस प्रकार पाँचों प्रकार की ऊनोदरिका एकाशन तप पूर्वक 15 दिनों में पूर्ण होती है।

(स्त्री की अपेक्षा)

स्त्रियों का सम्पूर्ण आहार 28 कवल का माना गया है अत: उनके लिए पंचविध ऊनोदरिका इस प्रकार समझनी चाहिए–

(i) अल्पाहारा – एक से सात कवल तक (ii) अपार्धा – आठ से ग्यारह कवल तक (iii) द्विभागा – बारह से चौदह ग्रास तक (iv) प्राप्ता – पन्द्रह से इक्कीस कवल तक (v) किंचिदूना – बाईस से सत्ताईस कवल तक सामान्य ऊनोदरिका समझनी चाहिए।

ये पांचों ऊनोदरिका भी जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से इस प्रकार हैं–

(i) अल्पाहारा ऊनोदरी – एक से दो ग्रास जघन्य, तीन से पाँच ग्रास मध्यम और छह से सात ग्रास ग्रहण करना उत्कृष्ट अल्पाहारा ऊनोदरिका है।

(ii) अपार्धा ऊनोदरी – आठ ग्रास की जघन्य, नौ ग्रास की मध्यम और दस से ग्यारह ग्रास ग्रहण करना उत्कृष्ट अपार्धा ऊनोदरिका है।

(iii) द्विभागा ऊनोदरी – बारह ग्रास की जघन्य, तेरह ग्रास की मध्यम और चौदह ग्रास की उत्कृष्ट द्विभागा ऊनोदरिका है।

(iv) प्राप्ता ऊनोदरी – पन्द्रह से सोलह ग्रास की जघन्य, सत्तरह से उन्नीस ग्रास की मध्यम और बीस से इक्कीस कवल की उत्कृष्ट प्राप्ता ऊनोदरिका है।

(v) किंचिदूना ऊनोदरी – बाईस से तेईस ग्रास की जघन्य, चौबीस से पच्चीस ग्रास की मध्यम और छब्बीस से सत्ताईस ग्रास की उत्कृष्ट किंचिदूना ऊनोदरिका है।

इस प्रकार स्त्रियों की अपेक्षा भी यह द्रव्य ऊनोदरिका एकाशना तप पूर्वक 15 दिनों में पूर्ण होती है।

दूसरी रीति

तहा अट्ठ-दुवालस- सोलस- चउवीस पुरिसाण एकत्तीसं, थीणं सत्तावीसं कवला। जहकम्मं पंचहिं दिणेहिं ऊणोयरियातवो।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 27

विधिमार्गप्रपा के अनुसार पुरुषापेक्षा से यह तप अनुक्रमशः आठ, बारह, सोलह, चौबीस और इकतीस कवलों द्वारा पाँच दिन में पूर्ण किया जाता है तथा स्त्रियापेक्षा से भी यह तप क्रमशः सात, ग्यारह, चौदह, इक्कीस और सत्ताईस कवलों के द्वारा पाँच दिन में ही पूर्ण होता है।

आचार्य जिनप्रभसूरि ने जघन्यादि भेद से इसका वर्णन नहीं किया है इसलिए दोनों विधियों में तप दिन को लेकर अन्तर है। विधिमार्गप्रपा वर्णित ऊनोदरी तप को 'लोकप्रवाहऊनोदरिका' कहा जाता है।

भाव ऊनोदरिका – आगम पाठ के अनुसार प्रतिदिन क्रोधादि भावों, विषय-वासनादि भावों का त्याग करना तथा जिनाज्ञा का चिन्तन-मनन करना भाव ऊनोदरी कहलाती है।

ऊनोदरिका-तप का यन्त्र इस प्रकार है –

पुरुष ऊनोदरिका तप (आगाढ़) ग्रास		जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट ग्रास	लोक प्रवाहोनोदरी-तप पुरुष		स्त्रियों का ऊनोदरिका तप (आगाढ़) ग्रास		जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट ग्रास	स्त्रियाँ	लोक-प्रवाह ऊनोद-रिका
अल्पा.	1/2/ 3/4/ 5/6/ 7/8	ज. 1 म.2/3/4/5 उ.6/7/8	प्रथम दिन	कवल 8	1/2/3 /4/5 6/7	अल्पा.	ज. 1/2 म. 3/4/5 उ. 6/7	प्रथम दिन	कवल 7
अपार्धा	9/10 11/12	ज. 9 म. 10/1 उ./12	द्वितीय दिन	कवल	8/9/10 11/12	अपार्धा	ज. 8 म. 9 उ. 10/11	द्वितीय दिन	कवल 11
द्विभागा	13/14 15/16	ज. 13 म. 14 उ. 15/16	तृतीय दिन	कवल 16	12/13 /14	द्विभागा	ज. 12 म. 13 उ. 14	तृतीय दिन	कवल 14
प्राप्ता	17/18/ 19/20/ 21/22/ 23/24	ज. 17/18 म. 19/20 /21/22 उ. 23/24	चतुर्थ दिन	कवल 14	15/16/ 17/ 18/19 20/21	प्राप्ता	ज. 15/16 म.17/18/19 उ. 20/21	चतुर्थ दिन	21
किंचि दूना	25/26 27 /28/29 /30/31	ज. 25/26 म.27/28 /29 उ. 30/31	पंचम दिन	कवल 31	22/23/ 24/25/ 26/27	किंचि-दूना	ज. 22/23 म. 24/25 उ. 26/27	पंचम दिन	27

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर अरिहन्त परमात्मा की अष्ट प्रकारी पूजा करें, जिनेश्वर प्रतिमा के आगे इकतीस अथवा सत्ताईस की संख्या में फल, फूल, मोदक आदि चढ़ायें, साधर्मीवात्सल्य एवं संघपूजा करें।

• गीतार्थ स्थापित विधि के अनुसार इस तप में प्रतिदिन अरिहन्त पद की आराधना करनी चाहिए–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ऊनोदरी तपसे नमः	12	12	12	20

10. सल्लेखना तप

सल्लेखना का सामान्य अर्थ सम्यक् प्रकार से लेखन, अवलोकन, स्मरण करना है। यहाँ अवलोकन से तात्पर्य आत्म स्वरूप की पहचान करते हुए देह के ममत्त्व को विसर्जित कर देना है। तप से देह के प्रति रही हुई ममत्त्व बुद्धि दूर होती है तथा काया कृश होने से देह भाव भी समाप्त हो जाता है। जहाँ देह बुद्धि का अभाव होता है, वहीं चेतना तत्त्व स्व में स्थित हो जाता है और वही साधना की चरम सीमा है। संलेखना तप के द्वारा शरीर को कृश करते हुए आत्म सजगता को बढ़ाया जाता है।

संलेखना, समाधिमरण की पूर्व स्थिति है। संलेखना के अभाव में समाधि मृत्यु की सम्भावना नहीं बन पाती है। संलेखना से जब शरीर निश्चेष्ट या बोहेश सा हो जाता है तब साधक उसके नाशवान सत्य स्वरूप को देखकर और अधिक आत्म तन्मय बन जाता है। उस स्थिति में आयुष्य कर्म की डोर टूटना उसके लिए सद्गति या मोक्ष गति का कारण बनता है।

संलेखना कब, कहाँ और कैसे की जानी चाहिए, आगम ग्रन्थों में इस विषयक विशद चर्चा उपलब्ध होती है। यहाँ सिर्फ संलेखना किस तरह करनी चाहिए? उसकी विधि ही दर्शित करेंगे। यह आगाढ़-तप साधु एवं गृहस्थ दोनों के लिए करने योग्य और अत्यन्त आत्म हितकारी कहा गया है।

विधि

चत्तारि विचित्ताइं, विमई निजू हियाइं चत्तारि।
संवच्छरे अ दुन्निउ, एगंतरिअं च आयामं।।

नाइनिविगओ अ छम्मासे, परम्मिअं च आयामं।
अवरे विअ छम्मासे, होइ विगट्ठं तवो कम्मं।।
वासं कोडिसहिअं आयामं, कट्टु आणु पुव्वीए।
एसो बारस वरिसाइं, होइ संलेहणाइ तवो।।

आचारदिनकर, पृ. 346-47

प्रथम चार वर्ष विचित्र (विविध) प्रकार का तप करें। तत्पश्चात दूसरे चार वर्ष एकान्तर नीवि से पूर्ववत उपवास करें। उसके बाद दो वर्ष तक एकान्तर नीवि से आयंबिल करें। उसके बाद छः मास तक उपवास, बेला तथा तेला का पारणा परिमित आयंबिल से करें। उसके बाद छः मास तक आयंबिल के पारणा से चार-चार उपवास करें। उसके पश्चात एक वर्ष तक आयंबिल करें। इस प्रकार बारह वर्ष में यह तप सम्पूर्ण होता है।

इस तप का यन्त्र इस प्रकार है –

तप दिन 12 वर्ष					
प्र. परिपाटी	**द्वि. परिपाटी**	**तृ. परिपाटी**	**च. परिपाटी**	**पं. परिपाटी**	**ष. परिपाटी**
प्रथम चार वर्ष यावत	फिर चार वर्ष यावत	फिर दो वर्ष यावत	फिर छह मास यावत	फिर छह मास यावत	फिर एक वर्ष यावत
उप.2 ए.1	उप.2 नी.1	आ.1 नी. 1	उप.1 आ.1	उप.4 आ.1	आ.1
उप.4 ए.1	उप.3 नी.1	आ.1 नी. 1	उप.2 आ.1	उप.4 आ.1	आ.1
उप.5 ए.1	उप.4 नी.1	आ.1 नी. 1	उप.3 आ.1	उप.4 आ.1	आ.1
उप.6 ए.1	उप.5 नी.1	आ.1 नी. 1	उप.1 आ.1	उप.4 आ.1	आ.1
उप.15 ए.1	उप.15 नी.1	आ.1 नी. 1	उप.2 आ.1	उप.4 आ.1	आ.1
उप.30 ए.1	उप.30 नी.1	आ.1 नी. 1	उप.3 आ.1	उप.4 आ.1	आ.1

- प्रचलित विधि के अनुसार इस तप के दिनों में अरिहन्त पद की आराधना करते हुए निम्न जाप करें–

जाप	**साथिया**	**खमा.**	**कायो.**	**माला**
ॐ नमो तवस्स	12	12	12	20

11. सर्वसंख्या श्री महावीर तप

इस तप के नाम से ही सूचित होता है कि इसमें भगवान महावीर ने छद्मस्थकाल (साढ़े बारह वर्ष) में जितनी तपश्चर्याएँ की, उन तपों को करने का

निर्देश किया गया है।

यह सर्वविदित है कि भगवान महावीर इस अवसर्पिणी काल खण्ड में भरत क्षेत्र के चौबीसवें तीर्थङ्कर थे। उनकी आयु 72 वर्ष की थी, उन्होंने 42 वर्ष संयम धर्म का पालन किया। साढ़े बारह वर्ष पर्यन्त कठोर तपश्चर्या के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान को उपलब्ध किया।

भगवान महावीर अन्तिम शासनाधिपति होने के कारण इस काल खण्ड के भव्य प्राणियों के लिए परम उपकारी हैं। अतः उनके द्वारा आचरित एवं प्ररूपित तपो धर्म हम सभी के लिए अपरिहार्यतः करने योग्य है।

यह अनागाढ़ तप साधु एवं गृहस्थ दोनों के लिए यथाशक्ति परिपालनीय है तथा इस तप को करने से तीर्थङ्कर नाम कर्म का बंध होता है।

भगवान महावीर द्वारा कृत सर्व तपों की संख्या इस प्रकार है –

नवकिरचाउम्मासे, छक्किरदोमासिए उवासी अ।
बारस य मासिआई, बावत्तरिअद्धमासाइं।।1।।
इक्कं किर छम्मासं, दो किर तेमासिए उवासीय।
अड्ढाइज्जाइं दुवे, दो चेव दुविड्ढमासाई।।2।।
भद्दं च महाभद्दं, पडिमं, तत्तो अ सव्वओ भद्दं।
दोचतारिदसेव य दिवसे, ठासी अणुबद्धं।।3।।
गोअरमभिग्गहजुअं खमणं, छम्मासियं च कासीय।
पंचदिवसेहिं ऊणं, अव्वहिओ वच्छ नयरीऐ।।4।।
दसदोअकिरमहप्पा, छाइमुणीएगराइअं पडिमा।
अट्ठमभत्तेण जई, इक्किक्कं चरमरयणीयं।।5।।
दो चेव य छट्ठसए, अउणातीसे उवासिओ भयवं।
कायाइ निच्चभत्तं, चउत्थभत्तं च से आसि।।6।।
तिण्णिसए दिवसाणं, अउणापण्णे उवासिओ कालो।
उक्कुडुअरिसिब्भाणं पि अ, पडिमाणं सए बहुए।।7।।
सव्वंपि तवोकम्मं, अप्पाणयं आसि वीरनामहस्स।
पव्वज्जाए दिवसे पढमे, खित्तंमि सव्वमिणं।।8।।
बारस चेव य वासा, मासा छच्चेव अद्धमासो अ।
वीरवरस्स भगवओ, एसो छउमत्थपरियाओ।।9।।

आचारदिनकर, पृ. 347

9-चातुर्मासी तप, 6-दो मासी तप, 12-मासक्षमण, 72-पक्षक्षमण तप, 1-छ:मासी तप, 2- त्रैमासिक तप, 2-ढ़ाईमासी तप, 2-डेढ़मासी तप, दो दिन की भद्रप्रतिमा, चार दिन की महाभद्र प्रतिमा, दस दिन की सर्वतोभद्र प्रतिमा, पाँच दिन कम छ:मासी तप, 12-अट्ठम (तेला) तथा अट्ठम की अन्तिम रात्रि में ध्यान पूर्वक प्रतिमा का वहन और 229-छट्ठ।

भगवान महावीर ने कभी नित्य आहार किया तो कभी निरन्तर उपवास करते रहे। साढ़े बारह वर्ष एवं पन्द्रह दिनों की अवधि में मात्र 349 दिन एक बार भोजन ग्रहण किया। इसी अवधि में भगवान ने अनेक बार उत्कट प्रतिमाएँ भी धारण की। भगवान के तपोसाधना की विरल विशेषता यह थी कि उन्होंने सभी तप निर्जल किये।

जो साधक इस तरह का यथावत तपो योग नहीं कर सकते हैं वे इतने तप परिमाण की आपूर्ति एकान्तर उपवास से करें। यदि वैसा भी सामर्थ्य न हो, तो इन तपों में से कोई भी तप यथाशक्ति और काल के अनुसार करें।

इस तप के यन्त्र का न्यास निम्न प्रकार है–

चातुर्मासिक आदि सर्व तपों की उपवास संख्या के रूप में गणना							
उ.	1080	उ.	60	उ.	120	उ.	348
उ.	360	उ.	60	उ.	120	उ.	16
उ.	45	उ.	60	उ.	120	उ.	1
उ.	45	उ.	90	उ.	120	(कुल दिन)	
उ.	75	उ.	90	उ.	120	15 वर्ष,	
उ.	75	उ.	120	उ.	180	12 मास,	
उ.	60	उ.	120	उ.	175	6 दिन,	
उ.	60	उ.	120	उ.	458	15 एकान्तरै	
उ.	60	उ.	120	उ.	36	पूर्यते इति।	

उद्यापन – इस तप की समाप्ति पर महावीर प्रभु की बृहत्स्नात्र पूजा एवं अष्ट प्रकारी पूजा करें। उनकी प्रतिमा के समक्ष छहों विगयों से युक्त पकवान एवं फल आदि रखें। साधर्मीवात्सल्य एवं संघपूजा करें।

• गीतार्थ आचरणा के अनुसार इन सर्व तपस्याओं में बीशस्थानक की आराधना निमित्त साथिया आदि सर्व क्रियाएँ निम्नवत करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री महावीरस्वामी नाथाय नमः	20	20	20	20

12. ग्यारह अंग तप

जैन मान्यतानुसार जब तीर्थङ्कर परमात्मा को केवलज्ञान होता है तब वे देव रचित समवसरण में विराजमान होकर साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवी-देवता बारह पर्षदओं के सन्मुख धर्म देशना देते हैं। उस प्रथम उपदेश में उनके मुखारविन्द से श्रुत का अर्थ रूप प्रवाह निःसृत होता है। गणधर (तीर्थङ्कर के प्रमुख शिष्य) उस अर्थ रूप वाणी को सूत्र के रूप में गुम्फित करते हैं। सूत्र रूप में गुंथी गयी वह औपदेशिक वाणी द्वादश अंग (आगम) कहलाती है जो बारह आगम ग्रन्थों के रूप में विभक्त है। आप्त पुरुष की वाणी होने से इसे आगम कहा जाता है तथा यह वाणी उनके आत्मीय अंगों से प्रवाहित होती है। इसलिए सूत्रबद्ध रचना को अंग भी कहा गया है।

वर्तमान में बारहवाँ दृष्टिवाद नामक अंग सूत्र विलुप्त हो चुका है, अतः ग्यारह अंग सूत्र ही विद्यमान हैं। यह तप उन ग्यारह अंग सूत्रों की आराधना निमित्त किया जाता है। ये अंग सूत्र तीर्थङ्कर की साक्षात वाणी स्वरूप हैं। उनकी पूजोपासना करने से आगम बोध की प्राप्ति होती है। ज्ञानावरणी आदि कर्मों का निर्जरण होता है, आत्म अध्यवसायों की विशुद्धि उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है तथा सद्ज्ञान के प्रकाश में जीवन के समस्त अन्धकार (मिथ्यात्व आदि रोग) मिट जाते हैं।

ग्यारह अंग सूत्रों के नाम ये हैं– 1. आचारांग 2. सूत्रकृतांग 3. स्थानांग 4. समवायांग 5. भगवती 6. ज्ञाताधर्मकथा 7. उपासकदशांग 8. अन्तकृत्दशांग 9. अनुत्तरोपपातिकदशांग 10. प्रश्नव्याकरण 11. विपाकसूत्र।

स्वरूपतः आचारांग आदि ग्यारह अंग सूत्रों का तप होने से यह अंग तप कहा जाता है। यह साधुओं एवं गृहस्थों के करने योग्य आगाढ़ तप है।

इस तप की सामान्य विधि इस प्रकार है–

विधि

तहा एगारससु सुद्ध-एगारसीसु, सुयदेवया-पूया पुव्वं।
एगासणगाइ तवो मासे, एगारस कीरइजत्थ सो एगारसंगतवो।।
उज्जमणं पंचमी तुल्लं। नवरं सव्व-वत्थूणि एगारस गुणाइं ति।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 28

यह तप शुभ मास की शुक्ला एकादशी से प्रारम्भ करके ग्यारह महीनों की एकादशियों में एकासना, नीवि, आयम्बिल या उपवास द्वारा किया जाता है।

इस तप-विधि के मूल पाठ में 'एगासणाइ' शब्द का प्रयोग है। वहाँ आदि शब्द से नीवि आदि का ग्रहण करना चाहिए। यदि शक्ति हो तो इस तप में उपवास ही करना चाहिए, वरन सामर्थ्य के अनुसार आयम्बिल आदि तपों का सेवन करना चाहिए। इस प्रकार 11 महीनों की 11 एकादशियों में यह तप पूर्ण होता है।

आचारदिनकर (पृ. 354) के अनुसार यह तप प्रत्येक मास की एकादशी अर्थात कृष्ण-शुक्ल उभय एकादशियों को किया जाता है।

उद्यापन– इस तप का उद्यापन ज्ञान पंचमी-तप की भाँति ही करें, विशेष इतना है कि सभी वस्तुएँ ग्यारह-ग्यारह चढ़ायें। इन दिनों श्रुत देवता की पूजा-भक्ति विशेष रूप से करें।

• गीतार्थ परम्परा का अनुसरण करते हुए प्रत्येक मास की एकादशी के दिन क्रमशः एक-एक पद का जाप निम्नवत करें –

मास	जाप पद	साथिया	खमासमण	कायो.	माला
1.	श्री आचारांग सूत्राय नमः	11	11	11	20
2.	श्री सुयगडांग सूत्राय नमः	11	11	11	20
3.	श्री ठाणांग सूत्राय नमः	11	11	11	20
4.	श्री समवायांग सूत्राय नमः	11	11	11	20
5.	श्री भगवती सूत्राय नमः	11	11	11	20
6.	श्री ज्ञाताधर्मकथांग सूत्राय नमः	11	11	11	20
7.	श्री उपासकदशांग सूत्राय नमः	11	11	11	20
8.	श्री अन्तकृद्दशांग सूत्राय नमः	11	11	11	20
9.	श्री अनुत्तरोववाई सूत्राय नमः	11	11	11	20
10.	श्री प्रश्नव्याकरण सूत्राय नमः	11	11	11	20
11.	श्री विपाक सूत्राय नमः	11	11	11	20

13. द्वादशांग (बारह अंग) तप

यद्यपि बारहवाँ अंग व्युच्छिन्न हो चुका है फिर भी श्रुत रूप होने से भूत द्रव्य निक्षेप की अपेक्षा आराध्य है। यह तप उसी दृष्टिकोण को लक्षित करके कहा गया है।

इस तप के माध्यम से भगवान महावीर के प्रथम उपदेश रूप द्वादशांग श्रुत का आराधन किया जाता है। इस तप के फल से अपूर्व श्रुत की प्राप्ति होती है तथा यह चेतना जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाती है। इस तप की आराधना साधु एवं गृहस्थ उभय साधकों को करनी चाहिए।

इस तप साधना का निर्देश विधिमार्गप्रपा में ही प्राप्त होता है। तदनुसार इसकी सामान्य विधि यह है–

एवं बारससु सुद्धबारसीसु, दुवाल सांगागहण तवो।
उज्जवणे पुण बारस, गुणाणि वत्थूणि।।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 28

यह तप शुभ मास की शुक्ल पक्षीय द्वादशी से प्रारम्भ कर बारह मास तक शुक्ल द्वादशियों में एकाशना आदि के द्वारा किया जाता है।

इस विधि के मूल पाठ में किसी भी तप विशेष का उल्लेख नहीं है। वह पूर्व कथित 'ग्यारह अंग तप' के मूल पाठ से ग्रहण करना चाहिए क्योंकि ये दोनों ही द्वादशांग श्रुत से सम्बन्ध रखते हैं। वहाँ एकासन शब्द में आगत 'आदि' शब्द से नीवि, आयंबिल अथवा उपवास का अभिप्राय है। यह तप बारह महीनों (एक वर्ष) में कुल 12 उपवास द्वारा पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप को महिमा मण्डित करने के भाव से तप की समाप्ति पर ज्ञान पंचमी तप के अनुसार उत्सव-महोत्सव करें। विशेष इतना है कि ज्ञानादि से सम्बन्धित सर्व सामग्री बारह-बारह चढ़ायें।

• इस तप के दिन द्वादश श्रुत का जाप करते हुए अरिहन्त पद की आराधना करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
दुवालसंगीणं नमः	12	12	12	20

14. चतुर्दशपूर्व तप

यहाँ पूर्व शब्द अथाह ज्ञान का सूचक है। जैन शास्त्रों के अनुसार सम्पूर्ण ज्ञान चौदह पूर्वों में समाहित हो जाता है। 14 पूर्वों के अतिरिक्त कोई ज्ञान नहीं है। तीर्थङ्कर, गणधर, पूर्वाचार्य आदि चौदह पूर्व के धारक होते हैं यानि उनमें समग्र ज्ञान का स्रोत प्रवाहित होता रहता है। द्रव्य दृष्टि से प्रत्येक आत्मा में अनन्त ज्ञान है, किन्तु पर्याय दृष्टि से किन्हीं जीवों में वह किञ्चित प्रकट है, किन्हीं में सर्वथा अप्रकट है तो कुछ में सर्वथा प्रकट है। जिनमें ज्ञान का सर्वांश प्रकट हो जाता है, वह चौदह पूर्व का धारक होता है। एक पूर्व के समकक्ष ज्ञान की तुलना इस प्रकार की गयी है–

एक हाथी परिमाण लम्बा, चौड़ा एवं गहरा कुआँ खुदवाकर उसमें सूखी स्याही ठूँस-ठूँस कर भर दी जाये, फिर स्याही को द्रवित कर उससे आगम लिखना प्रारम्भ करें, जितने ग्रन्थ लिखे जा सकें उतना ज्ञान एक पूर्वधर को होता है। आगे इसी तरह चौदह तक दुगुनी-दुगुनी संख्या बढ़ाते हुए चौदह पूर्वों

के ज्ञान का परिमाप कर लेना चाहिए।

पूर्वाचार्यों ने चौदह पूर्व को एक विशिष्ट नाम की संज्ञा प्रदान की है। इस तप के माध्यम से उन 14 पूर्वों की सम्यक् आराधना की जाती है। जिससे अक्षुण्ण श्रुत की प्राप्ति होती है। यह तप ग्यारह अंग और बारह अंग की भाँति सद्ज्ञान से ही सम्बन्धित है।

श्रमण एवं गृहस्थ साधकों को यह तप करना चाहिए। वर्तमान में यह तप बहु प्रचलित है। विधिमार्गप्रपा में इसकी विधि निम्न है –

विधि

चउदससु सुद्धचउद्दसीसु चउद्दसपुव्वाराहण तवा।

विधिमार्गप्रपा., पृ. 28

शुक्लपक्षे तपः कार्यं, चतुर्दश-चतुर्दशी।
चतुर्दशानां पूर्वाणां, तपस्तेन समाप्यते।।

आचारदिनकर, पृ. 358

शुक्लपक्ष की चतुर्दशी के दिन प्रारम्भ कर चौदह मास तक शुक्ल चतुर्दशियों में यथाशक्ति एकाशन आदि तप करके यह तप पूर्ण करें।

यहाँ मूल पाठ में एकाशन आदि तप का निर्देश नहीं है, किन्तु इस तप का पूर्व विधियों से सम्बन्ध चला आ रहा है। इस कारण पूर्ववत इस तप में भी एकाशन आदि का उल्लेख कर दिया है।

वर्तमान सामाचारी में यह तप किसी भी शुभ दिन से प्रारम्भ कर चौदह उपवास एकान्तर पारणा पूर्वक अथवा अपनी अनुकूलता के अनुसार पूर्ण किये जाते हैं।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर ज्ञान पंचमी की भाँति चौदह-चौदह पुस्तकादि द्वारा ज्ञान पूजा करें। साधर्मीवात्सल्य एवं संघपूजा करें।

• जीत आचरणा के अनुसार प्रत्येक मास की शुक्ला चतुर्दशी के दिन क्रमशः एक-एक पद का जाप आदि निम्न रीति से करें–

मास	जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1	श्री उत्पादपूर्वाय नमः	14	14	14	20
2	श्री आग्रायणीपूर्वाय नमः	26	26	26	20
3.	श्री वीर्यप्रवादपूर्वाय नमः	16	16	16	20
4.	श्री अस्तिप्रवादपूर्वाय नमः	28	28	28	20
5	श्री ज्ञानप्रवादपूर्वाय नमः	12	12	12	20
6	श्री सत्यप्रवादपूर्वाय नमः	2	2	2	20
7	श्री सत्यप्रवादपूर्वाय नमः	16	16	16	20
8.	श्री कर्मप्रवादपूर्वाय नमः	30	30	30	20
9.	श्री प्रत्याख्यानपूर्वाय नमः	20	20	20	20
10.	श्री विद्याप्रवादपूर्वाय नमः	15	15	15	20
11.	श्री कल्याणप्रवादपूर्वाय नमः	12	12	12	20
12.	श्री प्राणावायपूर्वाय नमः	13	13	13	20
13.	क्रियाविशालपूर्वाय नमः	30	30	30	20
14.	लोकबिन्दुसारपूर्वाय नमः	25	25	25	20

15. ज्ञान पंचमी तप

जैन मत में दूज, अष्टमी आदि कुछ तिथियों का विशेष महत्त्व है। इसके पीछे आध्यात्मिक और वैज्ञानिक कारण माने गये हैं तथा उन्हें विशिष्ट आराधनाओं के साथ भी जोड़ दिया गया है। तदनुसार पंचमी को ज्ञान आराधना की तिथि मानते हैं। यह मान्यता सर्व परम्पराओं में समान है। भारतीय संस्कृति की सभी धाराएँ नए ज्ञान का अर्जन करने हेतु इसी तिथि को श्रेष्ठ मानती हैं। अतः इस दिन सम्यक् ज्ञान की विशिष्ट आराधना करनी चाहिए। यह तप सम्यक् ज्ञान की उपासना निमित्त सर्व साधकों के लिए अवश्य करणीय है। वर्तमान में इस तप की आराधना बहुलता से देखी जाती है।

विधिमार्गप्रपा आदि ग्रन्थों में इस तप की विस्तृत चर्चा की गयी है।

प्रथम रीति

पंचाम्यां तपस्तत्र, चतुर्मासी श्रावण-भाद्रपद-आश्विन-कार्तिक-पौष-चैत्रान्वर्जयित्वा पुरुषो, महिला वा जिनभवने।

आचारदिनकर, पृ. 359

तहा नाण पंचमिं छः अकम्ममासे वज्जित्ता मग्गसिर-माह-फग्गुण-वइसाई-जेठ असाडेसु सुक्क-पंचमीए जिणनाइ-पूया-पुव्वं त्यग्गविणि वोसिय-महत्थ-पोत्थयं विहिय पंचवण्ण कुसुमोवयारे अखण्ड कहया-भिलिहिय पसत्थ-सत्थियो घय-पडिपुन्न-पबोहिय-रत्त-पंच वट्टा पईवो फल-बलि-विहाण-पुव्वं पडिवज्जई। उववास-बंभचेर-विहाणेण एवं पडिमासं पंच मास करणे लहुई।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 26

ज्ञान पंचमी-तप श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, पौष एवं चैत्र- इन षट् मासों को वर्जित कर मृगशीर्ष, माघ, फाल्गुन, वैशाख, जेठ, आषाढ़- इन छह महीनों में से किसी भी महीने की शुक्ला पंचमी से शुरू करें।

उस दिन आराधना करने वाला व्यक्ति जिन मन्दिर में जाकर उत्तम जाति के विविध पुष्पों द्वारा परमात्मा की पूजा करें। उसके बाद पुस्तक रूपी ज्ञान की स्थापना कर विधिपूर्वक उसकी पुष्प आदि से पूजा करें। उसके आगे अखण्ड अक्षतों से स्वस्तिक बनाएं तथा उसके ऊपर घृत पूर्ण पाँच बत्ती वाला देदीप्यमान दीपक रखें। उसके समीप फल, नैवेद्य आदि चढ़ाएँ। तत्पश्चात स्वयं के मस्तक पर चन्दन और अक्षत लगाएं फिर गुरु के पास जाकर शुक्ल पंचमी तप प्रारम्भ करें। गुरु के वरद हस्त से स्वयं के सिर पर वासचूर्ण डलवायें। उसके बाद ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए पाँच महीनों तक प्रत्येक पंचमी को उपवास करें।

देह बल की न्यूनाधिकता एवं रुचि की अपेक्षा जैनाचार्यों ने इस तप के कई प्रकार बतलाए हैं। आचारदिनकर में लघु पंचमी और बृहत्पंचमी ऐसे दो विभाग किये गये हैं तथा विधिमार्गप्रपा में इसके तीन प्रकारान्तर बताये गये हैं। वह विवरण इस प्रकार है–

द्वितीय रीति

पुण बिआसणे पंचसु पंचमीसु इक्कासणे, तओ पंचसु निव्वीए, तओ पंचसु आयंबिले, तओ पंचसु उववासे कुणंति ति।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 26

लघुपंचम्यां द्वयशनादि, पंचमासोत्तरं तपः कृत्वा,
तत्पंचविधं समाप्तौ, समाप्यते मास पंचविंशत्या।

आचारदिनकर, पृ. 359

विधिमार्गप्रपादि के अनुसार प्रथम पाँच माह की शुक्ल पंचमी के दिन बीयासना करें, फिर दूसरे पाँच माह की शुक्ल पंचमी को एकासना करें, फिर तीसरे पाँच माह की शुक्ल पंचमी के दिन नीवि करें, फिर चौथे पाँच माह की शुक्ल पंचमी को आयम्बिल करें एवं पाँचवें पाँच मासों की शुक्ल पंचमी को उपवास करें।

इस प्रकार उक्त रीति से यह तप पच्चीस माह में पूरा होता है। इसे लघु पंचमी-तप कहते हैं।

तीसरी रीति के अनुसार

केइ पुण एयं जहन्नं पंचमासाहियपंचहिं वरिसेहिं।
मज्झिमं तु दसमासाहिं वरिसेहिं।
उक्किट्ठं पुण जावज्जीवं ति भणंति।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 26

किसी मत से जघन्यतः यह तप पाँच वर्ष एवं पाँच मास तक उपवास अथवा एकाशन से करे। मध्यम रूप से यह तप दस वर्ष एवं दस मास तक उपवास अथवा एकाशन से करें।

उत्कृष्ट रूप से इस तप की आराधना यावज्जीवन करें।

स्पष्ट है कि यह तप जघन्य से पाँच वर्ष एवं पाँच मास, मध्यम से दस वर्ष एवं दस माह तथा उत्कृष्ट से जीवन पर्यन्त किया जाता है।

चौथी रीति के अनुसार

एवमेव तपो वर्ष, पंचकं कुर्वतां नृणाम्।
बृहत्पंचमिकायास्तु तपः संपूर्यते किल।।

आचारदिनकर, पृ. 360

इस तप के प्रथम वर्ष की शुक्ल पंचमी के दिनों में बियासना करें, दूसरे वर्ष की शुक्ल पंचमी दिनों में एकासना करें, तीसरे वर्ष की शुक्ल पंचमियों में नीवि करें, चौथे वर्ष की शुक्ल पंचमी के दिनों में आयम्बिल करें और पाँचवें वर्ष की शुक्ल पंचमी दिनों में उपवास करें- इस तरह यह तप पाँच वर्ष में पूर्ण होता है। इसे बृहत्पंचमी तप कहते हैं।

वर्तमान में सामान्यतया यह तप पाँच वर्ष और पाँच मास तक किया जाता है। कुछ जन इस तप की आराधना जीवन पर्यन्त भी करते हैं तथा शक्तिहीन पाँच महीना भी करने की भावना रखते हैं।

उद्यापन– इस तप का उद्यापन तप के आदि, मध्य या अन्त में करना चाहिए। उस दिन अपने वैभव के अनुसार जिनेश्वर परमात्मा की पूजा करें। पाँच-पाँच प्रकार के पकवान, फल एवं मुद्राएँ चढ़ाएं। आगम पुस्तक के आगे कवली, डोरी, रूमाल, पींछी, पाटी, नवकारवाली, वासक्षेप का बटुआ, कलम, दवात, मुखवस्त्रिका,छुरी, कैंची, कम्बली, दण्ड, ठवणी, दीपक, अंगलूहणा, चन्दन, वासचूर्ण, चामर, पुस्तक, वेष्टन, लेखन-साधन, वासकुंपी, स्थापनाचार्य, कलश, धूपकुडची आदि सभी वस्तुएँ पाँच-पाँच की संख्या में रखें। अष्टप्रकारी पूजा करें।

यदि बृहद् रूप में उद्यापन करना हो तो ज्ञान आदि की सर्व सामग्री पच्चीस गुणा अर्पित करनी चाहिए, ऐसा विधिमार्गप्रपाकार का अभिमत है। साधर्मीवात्सल्य एवं संघपूजा का सामर्थ्य जुटायें।

- गीतार्थ आज्ञानुसार इस तप में निम्न क्रियाएँ करनी चाहिए–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो नाणस्स	51/5	51/5	51/5	20

16. चतुर्विध संघ तप

अर्हत धर्म में चतुर्विध संघ का गौरवपूर्ण स्थान है। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका इन चारों का समन्वित रूप चतुर्विध संघ कहलाता है। इस संघ के अवलम्बन से ही धर्म रूपी रथ का पहिया निरन्तर प्रवाहमान रहता है। तीर्थङ्कर परमात्मा भी देशना देने से पूर्व 'नमो तित्थस्स' कहकर चतुर्विध संघ को नमन करते हैं। जिस संघ को तीर्थङ्कर जैसे उत्कृष्ट पुण्य पुरुष भी पूजते हैं वह भव-भवान्तर में मुझे भी प्राप्त होता रहे इस उद्देश्य से यह तप किया जाता है।

इस तप के करने से तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन एवं तीर्थङ्कर पद की प्राप्ति होती है। यह तप साधु एवं गृहस्थ को तीन योगों की एकाग्रता पूर्वक करना चाहिए।

विधि

उपवास-द्वयं कृत्वा, ततः खरस-संख्यया ।
एकान्तरोपवासैश्च, पूर्ण संघ-तपो भवेत् ।।

आचारदिनकर, पृ. 360

इस तप में सर्वप्रथम बेला करके पारणा करें। तदनन्तर साठ उपवास एकान्तर पारणा से करें। इस प्रकार 62 उपवास एवं 60 पारणा ऐसे कुल 122 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के उद्यापन में यथाशक्ति साधर्मीवात्सल्य एवं संघपूजा करें।

• प्रचलित विधि के अनुसार इस तपश्चरण में निम्न कायोत्सर्ग आदि करें –

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो तित्थस्स	62/25	62/25	62/25	20

17. संवत्सर तप

संवत्सर शब्द वर्ष का सूचक है। एक वर्ष भर के लिए जो तप किया जाता है उसे संवत्सर कहते हैं। वर्तमान में इसी तप को वर्षीतप कहा जाता है। प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव ने यह तप किया था। इतिहास कहता है कि प्रभु ऋषभ प्रतिदिन भिक्षार्थ जाते थे, किन्तु पूर्वोपार्जित निकाचित कर्मों के उदय से उन्हें आहार प्राप्ति नहीं होती थी, अतः स्वयमेव उपवास हो जाता था और उस स्थिति में वे समत्वयोग की साधना में तन्मय हुए अपने मनोबल को दृढ़ से दृढ़तर बना लेते थे, इसलिए उनका असहज तप भी सहज बन जाता था।

यद्यपि प्रभु को यह ज्ञात था कि मुझे एक वर्ष तक आहार की प्राप्ति नहीं होगी, फिर भी विषम परिस्थितियों में स्वयं को तोलने एवं अनभिज्ञ भिक्षा-विधि से परिचित करवाने के प्रयोजन से भिक्षाटन करते थे। भगवान ऋषभदेव 400 दिन लगातार निराहार रहे। जब भोगान्तराय कर्म का क्षय हुआ तब हस्तिनापुर

में अक्षय तृतीया के दिन प्रथम पारणे के रूप में इक्षुरस की प्राप्ति हुई। यह तप इसी उपलक्ष्य में किया जाता है। वर्तमान में भगवान आदिनाथ जैसा शरीर-संघयण न होने से एकान्तर उपवास से यह तप करते हैं। प्रभु आदिनाथ का यह तप तेरह मास और ग्यारह दिनों में पूर्ण हुआ था, वर्तमान परिपाटी में लगभग उससे दुगुनी अवधि परिपूर्ण होती है।

इस तप के फल से निकाचित कर्मों का क्षय होता है। आज इस तप की प्रसिद्धि दिनानुदिन बढ़ती जा रही है। सामूहिक रूप से हजारों आराधक इस तपाराधना से जुड़े हुए हैं। प्रतिवर्ष सिद्धाचल एवं हस्तिनापुर तीर्थ पर हजारों की संख्या में इस तप का पारणा होता है।

इसकी सामान्य विधि यह है –

चित्त-बहुल-ट्ठमिओ आरब्भ चत्तारि सया उववासा एगंतराइ कमेण जहा अंगिकारं पूरिज्जंति। तईय वरिस-संतिय-अक्खय-तइयाए संघ-गुरु-साहम्मिय-पूया-पुव्वं पारिज्जंति। उसभसामिचिन्नो। संवच्छरिय तवो।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 29

यह तप चैत्र कृष्णा अष्टमी से प्रारम्भ कर चार सौ उपवास एकान्तर पारणे से किये जाते हैं तथा जिस प्रकार इस तप को अंगीकार करते हैं उसी प्रकार तीसरे वर्ष में अक्षय तृतीया के दिन संघ, गुरु एवं साधर्मी की भक्ति पूर्वक इसे पूर्ण करते हैं।

यह तप करते हुए एकान्तर उपवास के पारणे में बियासना करना चाहिए। इस तप में निरन्तर दो दिन नहीं खाना चाहिए। चतुर्दशी के दिन पारणा नहीं करना चाहिए। चैत्री पूनम, कार्तिक पूनम आदि में बेला करना चाहिए।

कुछ लोग एक वर्ष एकान्तर उपवास करके उसे वर्षीतप मान लेते हैं लेकिन वह किसी तरह से उचित नहीं है, क्योंकि एक वर्ष एकान्तर करने से 400 उपवास पूरे नहीं हो पाते हैं तब उसे वर्षीतप की संज्ञा कैसे दी जा सकती है?

- प्रचलित विधि के अनुसार इस तपश्चर्या काल में निम्न जापादि करने चाहिए–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ ऋषभदेवनाथाय नम:	12	12	12	20

18. संवत्सर तप

सामान्यतया एक वर्ष में जो तप किया जाता है, वह संवत्सर-तप कहलाता है। यहाँ संवत्सर-तप से तात्पर्य वर्षीतप नहीं है। आचार्य वर्धमानसूरि ने इस तप का उल्लेख पाक्षिक आदि आलोचना के सम्बन्ध में किया है। उनके मतानुसार वर्ष भर के अन्तर्गत लगने वाले दोषों से मुक्त होने के लिए जो तप किया जाता है, वह संवत्सर-तप कहा जाता है। इस तप के करने से वर्ष भर में किये गये पापों का क्षय होता है।

विधि

इसकी विधि बतलाते हुए निर्दिष्ट किया है कि पाक्षिक आलोचना (एक पक्ष में लगे हुए दोषों से निवृत्त होने) के लिए प्रत्येक चतुर्दशी को उपवास करें अर्थात बारह महीनों की चौबीस चतुर्दशियों में उपवास करें।

चातुर्मासिक आलोचना के लिए तीन चौमासी को दो-दो उपवास करें तथा संवत्सरी (वर्ष भर) की आलोचना के लिए संवत्सरी के तीन उपवास करें। ऐसे कुल मिलाकर तैंतीस उपवास करें।

इस तप के उद्यापन में साधर्मी वात्सल्य तथा संघ पूजादि करना चाहिए। यह मुनियों एवं गृहस्थों के करने योग्य अनागाढ़ तप है।

इस तप का यन्त्र न्यास यह है –

तप दिन 33	
वर्ष में 24 पक्ष	उपवास 24
कार्तिक चातुर्मास में	उपवास 2
फाल्गुन चातुर्मास में	उपवास 2
आषाढ़ चातुर्मास में	उपवास 2
पर्यूषण पर्व में	उपवास 3

- प्रचलित मान्यतानुसार पूर्वोक्त तप दिनों में अग्रांकित जापादि करें–

जाप	**साथिया**	**खमा.**	**कायो.**	**माला**
संवत्सर तपसे नमः	12	12	12	20

19. बारह मासिक तप

यह तप भगवान ऋषभदेव के तीर्थ में उनके साधुओं द्वारा आचरित तप है। यद्यपि यह तप संवत्सर (वर्षी) तप से ही सम्बन्ध रखता है फिर भी इसे पृथक् दिखाने का प्रयोजन यह है कि भगवान आदिनाथ का संवत्सर तप तेरह मास और ग्यारह दिनों में पूर्ण हुआ था, जबकि उनके शासन में होने वाले मुनियों ने इस तप का आचरण बारह माह पर्यन्त ही किया।

'संवत्सर' का शाब्दिक अर्थ होता है बारह महीना। यहाँ खास उल्लेख्य है कि भगवान आदिनाथ के द्वारा इस तप की आराधना निकाचित भोगान्तराय कर्मों के उदय के कारण की गई जबकि उनके तीर्थकालीन साधु-साध्वियों ने अपने उपकारी प्रभु का अनुसरण करने एवं निकाचित कर्मों का क्षय करने के उद्देश्य से इस तप का आसेवन किया।

ध्यातव्य है कि भगवान ऋषभदेव के तीर्थ में उनके साधुओं द्वारा तीन सौ साठ उपवास निरन्तर किये गये। आचार्य जिनप्रभसूरि ने इसी तप की चर्चा की है।

विधि

एवं उसभसामि तित्थसाहुचिण्णो बारसमासिय-तवो छट्ठेहिं तिहिं तिहिं सएण उववासाणं।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 29

भगवान ऋषभदेव के साधुओं द्वारा आचरित यह बारह मासिक तप तीन सौ साठ उपवास के द्वारा किया जाता है।

आचार्य जिनप्रभसूरि ने इस तप की उत्सर्ग-विधि दर्शायी है। उन्होंने 360 उपवासों को एकान्तर पारणा द्वारा करने का कहीं निर्देश नहीं किया है, परन्तु वर्तमान में वैसा सामर्थ्य न होने से तप रुचिवन्त साधक इस तप को एकान्तर पारणा करते हुए दो वर्ष में पूरा करते हैं।

- बारह मासी तप को सार्थक करने के लिए तपश्चर्या काल में निम्न आराधनाएँ अवश्य करें–

जाप	साथिया	खमा.	लोगस्स	माला
ॐ श्री आदिनाथाय नमः	12	12	12	20

20. अष्टमासिक तप

जैन साहित्य के अनुसार प्रथम तीर्थङ्कर के शासन काल में उत्कृष्ट तप एक वर्ष का था, मध्य के बाईस तीर्थङ्करों के शासन काल में उत्कृष्ट तप आठ मास का था और अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर के तीर्थ में सर्वोत्कृष्ट तप छह मास का कहा गया है।

ध्यातव्य है कि तीर्थङ्कर जितना उत्कृष्ट तप कर सकते हैं, उनके शासनवर्ती साधु-साध्वी उससे बढ़कर तप नहीं कर सकते क्योंकि तीर्थङ्कर से बढ़कर उनका सामर्थ्य नहीं होता।

भगवान ऋषभदेव ने कठोरतम एक वर्ष की तपोसाधना की तो उनके तीर्थस्थ साधु-साध्वी उतना ही तप कर पाये। इसी तरह बीच के बाईस तीर्थङ्करों के आचार-विचार समान होने से उन सभी ने अधिकतम आठ मास का तप किया तो उनके शासन काल में सर्वोत्कृष्ट तप आठ मास का ही कहलाया। इसी भाँति छह मासी तप के विषय में भी समझना चाहिए।

आचार्य जिनप्रभसूरि ने प्रस्तुत तप में अष्टमासी तप की चर्चा करते हुए कहा है कि

विधि

बावीस-तित्थयरसाहुचिण्णो, अट्ठमासियतवो ।
चालीसाहिय - दुसय - उववासेहिं ।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 29

भगवान अजितनाथ से भगवान पार्श्वनाथ तक के बाईस तीर्थङ्करों के साधु-साध्वियों द्वारा आचीर्ण यह अष्टमासिक तप दो सौ चालीस उपवासों के द्वारा किया जाता है।

आचार्य जिनप्रभसूरि ने पूर्ववत इस तप की भी औत्सर्गिक विधि का ही निरूपण किया है, किन्तु वर्तमान में उस तरह का संघयण बल न होने से इस तप सम्बन्धी उपवासों को एकान्तर पारणा करते हुए पूरा किया जा सकता है।

उद्यापन – इस तप के उद्यापन में जिस तीर्थङ्कर के आश्रित तप किया हो उसकी स्नात्रपूजा पूर्वक अष्ट प्रकारी पूजा करें तथा 240 मोदक चढ़ायें।

• प्रचलित विधि के अनुसार इस तपाराधना काल में निम्न जाप आदि करने चाहिए–

जाप – जिस तीर्थङ्कर के आश्रित तप प्रवर्त्तमान हो, उस नाम के साथ 'नाथाय नमः' जोड़ें। जैसे– पार्श्वनाथाय नमः

साथिया	खमा.	कायो.	माला
12	12	12	20

21. छहमासिक तप

भगवान महावीर के आश्रित 180 उपवास करने से छहमासी तप होता है। इस कालखण्ड के अन्तिम शासनाधिपति भगवान महावीर ने अपने जीवन काल में सबसे उत्कृष्ट छह मासिक तप किया था। उन्होंने 180 उपवास लगातार किये, किन्तु इस पंचम काल में संघयण बल एवं मनोबल उतना सक्षम न होने के कारण इतने उपवास निरन्तर करना सम्भव नहीं है अतः 180 उपवास एकान्तर बियासना के पारणा पूर्वक किये जाते हैं। कुछ जन छट्ठ-छट्ठ अथवा अट्ठम-अट्ठम के द्वारा भी 180 उपवास की पूर्ति करते हैं।

विधि

विधिमार्गप्रपाकार ने इस विधि में 180 उपवास का ही निदर्शन किया है। उन्होंने इस तप की भी उत्सर्ग विधि दिखलायी है। विधिमार्गप्रपा का मूल पाठ इस प्रकार है –

वद्धमाण-सामि-तित्थ-साहु-चिण्णो,
असिय-सएण-उववासाणं छम्मासियतवो

विधिमार्गप्रपा, पृ. 29

अन्तिम तीर्थङ्कर वर्धमान स्वामी के तीर्थ में उनके साधुओं द्वारा आचरित यह छहमासी तप एक सौ अस्सी उपवास के द्वारा किया जाता है।

तपोरत्नमहोदधि के अनुसार छहमासी तप छट्ठ (बेला) से शुरू करना चाहिए और तप की पूर्णाहुति के पहले भी छट्ठ करना चाहिए। छट्ठ के पारणे में भी दो दिन एकाशना करना चाहिए। यदि चतुर्दशी के दिन पारणा आता हो तो उस दिन बेला करना चाहिए। इस प्रकार इस तप में 90 उपवास होते हैं।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर तीर्थङ्कर परमात्मा की स्नात्रपूजा करके 180-180 की संख्या में लड्डू, फल, पुष्प आदि चढ़ाएँ तथा संघ, गुरु और साधर्मी की यथाशक्ति भक्ति करें।

• प्रचलित व्यवहार के अनुसार इस तप साधना की विशुद्धि हेतु निम्नलिखित जाप आदि करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री महावीरस्वामी नाथाय नमः	12	12	12	20

22. पुण्डरीक तप

भगवान ऋषभदेव के प्रथम गणधर का नाम पुण्डरीक था। यह पुण्डरीक भरत-चक्रवर्ती के पुत्र एवं भगवान आदिनाथ के पौत्र थे। उनका मूल नाम ऋषभसेन था। भगवान ऋषभदेव ने केवलज्ञान होने के पश्चात प्रथम उपदेश दिया, तब उस देशना को सुनकर भरत चक्रवर्ती के ऋषभसेन आदि पाँच सौ पुत्रों एवं सात सौ पौत्रों ने एक साथ दीक्षा ग्रहण की। इस प्रथम देशना में पुण्डरीक को प्रमुख साधु, ब्राह्मी को प्रमुख साध्वी, श्रेयांस कुमार को प्रमुख श्रावक और सुन्दरी को प्रमुख श्राविका के रूप में व्रत प्रदान कर चतुर्विध संघ की स्थापना की।

यह तप पुण्डरीक स्वामी के आराधनार्थ किया जाता है, इसलिए इसे पुण्डरीक तप कहते हैं। भगवान आदिनाथ के प्रथम गणधर पुण्डरीक स्वामी ने पाँच करोड़ मुनिवरों के साथ चैत्री पूर्णिमा के दिन सिद्धाचल तीर्थ पर सिद्धि प्राप्त की थी। अतः यह तप पूर्णिमा तिथि को आश्रित करके किया जाता है।

इस तप के फल से मोक्ष-प्राप्ति एवं रोग-शोक-सन्तापादि का निवारण होता है। यह आगाढ़ तप श्रमण और गृहस्थ दोनों के लिए करणीय है। इस तप के सम्बन्ध में दो विधियाँ प्राप्त होती हैं।

प्रथम प्रकार

तहा चित्तपुन्नमासीए आरब्भ पुंडरीय-गणहर-पूया-पुव्व-मुववासाइणमन्नतरं तवो दुवालय-पुन्निमाओ पुंडरीय तवो।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 26

विधिमार्गप्रपा के अनुसार यह तप चैत्री पूर्णिमा को प्रारम्भ कर पुण्डरीक गणधर की पूजा पूर्वक उपवास आदि के द्वारा बारह पूर्णमासियों में किया जाता है।

इस विधि से स्पष्ट होता है कि यह तप बारह पूर्णिमा पर्यन्त एक वर्ष तक किया जाता है। उसमें यथाशक्ति उपवास, आयंबिल, नीवि या एकासना कोई भी तप कर सकते हैं।

वर्तमान में यह तप उपवास या एकासना के द्वारा बारह चैत्री पूर्णिमाओं में किया जाता है।

एक वर्ष की बारह पूर्णिमाओं में तप करने की परिपाटी प्रचलित नहीं है।

दूसरा प्रकार

सप्त-वर्षाणि वर्षं वा पूर्णमास्यां यथाबलं।
कुर्वतां पुंडरीकाख्यं, तपस्तत्संज्ञकोच्यते।।

आचारदिनकर, पृ. 355

आचारदिनकर के अनुसार यह तप चैत्री पूर्णिमा से प्रारम्भ करके यथाशक्ति सात वर्षों में अथवा एक वर्ष में पूरा किया जाता है।

इस विधि से सूचित होता है कि आचार्य वर्धमानसूरि ने देह सामर्थ्य को ध्यान में रखते हुए इसके दो विकल्प प्रस्तुत किये हैं। यदि सामर्थ्य हो तो सात वर्ष पर्यन्त प्रत्येक पूर्णिमा को उपवासादि निर्धारित तप के द्वारा इसकी आराधना करनी चाहिए, अन्यथा पूर्ववत एक वर्ष पर्यन्त इसकी आराधना करें।

उद्यापन – इस तप के प्रारम्भ दिन में पुण्डरीक स्वामी प्रतिमा की यथाशक्ति पूजा करें। आचार्य वर्धमानसूरि (आचारदिनकर पृ. 356) के मतानुसार केशरिया वस्त्र पहनकर सुगन्धित हल्दी के उबटन से पुण्डरीक स्वामी की पूजा करें। इस तप के पूर्ण होने पर स्त्री अपनी ननद की पुत्री को तथा पुरुष अपनी बहन की पुत्री को अत्यधिक स्वादिष्ट भोजन करवाकर हल्दी रंग के दो केशरिया वस्त्र, ताम्बूल, कंकण, नूपुर आदि देवें। साधु-साध्वियों को रजोहरण, पात्र, प्रचुर मात्रा में आहार आदि का दान करें तथा सात श्रावकों के घरों पर प्रचुर मात्रा में मिष्ठान्न भेजें।

• गीतार्थ परम्परानुसार इस तप के दिनों में निम्न क्रियाएँ अवश्य करनी चाहिए–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री पुण्डरीक गणधराय नमः	150	150	150	20

23. नन्दीश्वर तप

जैन भूगोल के मन्तव्यानुसार यह सम्पूर्ण विश्व चौदह राजु परिमाण है। यह तीन भागों में विभक्त है– 1. ऊर्ध्वलोक 2. मध्यलोक और 3. अधोलोक। ऊर्ध्वलोक में मुख्य रूप से देवताओं और सिद्ध आत्माओं का वास है।

अधोलोक में मुख्यत: नारकी जीवों एवं भवनपति देवों का निवास है तथा मध्यलोक में प्रमुख रूप से तिर्यञ्च जीवों, मनुष्यों और ज्योतिष्क एवं व्यन्तर-वाणव्यन्तर देवों का निवास है।

मध्यलोक को तिरछा लोक भी कहते हैं। यह लोक असंख्यात द्वीप-समुद्रों से आवृत्त है। यहाँ प्रथम जम्बूद्वीप है और अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र है। उसके बाद अलोकाकाश है जहाँ आकाश के सिवाय और कुछ नहीं है। हम जम्बूद्वीप में रहते हैं, यहाँ से आठवाँ नन्दीश्वर द्वीप है।

नन्दी अर्थात वृद्धि उसमें भी 'ईश' अर्थात श्रेष्ठ यानि सर्व प्रकार की श्रेष्ठ ऋद्धि-समृद्धि युक्त। नन्दीश्वर द्वीप समस्त प्रकार की ऋद्धि-समृद्धियों से परिपूर्ण है।

यहाँ अञ्जनादि पर्वतों, बावड़ियों, वनों आदि पर 52 शाश्वत जिनालय हैं। प्रत्येक जिन चैत्य में चार-चार शाश्वत प्रतिमाएँ हैं और वे सभी रत्न-स्वर्णादि से जटित हैं।

तीर्थङ्करों के जन्म, दीक्षा आदि कल्याणकों के अवसर पर तथा शाश्वत अट्ठाइयों के दिनों में देवी-देवता, इन्द्रादि यहाँ आकर अट्ठाई महोत्सव करते हैं। लब्धिधारी चारणमुनि भी इस तीर्थ की यात्रार्थ आया करते हैं। सामान्य मानव नन्दीश्वर तीर्थ तक नहीं जा सकता। वह मात्र अढ़ाई द्वीप में ही जन्म लेता है और वहीं मृत्यु पाता है। तब यहाँ रहे हुए मनुष्यों के द्वारा वहाँ के शाश्वत चैत्यों की आराधना कैसे की जाय? एतदर्थ गीतार्थों ने इस तप की स्थापना की है।

आचार्यों के अभिमत से इस तप के द्वारा आठ भव में मोक्ष प्राप्त होता है। यह तप मोक्ष-प्राप्ति का पारम्परिक कारण है, अत: श्रमण एवं गृहस्थ दोनों को यह तप अनिवार्य करना चाहिए। विधिमार्गप्रपा आदि में इस तप से सम्बन्धित निम्न तीन प्रकार प्राप्त होते हैं–

प्रथम रीति

तहा अमावसाए, मयंतरेण दीवूसवामावस्याए, पडिलिहिय नंदीसर जिणभवन-पूया-पुव्वं उववासाइं सत्तवरिसाणि नंदीसर-तवो।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 26

आचार्य जिनप्रभसूरि के मतानुसार यह नन्दीश्वर तप किसी भी अमावस्या तिथि से अथवा मतान्तर से दीपावली की अमावस्या से प्रारम्भ कर नन्दीश्वर

पट्ट की पूजा पूर्वक प्रति अमावस्या को उपवास, आयंबिल, नीवि या एकाशन करते हुए सात वर्षों में पूरा किया जाता है।

यहाँ विधिमार्गप्रपाकार के अनुसार यह तप किसी भी शुभ दिन की अमावस्या से प्रारम्भ कर उसमें यथाशक्ति उपवास आदि कोई भी तप कर्म किया जा सकता है जबकि आचारदिनकर के कर्त्ता ने उपवास पर विशेष बल दिया है। इसके स्पष्टीकरणार्थ आचार दिनकर का पाठ है–

''उपवासैर्वा स्वशक्तित आचाम्लैक भक्तनिर्विकृतिकैर्वा तपः आरभ्यते''

उपवास से अथवा स्वशक्ति के अनुसार आयंबिल, एकासना अथवा नीवि से भी यह तप प्रारम्भ कर सकते हैं।

आचार्य वर्धमानसूरि के अनुसार यह तप दीपावली की अमावस्या से प्रारम्भ कर यथाशक्ति सात वर्ष अथवा एक वर्ष तक किया जाता है। इस तरह आचार दिनकर में इस तप के दो विकल्प प्रस्तुत किए गए हैं।

नन्दीश्वर तप का दूसरा प्रकार निम्न है–

दूसरी रीति

नंदीश्वरतपो दीपोत्सव, दर्शादुदीरितः ।
सप्तवर्षाणि वर्षं वा, क्रियते च वदर्चने ।।

आचारदिनकर, पृ. 355

नन्दीश्वर का तप दीपावली की अमावस्या से प्रारम्भ कर सात वर्ष अथवा एक वर्ष में उसकी पूजा द्वारा पूर्ण किया जाता है।

यहाँ सात वर्ष तप करने का जो निर्देश किया है उसमें भी मतान्तर इस प्रकार है – दीपावली की अमावस्या को शुरू करके तेरह अमावस्या तक यह तप करें। फिर दूसरी दीपावली से शुरू करके तेरह अमावस्या तक यह तप करें। इस तरह चार बार करने से यह तप सात वर्षों में पूर्ण होता है। इसमें 52 उपवास होते हैं।

तीसरी रीति

सांप्रतं प्रवाहादेक वर्षं वा ।

आचारदिनकर, पृ. 355

आचार्य वर्धमानसूरि ने वर्तमान लोक प्रवाह की अपेक्षा एक वर्ष पर्यन्त तप करने का भी विधान किया है।

इस समय के प्रवाह के अनुसार भी मतान्तर यह है कि दीपावली की अमावस्या को छट्ठ (बेला) करें। फिर प्रत्येक पूर्णिमा तथा अमावस्या को बेला करें। इस प्रकार तेरह महीनों में 26 छट्ठ के 52 उपवास होते हैं।

उद्यापन – इसमें दीपावली की अमावस्या के दिन पट्ट पर नन्दीश्वर का चित्र बनाएँ। यथाशक्ति उसकी पूजा करें। तप उद्यापन के दिन बृहत्स्नात्र-विधि से परमात्मा की पूजा करके आलेखित नन्दीश्वर-द्वीप के आगे बावन-बावन विविध प्रकार के मोदक, पुष्पादि चढ़ायें। साधर्मीवात्सल्य, साधु-भक्ति एवं संघपूजा करें।

- प्रचलित विधि के अनुसार इस तप के दिनों में मुख्य रूप से अरिहन्त पद की आराधना करें तथा निम्न जाप का 2000 बार स्मरण करें।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री नन्दीश्वरद्वीप तपसे मनः	12	12	12	20

24. माणिक्य प्रस्तारिका तप

मणि के प्रकाश की तरह इस तप का विस्तार होने से यह माणिक्य प्रस्तारिका तप कहलाता है। यह साधुओं एवं श्रावकों के करने योग्य आगाढ़ तप है। यह तप निर्मल गुणों की प्राप्ति के लिए किया जाता है। जैसे माणक निर्मल होता है वैसे ही इस तप के द्वारा निर्मल भावों का उदय होता है।

आचारदिनकर के उल्लेखानुसार इसकी तप-विधि यह है –

माणिक्य-प्रस्तारी आश्विन, शुक्लस्य पक्ष संयोगे।
आरभ्यैकादशिकां राकां, यावद्विदध्याच्च ।।

आचारदिनकर, पृ. 356

यह तप आश्विन शुक्ला एकादशी को प्रारम्भ कर पूर्णिमा तक पाँच दिनों में निम्न विधि से किया जाता है- एकादशी को उपवास, द्वादशी को एकासना, त्रयोदशी को नीवि, चतुर्दशी को आयंबिल और पूर्णिमा को बियासना करें अथवा एकादशी को उपवास, द्वादशी को आयंबिल, त्रयोदशी को नीवि, चतुर्दशी को एकासना और पूर्णिमा को बियासना करें।

इन पाँच दिनों में सूर्योदय से पहले स्नान कर सौभाग्यवती सुहागिन नारी का मुखमण्डन एवं उद्वर्त्तन करें। तत्पश्चात तपाराधक स्वयं भी पवित्र-सुन्दर

वस्त्र अथवा केसरिया वस्त्र का जोड़ा पहनकर शक्ति के अनुसार आभूषण धारण करें।

तदनन्तर अपनी अंजलि को अखण्ड अक्षतों से भरकर उस पर एक जायफल रखें तथा चैत्य की पहली प्रदक्षिणा देकर अंजली गृहीत सामग्री जिनेश्वर के सम्मुख रख दें। फिर दूसरी प्रदक्षिणा के पश्चात अंजलि गृहीत श्रीफल युक्त अक्षतों को चढ़ा दें। फिर तीसरी प्रदक्षिणा देने के अनन्तर अंजलि पूरित अक्षतों एवं पर्ण सहित बिजौरा फल को प्रतिमा के समक्ष रख देवें। फिर चौथी प्रदक्षिणा देकर अक्षतों से भरी अंजलि एवं सुपारी फल को चढ़ाएं। तदनन्तर सप्त धान्य, लवण, एक सौ आठ हाथ का वस्त्र, 108 लाल चणोठी और केसरिया वस्त्र परमात्मा के आगे रखें। इस प्रकार चार वर्ष तक करें।

इस तप का यन्त्र इस प्रकार है –

वर्ष-4, तप दिन-20					
वर्ष	**तिथि आ.शु.**	**तिथि आ.शु.**	**तिथि आ.शु.**	**तिथि आ.शु.**	**तिथि आ.शु.**
प्रथम	11 उप.	12 ए.	13 नी	14 आ.	15 बि.
द्वितीय	11 उप.	12 ए.	13 नी.	14 आ.	15 बि.
तृतीय	11 उप.	12 ए.	13 नी.	14 आ.	15 बि.
चतुर्थ	11 उप.	12 ए.	13 नी.	14 आ.	15 बि.

उद्यापन– इस तप के समाप्त होने पर 108 पूर्ण कुम्भ दीपक सहित रखें तथा स्वर्ण की बत्ती वाला चाँदी का दीपक सुकुमारिका को दें। साधर्मिक- वात्सल्य एवं संघपूजा करें। यहाँ 108 दीपक पंचपरमेष्ठी के 108 गुणों के प्रतीक हैं।

• गीतार्थ आज्ञानुसार इस तप के दौरान प्रतिदिन अरिहन्त पद की निम्न आराधना करें–

जाप	**साथिया**	**खमा.**	**कायो.**	**माला**
माणिक्य प्रस्तारिका तपसे नमः	12	12	12	20

25. पद्मोत्तर तप

पद्म अर्थात कमल, उत्तर अर्थात श्रेष्ठ। यहाँ श्रेष्ठ कमल का अभिप्राय लक्ष्मी है, क्योंकि लक्ष्मी कमल निवासिनी मानी जाती है। प्राय: चित्रों में लक्ष्मी

कमल पर बैठी हुई दिखाई देती हैं। सामान्य मान्यतानुसार यह तप लक्ष्मी प्राप्ति के लिए किया जाता है। यहाँ लक्ष्मी से तात्पर्य अनन्त चतुष्टय रूपी आत्मलक्ष्मी है।

यहाँ लक्ष्मी का वास स्थल होने के कारण ही पद्म को पद्मोत्तर (श्रेष्ठ कमल) कहा गया है। इस तप में आठ-आठ पंखुड़ियों वाले नौ पद्मों की कल्पना की गयी है। इस तप के माध्यम से प्रत्येक कमल की आठ पंखुड़ियों की गणनानुसार उपवास आदि किये जाते हैं। यह तप श्रमण एवं गृहस्थ दोनों के करने योग्य आगाढ़ तप है।

आचारदिनकर के निर्देशानुसार पद्मोत्तर तप की सामान्य विधि इस प्रकार है –

विधि

प्रत्येकं नव पद्मेष्वष्टाष्ट प्रत्येक संख्यया।
उपवासा मीलिताः स्युर्वासप्ततिरनुत्तराः ।।

आचारदिनकर, पृ. 356

किसी भी शुभ दिन में इस तप को प्रारम्भ करके प्रत्येक पद्म की आठ-आठ पंखुड़ियों के अनुसार उतने उपवास एकान्तर पारणा से करें। इस प्रकार नौ पद्मों के बहत्तर उपवास होते हैं और कुल 143 दिन में यह तप पूर्ण होता है।

इस तप का यन्त्र न्यास इस प्रकार है–

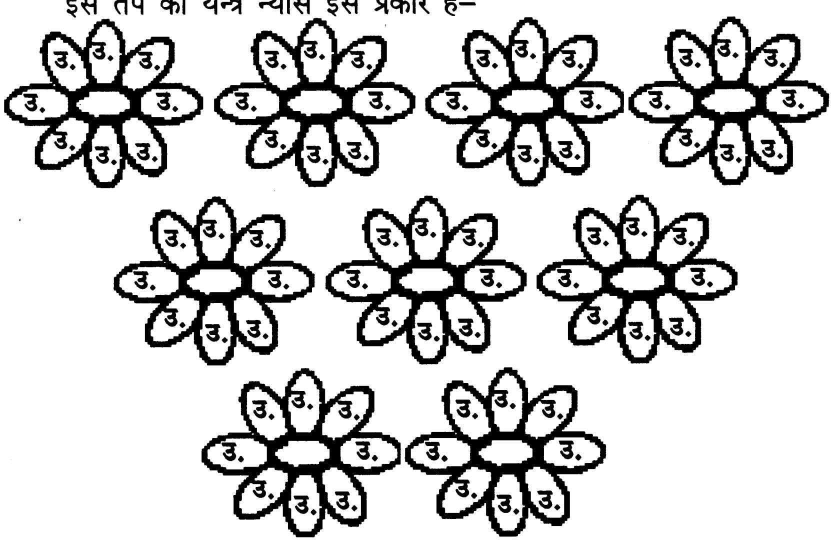

उद्यापन – इस तप के बहुमानार्थ बृहत्स्नात्र पूजा करें, आठ पंखुड़ी वाले स्वर्ण के नौ कमल बनवाकर प्रभु के समक्ष रखें, साधर्मीवात्सल्य एवं संघपूजा करें।

• पूर्व परम्परानुसार इस तप के दिनों में अरिहन्त पद की विशेष आराधना करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री पद्मोत्तर तपसे नमः	12	12	12	20

26. समवसरण तप

जहाँ प्रत्येक जीव को समान रूप से आश्रय प्राप्त होता है उसे समवसरण कहते हैं। यह एक अद्‌भुत संरचना है जो देवताओं द्वारा की जाती है। जैन मान्यता के अनुसार जब किसी तीर्थङ्कर पुरुष को केवलज्ञान होता है उस समय देवों द्वारा यह निर्मित किया जाता है। इस समवसरण में रजत, स्वर्ण एवं रत्नों के तीन गढ़ होते हैं। तीसरे गढ़ पर चारों दिशाओं में एक-एक स्वर्ण सिंहासन होता है। इन चारों के बीचो-बीच तीर्थङ्कर के शरीर से बारह गुणा ऊंचा अशोक वृक्ष होता है। प्रत्येक सिंहासन पर मोतियों से अलंकृत तीन-तीन छत्र होते हैं। प्रत्येक सिंहासन के आगे एक-एक रत्नमय पाद-पीठ होता है उस पर प्रभु अपने चरण न्यास करते हैं। सिंहासन के आगे चारों दिशाओं में धर्मचक्र तथा छोटी-छोटी घण्टियों से सुशोभित महाध्वजा होती है। पूर्व दिशा के ध्वज को धर्मध्वज, दक्षिण ध्वज को मानध्वज, पश्चिम ध्वज को गजध्वज तथा उत्तर ध्वज को सिंहध्वज कहते हैं।

पूर्व दिशा की ओर निर्मित सिंहासन पर साक्षात तीर्थङ्कर पूर्वाभिमुख होकर बैठते हैं, शेष तीन सिंहासनों पर उस परमात्मा के प्रतिबिम्बों को स्थापित करते हैं। यह समवसरण मुख्यतः देशना के लिए रचा जाता है। तीर्थङ्कर प्रभु इस आसन पर बैठकर ही उपदेश देते हैं।

यह तप समवसरण की आराधना एवं तद्‌रूप स्थिति सम्प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाता है। इस तप के करने से तीर्थङ्कर भगवान के साक्षात दर्शन होते हैं। समवसरण में चतुर्मुख परमात्मा होने से यह तप चार परिपाटियों द्वारा किया जाता है। यह तप गृहस्थ एवं मुनि सर्व प्रकार के साधकों के लिए आवश्यक है।

विधि ग्रन्थों में इसकी निम्न दो विधियाँ प्राप्त होती हैं-

प्रथम विधि

तहा भद्दवए किण्हचउत्थीए एगासण-निव्विगइय आयंबिल-उववासेहिं परिवाड़ी- चउक्केण जहसतिकएहिं समवसरण-पूया-जुत्तं-चउसु भद्दवएसु समवसरण-दुभार-चउकस्साराहणेणं (भाद्रपद-कृष्ण चतुर्थीमारभ्य शुक्ल चतुर्थी यावत् यथाशक्ति तपो विधीयते) समवसरण तवो चउसट्ठि-दिण-माणो होइ।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 27

विधिमार्गप्रपा के अनुसार यह तप भाद्रकृष्णा चतुर्थी से प्रारम्भ कर सोलह दिनों तक यथाशक्ति एकाशन, नीवि, आयंबिल और उपवास- इन चार परिपाटियों के द्वारा पूर्ण किया जाता है।

सुस्पष्ट है कि यह तप चार वर्षों में चतु: परिपाटियों द्वारा किया जाता है। उसमें प्रथम वर्ष सोलह दिन एकासना, दूसरे वर्ष नीवि, तीसरे वर्ष आयंबिल और चौथे वर्ष उपवास करना चाहिए। इस तरह चौसठ दिनों में इसे पूर्ण करते हैं। वर्तमान में इस तप की चारों परिपाटियाँ एकासना तप के द्वारा पूर्ण की जाती हैं।

दूसरी विधि

श्रावणमथ भाद्रपदं, कृष्ण प्रतिपदमिहादितां नीत्वा।
षोडशदिनानि कार्यं वर्ष चतुष्कं स्वशक्तित:।।

आचारदिनकर, पृ. 356

आचार्य वर्धमानसूरि के अनुसार यह तप श्रावण कृष्णा प्रतिपदा अथवा भाद्रकृष्णा प्रतिपदा को प्रारम्भ कर इसमें सोलह दिन तक यथाशक्ति बियासन या एकाशन करें तथा नित्य समवसरण की पूजा करें। प्रस्तुत विधि के अनुसार भी यह तप चौसठ दिनों में पूर्ण किया जाता है।

इस तप की पूर्वोक्त दोनों विधियों में तिथि को लेकर महत्त्वपूर्ण अन्तर है। यद्यपि वर्तमान सामाचारी विधिमार्गप्रपा का अनुगमन करती है। विधिमार्गप्रपा अनुमत इसका विधि यन्त्र निम्न है –

वर्ष-4, तप दिन- 64																
प्रथम भा.कृ.तिथि	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	1	2	3	4
तप	ए.	ए.	ए.	ए.	ए.	ए.	ए.	ए.	ए.	ए.	ए.	ए.	ए.	ए.	ए.	ए.
द्वितीया भा.कृ.	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	1	2	3	4
तिथि तप	नी.	नी.	नी.	नी.	नी.	नी.	नी.	नी.	नी.	नी.	नी	नी.	नी.	नी.	नी.	नी.
तृतीया भा.कृ.	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	1	2	3	4
तिथि तप	आ.	आ.	आ.	आ.	आ.	आ.	आ.	आ.	आ.	आ.	आ.	आ.	आ.	आ.	आ.	आ.
चतुर्थ भा.कृ.	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	1	2	3	4
तिथि तप	उ.	उ.	उ.	उ.	उ.	उ.	उ.	उ.	उ.	उ.	उ.	उ.	उ.	उ.	उ.	उ.

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर बृहत्स्नात्र विधि से समवसरण की पूजा करें। छह विकृतियों से युक्त पकवान के थाल चढ़ायें। समवसरण की बृहद् पूजा रचायें। साधर्मिक वात्सल्य एवं संघपूजा करें।

● प्रचलित आम्नाय के अनुसार इस तप की चारों परिपाटियों में क्रमशः निम्न जापादि करें–

क्रम	जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
प्रथम श्रेणी	श्री भावजिनाय नमः	10	10	10	20
द्वितीय श्रेणी	श्री समवसरणजिनाय नमः	9	9	9	20
तीसरी श्रेणी	श्री मनःपर्यवअर्हते नमः	12	12	12	20
चौथी श्रेणी	श्री केवलीजिनाय नमः	8	8	8	20

27. एकादश गणधर तप

प्रत्येक तीर्थङ्कर के प्रमुख शिष्यों को गणधर कहते हैं। जैसे भगवान ऋषभदेव के चौरासी गणधर थे और भगवान महावीर के ग्यारह गणधर हुए। इस प्रकार प्रत्येक तीर्थङ्कर के भिन्न-भिन्न संख्या में गणधर होते हैं। गण + धर अर्थात साधु-साध्वी के समुदाय विशेष का संचालन करने वाले गणधर कहलाते हैं।

इस तप के माध्यम से वर्धमान स्वामी के ग्यारह गणधरों का आराधन किया जाता है। प्रस्तुत तप के प्रतिफल से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। यह तप

सर्व प्रकार के साधकों के लिए करणीय है।

इसकी उल्लिखित विधि इस प्रकार है –

चरम-जिनस्यैकादश शिष्या गणधारिणस्तदर्थं च।
प्रत्येकमनशनान्यथा चाम्लान्यथा विदध्याच्च।।
आराधनार्थं प्रत्येकमेकादशोपवासानेकान्तरान्।
आचाम्लानि वा विदधीत।

आचारदिनकर, पृ. 357

यह तप वैशाख शुक्ला एकादशी को प्रारम्भ करके इसमें प्रत्येक गणधर के आश्रित ग्यारह उपवास या ग्यारह आयंबिल एकान्तर पारणे से करें।

मतान्तर से इस तप की आराधना निमित्त 11 उपवास अथवा 11 आयम्बिल करें। इस प्रकार यह तप 22 दिनों में पूर्ण होता है। वर्तमान में इस तप की आराधना उभय रीतियों से की जाती है।

उद्यापन– इस तप के उद्यापन में गणधर मूर्ति की पूजा करें। साधर्मीवात्सल्य एवं संघ पूजा करें।

• जीतव्यवहार के अनुसार इस तप की सम्यक आराधना हेतु उन दिनों निम्न क्रियाएँ अवश्य करें–

क्रम	जाप	साथिया	खमा.	लोगस्स	माला
1.	श्री इन्द्रभूति गणधराय नमः	11	11	11	20
2.	श्री अग्निभूति गणधराय नमः	11	11	11	20
3.	श्री वायुभूति गणधराय नमः	11	11	11	20
4.	श्री व्यक्त गणधराय नमः	11	11	11	20
5.	श्री सुधर्मास्वामी गणधराय नमः	11	11	11	20
6.	श्री मंडितपुत्र गणधराय नमः	11	11	11	20
7.	श्री मौर्यपुत्र गणधराय नमः	11	11	11	20
8.	श्री अकंपित गणधराय नमः	11	11	11	20
9.	श्री अचल गणधराय नमः	11	11	11	20
10.	श्री मेतार्य गणधराय नमः	11	11	11	20
11.	श्री प्रभास गणधराय नमः	11	11	11	20

28. अशोकवृक्ष तप

अशोक का अर्थ है शोक रहित। जिस वृक्ष के आलम्बन से भय एवं शोक नष्ट हो जाते हैं, वह अशोकवृक्ष कहलाता है। अशोकवृक्ष में स्वयं में ऐसी शक्ति निहित है कि उसके प्रभाव से संसार के त्रिविध तापों से सन्तप्त प्राणियों को बाह्य और आभ्यन्तर शान्ति प्राप्त होती है। अशोकवृक्ष की इसी विशिष्टता के कारण इसे तीर्थङ्कर के आठ प्रातिहार्यों में प्रमुख स्थान प्राप्त है। जब भी देवों द्वारा समवसरण की रचना की जाती है उस समय प्रभु के शरीर से बारह गुणा ऊंचे अशोकवृक्ष की भी रचना होती है, जिसके नीचे बैठकर प्रभु देशना देते हैं।

यह तप अशोकवृक्ष की तरह मंगलकारी होने से अशोकवृक्ष तप कहलाता है। जैनाचार्यों का कहना है कि इस तप के करने से सर्व सुखों की प्राप्ति होती है। यह आगाढ़ तप समस्त भव्य प्राणियों के लिए अनुकरणीय है।

प्रथम विधि

आश्विन शुक्ल प्रतिपदमारभ्य, तिथिश्च पंच निजशक्त्या।
कुर्यात्तपसा सहितः, पंच समा इदमशोक तपः।।

आचारदिनकर, पृ. 357

यह तप आश्विन शुक्ला प्रतिपदा के दिन से शुरू करके पंचमी पर्यन्त स्वशक्ति के अनुसार वहन करें। इस तरह पाँच वर्ष करना चाहिए।

इस विधि में किसी भी तप विशेष का उल्लेख न करते हुए यथाशक्ति तप का निर्देश किया गया है जबकि दूसरी विधि के अनुसार निम्न स्वरूप प्राप्त होता है।

दूसरी विधि

जैन प्रबोध एवं जैन सिन्धु के अनुसार यह तप आश्विन मास में पन्द्रह उपवास और पन्द्रह एकासना द्वारा एक वर्ष के लिए किया जाता है।

सम्प्रति इस तप का प्रचलन नहींवत होने से कौनसी विधि अधिक मूल्य रखती है, कह पाना मुश्किल है।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर अशोकवृक्ष सहित नया जिनबिम्ब बनवाकर उसकी विधि पूर्वक प्रतिष्ठा करवायें तथा षट् विकृतियों से युक्त नैवेद्य, सुपारी एवं फल आदि से पूजा करें। साथ ही शक्ति अनुसार साधर्मीवात्सल्य एवं संघपूजा करें।

• पूर्वाचार्यों द्वारा अनुमत व्यवहार का परिपालन करते हुए प्रस्तुत तप के दिनों में अरिहन्त पद की आराधना करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री अशोकवृक्ष तपसे नमः	12	12	12	20

29. एक सौ सत्तर जिन तप

यह तप एक सौ सत्तर तीर्थङ्कर परमात्माओं की उपासना हेतु किया जाता है।

प्रश्न होता है कि अतीतकाल में अनन्त तीर्थङ्कर हो चुके हैं तो फिर यहाँ 170 तीर्थङ्कर कौन से और किस तरह होते हैं? इसका जवाब है कि इस विश्व में असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं उनमें अढ़ाई द्वीप मात्र में ही मनुष्य रहते हैं। उस अढ़ाई द्वीप में पन्द्रह कर्मभूमियाँ हैं– 5 भरत, 5 ऐरवत और 5 महाविदेह। प्रत्येक महाविदेह क्षेत्र में 32-32 विजय हैं ऐसे कुल (32×5) 160 विजय होते हैं।

शाश्वत नियम के अनुसार अवसर्पिणी कालखण्ड में दूसरे तीर्थङ्कर के समय तथा उत्सर्पिणी कालखण्ड में तेईसवें तीर्थङ्कर के समय उत्कृष्ट काल आता है। उस वक्त पाँच भरत क्षेत्रों में 5, पाँच ऐरवत क्षेत्रों में 5 तथा पाँच महाविदेह क्षेत्र के प्रत्येक विजय में एक-एक तीर्थङ्कर एक साथ होते हैं। इस तरह 170 तीर्थङ्कर इस पृथ्वीतल पर युगपद् विचरण करते हैं। प्रत्येक कालचक्र में यह परम्परा अनवरत रूप से प्रवर्तित रहती है।

इस तप के द्वारा वर्तमान अवसर्पिणी कालखण्ड में होने वाले 170 तीर्थङ्करों की आराधना की जाती है। इस तपाराधना के प्रभाव से उत्कृष्ट पुण्य का उपार्जन एवं आर्यक्षेत्र में जन्म की प्राप्ति होती है।

यह अनागाढ़ तप सभी आराधकों के लिए अनुकरणीय है। इस तप-विधि के निम्न तीन प्रकारान्तर हैं–

प्रथम विधि

सत्तर-सय जिणाणं, सत्तर सयं उववासाइं तवो
कीरइ जत्थ सो सत्तरसय-जिणाराहण-तवो।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 29

विधिमार्गप्रपा के निर्देशानुसार इस तप में 170 तीर्थङ्करों की आराधना के लिए 170 उपवास करना चाहिए।

आचार्य जिनप्रभसूरि ने 170 उपवासादि निरन्तर करने चाहिए या एकान्तर पारणा पूर्वक? इस सन्दर्भ में कोई निर्देश नहीं दिया है, किन्तु वर्तमान में 170

उपवास एकान्तर पारणा पूर्वक निरन्तर भी किये जाते हैं और शक्ति दौर्बल्य के कारण पृथक्-पृथक् भी किये जाते हैं।

उक्त मूल पाठ में आगत 'उववासाइं' में 'आदि' शब्द एकासना, नीवि, आयंबिल आदि तप का संकेत करता है। वर्तमान में यह तप प्रायः उपवास या एकासना के द्वारा किया जाता है।

दूसरी विधि

सप्ततिशतं जिनानामद्दिश्यैकैक मेक भक्तं च।
कुर्वाणानामुद्यापनात्तपः पूर्यते सम्यक्।।

आचारदिनकर, पृ. 357

आचारदिनकर के उल्लेखानुसार इस तप में 170 तीर्थङ्करों की आराधना निमित्त प्रत्येक के लिए लगातार एक-एक एकासना करें।

तीसरी विधि

विंशत्येकभक्तानि कृत्वा पारणकानि।

आचारदिनकर, पृ. 357

आचारदिनकर के अनुसार द्वितीय विकल्प यह है कि इस तप में आठ बार निरन्तर बीस-बीस एकासना करके पारणा करें। इस प्रकार 8 × 20 = 160+10 = 170 एकासना और 9 पारणे होते हैं।

उद्यापन – प्रस्तुत तप की पूर्णाहुति पर बृहत्स्नात्र विधि पूर्वक पूजा करें। एक सौ सत्तर पकवान, पुष्प, फल आदि चढ़ायें। साधर्मीवात्सल्य एवं संघपूजा करें।

• इस तप के दौरान अग्रलिखित क्रम से 170 तीर्थंकरों की विधियुक्त आराधना करें–

साथिया	खमा.	कायो.	माला
12	12	12	20

जाप के नाम इस प्रकार हैं –

1. जम्बूद्वीपे महाविदेह के तीर्थङ्कर

1. श्री जयदेव सर्वज्ञाय नमः
2. श्री कर्णभद्र सर्वज्ञाय नमः
3. श्री लक्ष्मीपति सर्वज्ञाय नमः
4. श्री अनन्तवीर्य सर्वज्ञाय नमः
5. श्री गंगाधर सर्वज्ञाय नमः
6. श्री विशालचन्द्र सर्वज्ञाय नमः

7. श्री प्रियंकर सर्वज्ञाय नमः
8. श्री अमरादित्य सर्वज्ञाय नमः
9. श्री कृष्णनाथ सर्वज्ञाय नमः
10. श्री गुणगुप्त सर्वज्ञाय नमः
11. श्री पद्मनाभ सर्वज्ञाय नमः
12. श्री जलधर सर्वज्ञाय नमः
13. श्री युगादित्य सर्वज्ञाय नमः
14. श्री वरदत्त सर्वज्ञाय नमः
15. श्री चन्द्रकेतु सर्वज्ञाय नमः
16. श्री महाकाय सर्वज्ञाय नमः
17. श्री अमरकेतु सर्वज्ञाय नमः
18. श्री अरण्यवास सर्वज्ञाय नमः
19. श्री हरिहर सर्वज्ञाय नमः
20. श्री रामेन्द्रनाथ सर्वज्ञाय नमः
21. श्री शान्तिदेव सर्वज्ञाय नमः
22. श्री अनन्तकृत सर्वज्ञाय नमः
23. श्री गजेन्द्र सर्वज्ञाय नमः
24. श्री सागरचन्द्र सर्वज्ञाय नमः
25. श्री लक्ष्मीचन्द्र सर्वज्ञाय नमः
26. श्री महेश्वर सर्वज्ञाय नमः
27. श्री ऋषभदेव सर्वज्ञाय नमः
28. श्री सौम्यकान्ति सर्वज्ञाय नमः
29. श्री नेमिप्रभ सर्वज्ञाय नमः
30. श्री अजितप्रभ सर्वज्ञाय नमः
31. श्री महीधर सर्वज्ञाय नमः
32. श्री राजेश्वर सर्वज्ञाय नमः

2. धातकीखण्डे प्रथम महाविदेह के तीर्थङ्कर

1. श्री वीरचन्द्र सर्वज्ञाय नमः
2. श्री वत्ससेन सर्वज्ञाय नमः
3. श्री नीलकान्ति सर्वज्ञाय नमः
4. श्री मुंजकेशी सर्वज्ञाय नमः
5. श्री रूक्मी सर्वज्ञाय नमः
6. श्री क्षेमंकर सर्वज्ञाय नमः
7. श्री मृगांकनाथ सर्वज्ञाय नमः
8. श्री मुनिभूर्ति सर्वज्ञाय नमः
9. श्री विमलनाथ सर्वज्ञाय नमः
10. श्री आगमिक सर्वज्ञाय नमः
11. श्री निष्पाप सर्वज्ञाय नमः
12. श्री वसुन्धराधिप सर्वज्ञाय नमः
13. श्री मल्लिनाथ सर्वज्ञाय नमः
14. श्री वनदेव सर्वज्ञाय नमः
15. श्री बलभृत सर्वज्ञाय नमः
16. श्री अमृतवाहन सर्वज्ञाय नमः
17. श्री पूर्णभद्र सर्वज्ञाय नमः
18. श्री रेवांकित सर्वज्ञाय नमः
19. श्री कल्पशाख सर्वज्ञाय नमः
20. श्री नलिनीदत्त सर्वज्ञाय नमः
21. श्री विद्यापति सर्वज्ञाय नमः
22. श्री सुपार्श्वनाथ सर्वज्ञाय नमः
23. श्री भानुनाथ सर्वज्ञाय नमः
24. श्री प्रभंजन सर्वज्ञाय नमः
25. श्री विशिष्टनाथ सर्वज्ञाय नमः
26. श्री जलप्रभ सर्वज्ञाय नमः
27. श्री मुनिचंद्र सर्वज्ञाय नमः
28. श्री ऋषिपाल सर्वज्ञाय नमः
29. श्री कुडगदत्त सर्वज्ञाय नमः
30. श्री भूतानन्द सर्वज्ञाय नमः

31. श्री महावीर सर्वज्ञाय नमः
32. श्री तीर्थेश्वर सर्वज्ञाय नमः

3. धातकीखण्डे द्वितीय महाविदेह के तीर्थंकर

1. श्री धर्मदत्त सर्वज्ञाय नमः
2. श्री भूमिपति सर्वज्ञाय नमः
3. श्री मेरुदत्त सर्वज्ञाय नमः
4. श्री सुमित्र सर्वज्ञाय नमः
5. श्री श्रीषेणनाथ सर्वज्ञाय नमः
6. प्रभानन्द सर्वज्ञाय नमः
7. श्री पद्माकर सर्वज्ञाय नमः
8. श्री महाघोष सर्वज्ञाय नमः
9. श्री चन्द्रप्रभ सर्वज्ञाय नमः
10. श्री भूमिपाल सर्वज्ञाय नमः
11. श्री सुमतिषेण सर्वज्ञाय नमः
12. श्री अच्युत सर्वज्ञाय नमः
13. श्री तीर्थभूति सर्वज्ञाय नमः
14. श्री ललितांग सर्वज्ञाय नमः
15. श्री अमरचन्द्र सर्वज्ञाय नमः
16. श्री समाधिनाथ सर्वज्ञाय नमः
17. श्री मुनिचन्द्र सर्वज्ञाय नमः
18. श्री महेन्द्रनाथ सर्वज्ञाय नमः
19. श्री शशांक सर्वज्ञाय नमः
20. श्री जगदीश्वर सर्वज्ञाय नमः
21. श्री देवेन्द्रनाथ सर्वज्ञाय नमः
22. श्री गुणनाथ सर्वज्ञाय नमः
23. श्री उद्योतनाथ सर्वज्ञाय नमः
24. श्री नारायण सर्वज्ञाय नमः
25. श्री कपिलनाथ सर्वज्ञाय नमः
26. श्री प्रभाकर सर्वज्ञाय नमः
27. श्री जिनदीक्षित सर्वज्ञाय नमः
28. श्री सकलनाथ सर्वज्ञाय नमः
29. श्री शीलारनाथ सर्वज्ञाय नमः
30. श्री वज्रधर सर्वज्ञाय नमः
31. श्री सहस्त्रार सर्वज्ञाय नमः
32. श्री अशोक सर्वज्ञाय नमः

4. पुष्करार्धे प्रथम महाविदेह के तीर्थंकर

1. श्री मेघवाहन सर्वज्ञाय नमः
2. श्री जीवरक्षक सर्वज्ञाय नमः
3. श्री महापुरुष सर्वज्ञाय नमः
4. श्री पापहर सर्वज्ञाय नमः
5. श्री मृगांकनाथ सर्वज्ञाय नमः
6. श्री शूरसिंह सर्वज्ञाय नमः
7. श्री जगत्पूज्य सर्वज्ञाय नमः
8. श्री सुमतिनाथ सर्वज्ञाय नमः
9. श्री महामहेन्द्र सर्वज्ञाय नमः
10. श्री अमरभूति सर्वज्ञाय नमः
11. श्री कुमारचन्द्र सर्वज्ञाय नमः
12. श्री वारिषेण सर्वज्ञाय नमः
13. श्री रमणनाथ सर्वज्ञाय नमः
14. श्री स्वयम्भू सर्वज्ञाय नमः
15. श्री अचलनाथ सर्वज्ञाय नमः
16. श्री मकरकेतु सर्वज्ञाय नमः
17. श्री सिद्धार्थनाथ सर्वज्ञाय नमः
18. श्री सफलनाथ सर्वज्ञाय नमः

19. श्री विजयदेव सर्वज्ञाय नमः
20. श्री नरसिंह सर्वज्ञाय नमः
21. श्री शतानन्द सर्वज्ञाय नमः
22. श्री वृन्दारक सर्वज्ञाय नमः
23. श्री चन्द्रातप सर्वज्ञाय नमः
24. श्री चित्रगुप्त सर्वज्ञाय नमः
25. श्री दृढ़रथ सर्वज्ञाय नमः
26. श्री महायशा सर्वज्ञाय नमः
27. श्री ऊष्मांक सर्वज्ञाय नमः
28. श्री प्रद्युम्ननाथ सर्वज्ञाय नमः
29. श्री महातेज सर्वज्ञाय नमः
30. श्री पुष्पकेतु सर्वज्ञाय नमः
31. श्री कामदेव सर्वज्ञाय नमः
32. श्री समरकेतु सर्वज्ञाय नमः

5. पुष्करार्धे द्वितीय महाविदेह के तीर्थंकर

1. श्री प्रसन्नचन्द्र सर्वज्ञाय नमः
2. श्री महासेन सर्वज्ञाय नमः
3. श्री वज्रनाथ सर्वज्ञाय नमः
4. श्री सुवर्णबाहु सर्वज्ञाय नमः
5. श्री कुरुचन्द्र सर्वज्ञाय नमः
6. श्री वज्रवीर्य सर्वज्ञाय नमः
7. श्री विमलचन्द्र सर्वज्ञाय नमः
8. श्री यशोधर सर्वज्ञाय नमः
9. श्री महाबल सर्वज्ञाय नमः
10. श्री वज्रसेन सर्वज्ञाय नमः
11. श्री विमलनाथ सर्वज्ञाय नमः
12. श्री भीमनाथ सर्वज्ञाय नमः
13. श्री मेरुप्रभ सर्वज्ञाय नमः
14. श्री भद्रगुप्त सर्वज्ञाय नमः
15. श्री सुदृढ़सिंह सर्वज्ञाय नमः
16. श्री सुव्रत सर्वज्ञाय नमः
17. श्री हरिचन्द सर्वज्ञाय नमः
18. श्री प्रतिमाधर सर्वज्ञाय नमः
19. श्री अतिश्रय सर्वज्ञाय नमः
20. श्री कनककेतु सर्वज्ञाय नमः
21. श्री अजितवीर्य सर्वज्ञाय नमः
22. श्री फल्गुमित्र सर्वज्ञाय नमः
23. श्री ब्रह्मभूति सर्वज्ञाय नमः
24. श्री हितकर सर्वज्ञाय नमः
25. श्री वरुणदत्त सर्वज्ञाय नमः
26. श्री यशःकीर्ति सर्वज्ञाय नमः
27. श्री नागेन्द्र सर्वज्ञाय नमः
28. श्री महीधर सर्वज्ञाय नमः
29. श्री कृतब्रह्म सर्वज्ञाय नमः
30. श्री महेन्द्रनाथ सर्वज्ञाय नमः
31. श्री वर्धमान सर्वज्ञाय नमः
32. श्री सुरेन्द्रदत्त सर्वज्ञाय नमः

पाँच भरत क्षेत्रों के तीर्थंकर

1. जम्बूद्वीपे भरत क्षेत्रे श्री अजितनाथ सर्वज्ञाय नमः
2. धातकीखण्डे प्रथम भरत क्षेत्रे श्री सिद्धान्तनाथ सर्वज्ञाय नमः
3. धातकीखण्डे द्वितीय भरत क्षेत्रे श्री करणनाथ सर्वज्ञाय नमः

4. पुष्करार्धे प्रथम भरत क्षेत्रे श्री प्रभासनाथ सर्वज्ञाय नम:
5. पुष्करार्धे द्वितीय भरत क्षेत्रे श्री प्रभावकनाथ सर्वज्ञाय नम:

पाँच ऐरवत क्षेत्रों के तीर्थंकर

1. जम्बूद्वीपे ऐरवत क्षेत्रे श्री चन्द्रनाथ सर्वज्ञाय नम:
2. धातकीखण्डे प्रथम ऐरवत क्षेत्रे श्री जयनाथ सर्वज्ञाय नम:
3. धातकीखण्डे द्वितीय ऐरवत क्षेत्रे श्री पुष्पदन्त सर्वज्ञाय नम:
4. पुष्करार्धे प्रथम ऐरवत क्षेत्रे श्री अग्राहिक सर्वज्ञाय नम:
5. पुष्करार्धे द्वितीय ऐरवत क्षेत्रे श्री बलिभद्र सर्वज्ञाय नम:

30. नवकार तप

जैन धर्म का मुख्य मन्त्र नमस्कार-मन्त्र है। यह अनादि निधन एवं शाश्वत मन्त्र है। इसकी महिमा वचन और लेखनी द्वारा असम्भव है। केवली भगवान भी इसका सम्पूर्ण वर्णन नहीं कर सकते, क्योंकि भाषा सीमित है और महामन्त्र का स्वरूप सीमातीत है। जैसे कमल में मकरन्द (सुगन्ध) व्याप्त है वैसे ही सकल आगमों में नमस्कार मन्त्र परिव्याप्त है। नमस्कार मन्त्र के स्मरण से अनेक जीवों ने मुक्ति प्राप्त की है और अनेक प्राणियों ने इच्छित सिद्धियाँ प्राप्त की हैं।

उपदेशतरंगिणी में कहा गया है कि नमस्कार महामन्त्र के स्मरण से युद्ध, समुद्र, हाथी, साँप, सिंह, व्याधि, अग्नि, दुश्मन, चोर, ग्रह, राक्षस और शाकिनी के उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। श्राद्धदिनकृत्य के अनुसार जो मनुष्य एक लक्ष नवकार-मन्त्र का अखण्ड जाप करता है तथा जिनेश्वर परमात्मा और चतुर्विध संघ की पूजा करता है वह तीर्थङ्कर नाम कर्म बांधता है। ''नव लाख जपतां नरक निवारे'' और ''नव लाख जपतां थाये जिनवर'' आदि सुभाषितों से स्पष्ट है कि महामन्त्र नवकार के नौ लाख जाप करने से नरकगति टल जाती है। एक जगह लिखा गया है कि

नवकार समो मंत्रं, शत्रुञ्जयसमो गिरिः ।
वीतराग समो देवो, न भूतो न भविष्यति ।।

अद्भुत शक्तियों से युक्त नमस्कार महामन्त्र की आराधना के लिए जो तप किया जाता है वह नमस्कार तप कहलाता है। इस तप के करने से बाह्य व आभ्यन्तर सर्व सुखों की प्राप्ति होती है। यह तप जन्म-मरण की दुःखद एवं

भयावह-परम्परा का समूलोच्छेदन करने के उद्देश्य से किया जाता है।

इस तप की आराधना आबाल-वृद्ध सभी को करनी चाहिए। आचार्य जिनप्रभसूरि ने कहा है कि नमस्कार मन्त्र का उपधान करने में असमर्थ व्यक्ति को भी नवकार मन्त्र की आराधना करवानी चाहिए।

विधि ग्रन्थों में इस तप के तीन प्रकारान्तर पाये जाते हैं।

प्रथम प्रकार

पंचनमोक्कार-उवहाण-असमत्थस्स नवक्कार-तवो वि-आराहणा कारिज्जइ। सा य इमा पढम-पए अक्खराणि सत्त, तओ सत्त इक्कासणा। एवं पंचक्खरे वीयपए पंच इक्कासणा। तइय-पए सत्त। चउत्थ-पए वि सत्त। पंचम पए नव। छट्ठ पए चूला पए दुग-रूवे सोलस अक्खरे इक्कासणा सत्तम-पए चूला-अंतिम पय दुग रूवे सत्तरस्स अक्खरे सत्तरस्स इक्कासणा।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 29

- इस नवकारमन्त्र के प्रथम पद "नमो अरिहंताणं" में सात अक्षर हैं, उसकी आराधनार्थ सात एकासना करें।
- दूसरा पद 'नमो सिद्धाणं' में पाँच अक्षर हैं, उसके निमित्त पाँच एकासना करें।
- तीसरा पद 'नमो आयरियाणं' में सात अक्षर हैं, उसके लिए सात एकासना करें।
- चौथा पद 'नमो उवज्झायाणं' में भी सात अक्षर हैं, उसके निमित्त सात एकासना करें।
- पाँचवां पद 'नमो लोए सव्व साहूणं' में नव अक्षर हैं, उसके निमित्त नौ एकासना करें।
- छठवीं चूला 'एसो पंच नमुक्कारो' में आठ अक्षर हैं, उसके निमित्त आठ एकासना करें।
- सातवीं चूला 'सव्वपावप्पणासणो' में भी आठ अक्षर हैं, उसके लिए आठ एकासना करें।
- आठवीं चूला 'मंगलाणं च सव्वेसिं' में भी आठ अक्षर हैं, उसके निमित्त आठ एकासना करें और नौवीं चूला 'पढमं हवइ मंगलं' में नव अक्षर हैं, उसके

निमित्त नौ एकासना करें। यहाँ अन्तिम दोनों चूलाओं के एक साथ सोलह और सत्रह एकासना करें।

इस प्रकार 7+5+7+7+9+16+17 = 68 एकासनों के द्वारा यह तप किया जाता है। यदि सामर्थ्य हो तो 68 एकासने निरन्तर करें, अन्यथा एक-एक पद के पश्चात पारणा करते हुए करें।

द्वितीय प्रकार

नमस्कार-तपश्चाष्टषष्टि संख्यैक भक्तकैः ।
विधीयते च तत्पादसंख्यायाश्च प्रमाणतः ।।
तत्र प्रथमपदे वर्ण संख्या सप्तैक भक्तानि, द्वितीय पदे पंच, तृतीये सप्त, चतुर्थे सप्त, पंचमे नव, षष्टेऽष्टौ, सप्तमेऽष्टौ, अष्टमेऽष्टौ, नवमे नववाष्टौ वा गुर्वाम्नायविशेषेण एवं एकभक्तान्यष्टषष्टिः ।।

आचारदिनकर, पृ.357

आचारदिनकर के अनुसार भी यह तप अक्षर संख्या के अनुरूप 68 एकासनों द्वारा किया जाता है जैसे कि पहले पद की अक्षर-संख्या सात, दूसरे की पाँच, तीसरे की सात, चौथे की सात, पाँचवें की नव, छठें की आठ, सातवें की आठ, आठवें की आठ और नौवें पद की आठ अथवा नौ।

आचारदिनकर में नौवें पद के आठ या नौ अक्षर जो कहे गये हैं वह पृथक्-पृथक् गुरु आम्नाय गत पाठ-भेद है। 'पढमं हवइ मंगलं' – इस पद में नौ अक्षर हैं। 'पढमं होइ मंगलं' – इस पद में आठ अक्षर हैं। ये दोनों पाठ हस्तलिखित प्रतियों में मिलते हैं। स्पष्टार्थ है कि नवमें पद के लिए नौ एकासना ही करना चाहिए, किन्तु परम्परागत आम्नाय विशेष से आठ एकाशना करें- इस प्रकार इस तप में कुल अड़सठ एकासन होते हैं।

तृतीय प्रकार

रत्नसागर (पृ. 469) के अनुसार जिस पद के जितने अक्षर हैं उतने उपवास करें। इस प्रकार प्रस्तुत विकल्प में 68 उपवास होते हैं।

वर्तमान में यह तप उपवास अथवा एकासना के द्वारा किया जाता है।

उद्यापन

उज्जमणे रूप्प-मय-पट्टियाए, कणय-लेहणीए मयनाहि।
रसेण अक्खराणि लिहित्ता अट्ठ-सट्ठीए मोयगेहिं पूया।।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 29

रूप्यमय-पट्टिकायां सुवर्ण-लेखिन्या पंचपरमेष्ठि-मंत्रं लिखित्वा ज्ञानपूजां विदध्यात्। अष्टषष्टिसंख्यया फल-पुष्प मुद्रा पक्वान्न-ढौकनं संघवात्सल्यं संघ पूजा च।।

आचारदिनकर, पृ. 358

इस तप के उद्यापन में चाँदी के पतरे पर स्वर्ण की कलम से पंचपरमेष्ठी मन्त्र लिखकर ज्ञान पूजा करें। अड़सठ-अड़सठ फल, पुष्प, मुद्रा एवं पकवान रखें। संघवात्सल्य एवं संघपूजा करें।

- प्रचलित विधि के अनुसार नवकार तप के दिनों में निम्न जापादि करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1. ॐ नमो अरिहंताणं	7	7	7	20
2. ॐ नमो सिद्धाणं	5	5	5	20
3. ॐ नमो आयरियाणं	7	7	7	20
4. ॐ नमो उवज्झायाणं	7	7	7	20
5. ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं	9	9	9	20
6. ॐ एसो पंच नमुक्कारो	8	8	8	20
7. ॐ सव्वपावप्पणासणो	8	8	8	20
8. ॐ मंगलाणं च सव्वेंसि	8	8	8	20
9. ॐ पढमं हवइ मंगलं	9	9	9	20

31. पंचपरमेष्ठी तप

अर्हत संस्कृति में अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पंचपरमेष्ठी कहलाते हैं।

अरिहन्त – मोक्ष मार्ग के प्रथम प्रतिष्ठापक और उपदेष्टा होते हैं। ये गर्भ काल से ही मति, श्रुत और अवधि– इन तीन ज्ञान से युक्त होते हैं और दीक्षा

के बाद चौथा मनःपर्यवज्ञान प्राप्त करते हैं। पाँचवाँ केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षमार्ग बतलाते हैं।

सिद्ध – अरिहन्त परमात्मा ही सिद्ध अवस्था को प्राप्त करते हैं। अष्ट कर्मों का क्षय करके लोक के अग्रभाग पर विराजमान आत्मा सिद्ध कहलाती है। सिद्ध जन्म-मरण की परम्परा से हमेशा के लिए मुक्त हो जाते हैं।

आचार्य – अरिहन्त परमात्मा सभी क्षेत्रों में हमेशा विद्यमान नहीं रहते, अतः सदाकाल सर्व क्षेत्रों में मुक्ति मार्ग के प्रचार का दायित्व आचार्यों पर रहता है। आचार्य चतुर्विध संघ के नेता होते हैं। वर्तमान में आचार्य की आज्ञा तीर्थङ्कर तुल्य मानी जाती है।

उपाध्याय – आचार्य के निश्रारत साधु-साध्वियों को अध्ययन-अध्यापन करवाने का प्रमुख कार्य उपाध्याय करते हैं। स्वयं आचार शुद्धि रखते हुए साधु एवं श्रावक वर्ग को आचार शुद्धि के लिए सदा प्रेरित करते रहना भी इनका कार्य है।

साधु – पंच महाव्रत के पालक, षड्जीवनिकाय के रक्षक, विषय-कषाय के त्यागी, समता के योगी साधक साधु कहलाते हैं।

इन पाँचों परमेष्ठियों के 12+8+36+25+27 = 108 गुण होते हैं। जप माला में 108 मनके इन्हीं गुणों के प्रतीक हैं। सम्पूर्ण कर्मों से रहित होने के लिए एवं स्वयं की शुद्ध दशा को पाने के लिए पंच परमेष्ठी के सिवाय अन्य कोई समर्थ नहीं है। इसलिए मोक्षाभिलाषियों को श्रद्धापूर्वक पंच इष्ट की उपासना करनी चाहिए। यह तप पंच परमेष्ठी की आराधना के लिए किया जाता है। इस तप के करने से सर्वविघ्नों का क्षय होता है।

आचारदिनकर में इसकी निम्न विधि दी गयी है–

विधि

उपवासैकस्थाने आचाम्लैकाशने च निर्विकृतिः।
प्रति-परमेष्ठि च षटकं, प्रत्याख्यानस्य भवतीदम्।।

आचारदिनकर, पृ. 359

इस तप में अरिहंत परमेष्ठी की आराधना के लिए प्रथम दिन उपवास, दूसरे दिन एकलठाणा, तीसरे दिन आयंबिल, चौथे दिन एकासना, पाँचवें दिन नीवि, छठे दिन पुरिमड्ढ और सातवें दिन आहार में आठ ग्रास ग्रहण करें- शेष

चार परमेष्ठियों की आराधना भी इसी प्रकार करें। इस तरह पैंतीस दिनों में यह तप पूरा होता है।

यह तप आचारदिनकर में ही वर्णित है। यद्यपि नवकार तप में भी पंच परमेष्ठी का स्मरण किया जाता है, किन्तु वहाँ मुख्य रूप से नवकार-मन्त्र के अक्षरों की आराधना की जाती है जबकि इसमें पाँच पदों का स्मरण करते हैं।

उद्यापन – इस तप के उद्यापन में ज्ञान पंचमी की तरह पाँच-पाँच पुस्तकें आदि परमात्मा के समक्ष रखें। पाँच पदों की आहार आदि से भक्ति करें। पाँच-पाँच मोदक, फल आदि चढ़ायें एवं संघ पूजा करें।

• गीतार्थ विहित परम्परानुसार इस तप के दिनों में निम्न गुणना आदि करें।

जाप	साथिया	खमा.	लोगस्स	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20
ॐ नमो सिद्धाणं	8	8	8	20
ॐ नमो आयरियाणं	36	36	36	20
ॐ नमो उवज्झायाणं	25	25	25	20
ॐ नमो लोए सव्व साहूणं	27	27	27	20

32. दशविध यतिधर्म तप

दस प्रकार के यतिधर्म की आराधना के लिए जो तप किया जाता है उसे दसविध यतिधर्म-तप कहते हैं। सामान्य तौर पर इस तप का आचरण गृहस्थ एवं साधु दोनों के द्वारा किया जाना चाहिए, फिर भी विशेषतया साधुओं के पालन करने योग्य होने से यह 'दशविध यतिधर्म तप होता है और आत्मा क्रोधादि वैभाविक दशा से विमुख होकर स्वभाव में स्थिर होती है। दस यतिधर्म का सामान्य स्वरूप इस प्रकार है –

1. **खंती–** क्षमा रखना 2. **मार्दव** – अभिमान नहीं करना 3. **आर्जव** – सरल हृदयी होना, माया-कपट नहीं करना 4. **मुक्ति** – लोभ नहीं करना 5. **तप** – इच्छाओं का निरोध करना 6. **संयम** – इन्द्रियों को

अनुशासित रखना 7. **सत्य** – हितकर व परिमित बोलना 8. **शौच** – विचारों से पवित्र रहना 9. **अकिंचन** – बाह्य एवं आभ्यन्तर सर्व परिग्रह का त्याग करना 10. **ब्रह्मचर्य** – विषय-वासनाओं का त्याग करना।

इस तप के फल से विशुद्ध धर्म की प्राप्ति होती है तथा यह तप आत्मधर्म की रमणता हेतु किया जाता है।

इसकी तपश्चरण विधि निम्न प्रकार है –

संयमादौ दशविधे धर्मे, एकान्तरा अपि।
क्रियन्त उपवासा यत्तत्तपः पूर्यते हि तैः।।

आचारदिनकर, पृ. 359

इस तप में दस उपवास एकान्तर पारणा से करने पर कुल 20 दिन लगते हैं।

उद्यापन – इस तप की पूर्णाहुति पर सामान्यतः बृहत्स्नात्र विधि से परमात्मा की पूजा करें, जिन प्रतिमा के आगे दस-दस पकवान, फल, पुष्प आदि चढ़ायें तथा चतुर्विध संघ की सेवा-भक्ति करें।

- गीतार्थ आचरणानुसार इस तप के दिनों में प्रतिदिन निम्नलिखित जापादि करें –

क्रम	जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1.	क्षान्ति गुणधराय नमः	10	10	10	20
2.	मार्दव गुणधराय नमः	10	10	10	20
3.	आर्जव गुणधराय नमः	10	10	10	20
4.	मुक्ति गुणधराय नमः	10	10	10	20
5.	तपो गुणधराय नमः	10	10	10	20
6.	संयम गुणधराय नमः	10	10	10	20
7.	सत्य गुणधराय नमः	10	10	10	20
8.	शौच गुणधराय नमः	10	10	10	20
9.	अकिंचन गुणधराय नमः	10	10	10	20
10.	ब्रह्मचर्य गुणधराय नमः	10	10	10	20

33. मेरू तप

इस विश्व में असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं। पहला द्वीप जम्बूद्वीप है। हम इसी द्वीप में रहते हैं। इस द्वीप के मध्य में मेरू नामक पर्वत है, वह एक लाख योजन ऊँचा एवं स्वर्णमय है। यह पर्वत 1000 योजन इस धरती के अन्दर रहा हुआ है तथा 99000 योजन धरती के बाह्य भाग में ऊर्ध्वलोक की ओर फैला हुआ है। धरती की समतल भूमि पर इसका विस्तार 1000 योजन का है। ऊपर जाते हुए क्रमशः घटते-घटते शिखर भाग पर यह पर्वत एक हजार योजन प्रमाण चौड़ा रह जाता है। यह पर्वत ऊँची की हुई गोपुच्छ (गाय की पूंछ) के आकार वाला है और तीनों लोक को स्पर्श किया हुआ है।

यह पर्वत तीन भागों में विभक्त है। सबसे ऊपर के भाग में चारों दिशाओं में श्वेत स्वर्ण की चार अभिषेक शिलाएँ हैं। इनमें पूर्व और पश्चिम दिशाओं की शिलाओं पर महाविदेह क्षेत्र के तीर्थङ्करों का जन्माभिषेक किया जाता है, उत्तर दिशा की शिला पर भरत क्षेत्र के और दक्षिण दिशा की शिला पर ऐरवत क्षेत्र में जन्म लेने वाले तीर्थङ्करों का स्नानादि-अभिषेक होता है। इस तरह अढ़ाई द्वीप (मनुष्यलोक) में पाँच मेरू पर्वत हैं। इस पर्वत के कारण ही भरत, ऐरवत व महाविदेह क्षेत्र का विभाजन होता है और प्रत्येक तीर्थङ्कर का जन्माभिषेक स्थल होने से पूजनीय है। ये शाश्वत पर्वत हैं इनका कभी ह्रास नहीं होता।

इस तप के माध्यम से पाँच मेरू की आराधना की जाती है। जिस प्रकार तीर्थङ्करों के स्नात्र-जल के अभिषेक से मेरू पर्वत कृत-कृत्य हो जाता है वैसे ही इस तप को करने से भव्य जीव भी धन्य-धन्य हो जाते हैं। यह तप उत्तम पद की प्राप्ति हेतु किया जाता है और वह सभी आराधकों के लिए सेवनीय है।

आचारदिनकर के अनुसार इसकी विधि निम्नोक्त है –

प्रत्येकं पंचमेरूणामुपोषणक पंचकम्।
एकान्तरं मेरूतपस्तेन, संजायते शुभम्।।

आचारदिनकर, पृ. 362

इसमें पाँच मेरू पर्वत को लक्ष्य में रखकर प्रत्येक मेरू के लिए पाँच-पाँच उपवास एकान्तर पारणे से करें।

इस तरह पच्चीस उपवास और पच्चीस पारणे मिलकर कुल 50 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप की विशिष्ट भक्ति के लिए बृहत्स्नात्र पूजा रचायें, स्वर्ण के पाँच मेरू बनवाकर परमात्मा के आगे रखें, पच्चीस-पच्चीस की संख्या में पकवान, फल आदि अर्पित करें तथा साधर्मिक वात्सल्य एवं संघ पूजा करें।

- जीतव्यवहार के अनुसार इस तप के दिनों में निम्न जाप आदि करें –

क्रम	जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1.	श्री सुदर्शनमेरू जिनाय नमः	5	5	5	20
2.	श्री विजयमेरू जिनाय नमः	5	5	5	20
3.	श्री अचलमेरू जिनाय नमः	5	5	5	20
4.	श्री मंदरमेरू जिनाय नमः	5	5	5	20
5.	श्री विद्युन्मालिमेरू जिनाय नमः	5	5	5	20

34. बत्तीस कल्याणक तप

जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्रीय बत्तीस विजयों में उत्कृष्टकाल के समय बत्तीस तीर्थङ्कर एक साथ विचरण करते हैं। यह तप उन तीर्थङ्करों के केवलज्ञान-कल्याणक के उद्देश्य से किया जाता है तथा इस तप में बत्तीस उपवास किये जाते हैं इसलिए इसे बत्तीस कल्याणक-तप कहते हैं।

इस तप के करने से तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन होता है तथा तीर्थङ्करों के केवलज्ञान कल्याणक की आराधना होने से उसके फलस्वरूप ज्ञानावरणीय आदि घाति कर्मों का क्षय होता है। यह आगाढ़ तप साधुओं एवं गृहस्थों उभय के लिए सेवनीय है।

आचार्य वर्धमानसूरि ने इसकी निम्न विधि दर्शायी है –

विधि

उपवास त्रयं कृत्वा, द्वात्रिंशदुपवासकाः ।
एक-भक्तांतरास्तस्मादुपवास त्रयं वदेत् ।।

आचारदिनकर, पृ. 362

इसमें सर्वप्रथम तेला करके एकासन से पारणा करें। तत्पश्चात बत्तीस

उपवास एकान्तर एकासन से पारणा करते हुए करें और फिर अन्त में तेला करके एकासन से पारणा करें। यह तप 38 उपवास और 34 पारणा पूर्वक कुल 72 दिनों में पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के सम्मानार्थ बृहत्स्नात्र की विधि पूर्वक परमात्मा की पूजा करें। बत्तीस-बत्तीस की संख्या में पकवान, फल, पुष्प आदि चढ़ायें। संघ वात्सल्य एवं संघ पूजा करें।

• प्रचलित परम्परानुसार इस तप के दिनों में अरिहन्त पद की आराधना हेतु निम्न जाप आदि करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

35. च्यवन एवं जन्म तप

च्यवन को दृष्टिगत रखकर जो तप किया जाता है उसे च्यवन-तप कहते हैं। इसमें चौबीस तीर्थङ्करों को ध्यान में रखकर उनके कल्याणक दिनों का ध्यान रखे बिना शक्ति के अनुसार चौबीस उपवास एकान्तर पारणे से किये जाते हैं। इस तप के करने से सद्गति की प्राप्ति होती है। यह तप साधु एवं गृहस्थ दोनों के लिए अनागाढ़ रूप से परिपालनीय है। किसी भी शुभ दिन से इस तप का प्रारम्भ कर सकते हैं।

आचारदिनकर में इस तप सम्बन्धी मूल पाठ निम्न प्रकार से दिया गया है –

चतुर्विंशतितीर्थेशानुद्दिश्य च्यवनात्मकं ।
विना कल्याणकदिनैः कार्यानशनपद्धतिः ।।

आचारदिनकर, पृ. 362

उद्यापन– इस तप के उद्यापन में विधिपूर्वक बृहत्स्नात्र पूजा रचायें, मूलनायक परमात्मा की पूजा करें, जिनेश्वर प्रतिमा के आगे 24-24 पकवान, फल आदि चढ़ाएँ तथा संघ वात्सल्य एवं संघ पूजा करें। आचार्य वर्धमानसूरि द्वारा उल्लिखित जन्म तप भी इसी प्रकार किया जाता है।

उक्त दोनों तपों का यन्त्र न्यास इस प्रकार है –

च्यवन तप दिन-24, पारणा-24, कुल दिन = 48 इसी भाँति जन्म तप के कुल दिन = 48 दोनों यन्त्रों की आकृति समान ही है।											
उ.	पा.	उ.	पा.	उ.	पा.	उ.	पा.	उ.	पा.	उ.	पा.
ऋषभ.	पा.	अजित.	पा.	सम्भव.	पा.	अभिनन्दन.	पा.	सुमति.	पा.	पद्मप्रभु	पा.
सुपार्श्व.	पा.	चन्द्रप्रभु.	पा.	सुविधि.	पा.	शीतल.	पा.	श्रेयांस.	पा.	वासुपूज्य.	पा.
विमल.	पा.	अनन्त.	पा.	धर्म.	पा.	शान्ति.	पा.	कुंथु.	पा.	अर.	पा.
मल्लि.	पा.	मुनिसु.	पा.	नमि.	पा.	नेमि.	पा.	पार्श्व.	पा.	वर्धमान	पा.

• प्रचलित विधि के अनुसार इस तप के दौरान क्रमशः चौबीस तीर्थङ्करों का जाप आदि करना चाहिए।

च्यवन-तप में प्रत्येक तीर्थङ्कर के नाम के आगे 'परमेष्ठिने नमः' यह पद जोड़ें तथा जन्म तप में 'अर्हते नमः' यह पद जोड़ें।

साथिया	खमा.	कायो.	माला
12	12	12	20

36. सूर्यायण तप

सूर्य की गति के अनुसार हानि और वृद्धि के क्रम से जो तप किया जाता है उसे सूर्यायण तप कहते हैं। यह तप चान्द्रायण तप की भाँति द्विविध रीतियों से किया जाता है। इस तप में भी यवमध्य और वज्रमध्य दो प्रकार होते हैं।

यह तप करने से महाराज्यलक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इस तप का सेवन करने वाला भौतिक एवं आध्यात्मिक उभय शक्तियों का सम्राट बन जाता है। आचारदिनकर में इसकी निम्न विधि दर्शायी है –

एवं मासद्वयेन स्या, पूर्णंच यववज्रकम्।
चांद्रायणं यत्तेर्दत्तेः, संख्या ग्रासस्य गेहिनाम्।।

आचारदिनकर, पृ. 363

इस तप को कृष्ण प्रतिपदा से शुरू करके अमावस्या तक पन्द्रह दिन करें,

फिर विपरीत क्रम से पन्द्रह दिन (पूर्णिमा) तक करें। इस तरह यवमध्य और वज्रमध्य दोनों परिपाटियों को पूर्ण करें। यह तप कुल दो महीने में पूर्ण होता है।

इस तप का यन्त्र न्यास इस प्रकार है –

तप दिन-60, यवमध्य में सूर्यायण तप, कृष्ण पक्ष में हानि															
कृष्णतिथि	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	30
ग्रास	15	14	13	12	11	10	9	8	7	6	5	4	3	2	1

यवमध्य में सूर्यायण तप, शुक्ल पक्ष में वृद्धि															
शुक्ल तिथि	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15
ग्रास	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15

वज्रमध्य में सूर्यायण तप, कृष्ण पक्ष में हानि															
कृष्ण तिथि	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	30
ग्रास	15	14	13	12	11	10	9	8	7	6	5	4	3	2	1

वज्रमध्य में सूर्यायण तप, शुक्ल पक्ष में वृद्धि															
शुक्लतिथि	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15
ग्रास	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15

इस तप का उद्यापन चान्द्रायण तप की भाँति ही करें।

- प्रचलित विधि के अनुसार इस तप में सिद्ध पद का जाप करें –

जाप	**साथिया**	**खमा.**	**कायो.**	**माला**
ॐ नमो सिद्धाणं	8	8	8	20

37. लोकनाली तप

यह विश्व 14 रज्जू परिमाण है। इसे चारों दिशाओं से परिवृत्त करने वाला

अलोकाकाश अनन्त है। चौदह रज्जू के मध्यभाग में त्रस जीवों की प्रधानता वाली चौदह राजू प्रमाण लम्बी और एक राजू प्रमाण चौड़ी त्रसनाड़ी है। इस त्रसनाड़ी के भीतरी भाग में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक त्रस एवं स्थावर सभी प्रकार के जीव रहते हैं। इसके बाहर के लोक विभाग में केवल एकेन्द्रिय (स्थावर) जीव ही निवास करते हैं। यह त्रसनाड़ी ही लोकनाली कहलाती है।

लोकनाली के क्रम से जो तप किया जाता है उसे लोकनाली तप कहते हैं। इस लोकनाली में तीनों लोक समा जाते हैं, अत: तीनों लोक को आश्रित करके इस तप की आराधना की जाती है। इस तप के फलस्वरूप परम ज्ञान की प्राप्ति होती है।

विधि

सप्तपृथिव्यो मध्यलोक:, कल्पा ग्रैवेयका अपि।
अनुत्तरा मोक्षशिला, लोकनालिरितीर्यते।।
एकभक्तान्युपवास, एक भक्तानिनीरसा:।
आचाम्लान्युपवासश्चक्रेक्रमात्तेषु तप: स्मृतम्।।

आचारसंहिता, पृ. 363

इसमें सर्वप्रथम अधोलोक के क्रम से रत्नप्रभादि सात नरक पृथ्वी को लक्ष्य में रखकर निरन्तर सात एकासन करें। तत्पश्चात मध्यलोक को लक्ष्य में रखकर एक उपवास करें। उसके बाद ऊर्ध्वलोक की अपेक्षा बारह कल्प को लक्ष्य में रखकर निरन्तर बारह एकासना करें। फिर नौ ग्रैवेयक को लक्षित करके नौ नीवि करें। फिर पाँच अनुत्तर विमान को लक्ष्य में रखकर पाँच आयम्बिल करें तथा सिद्धशिला को लक्ष्य में रखकर एक उपवास करें।

इस तरह 19 एकासना, 9 नीवि, 5 आयम्बिल और 2 उपवास कुल पैंतीस दिनों में यह तप पूरा होता है।

इस तप का यन्त्र इस प्रकार है –

उप. 1	सिद्धशिला
आ. 1	सर्वार्थसिद्ध
आ. 1	अपराजित
आ. 1	जयन्त

आ.1	वैजयन्त
आ. 1 (5 अनुत्तर)	विजय
नी.1	सुदर्शन
नी.1	सुप्रतिबद्ध

नी.1	मनोरम
नी.1	सर्वतोभद्र
नी.1	सुविशाल
नी.1	सौम्यग्रे
नी.1	सुमनस
नी.1	प्रीतिकर
नी.(9 ग्रैवेयक)	आदित्य
ए. 1	अच्युत
ए. 1	आरण
ए. 1	प्राणत
ए. 1	आणत
ए. 1	सहस्रार
ए. 1	शुक्र
ए. 1	लांतक

ए. 1	ब्रह्म
ए. 1	माहेन्द्र
ए. 1	सनत्कुमार
ए. 1	ईशान
ए. (12 देवलोक)	सौधर्म
उप. 1	मध्यलोक
ए. 1	महात्तम
ए. 1	तमःप्रभा
ए. 1	धूमप्रभा
ए. 1	पंकप्रभा
ए. 1	बालुका
ए. 1	शर्करा
ए. (सात नरक)	रत्नप्रभा

उद्यापन – इस तप के उद्यापन में बृहद्स्नात्र पूजा करें। चाँदी की सात पृथ्वी, स्वर्ण का मध्यलोक, विविध मणियों से युक्त बारह कल्प, नौ ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान तथा स्फटिक रत्न की सिद्धशिला बनवाकर उन पर स्वर्ण एवं रत्नों की स्थापना करें। यह सब सामग्री जिनप्रतिमा के आगे पुरुष-प्रमाण अक्षत का ढेर करके उस पर रखें। नाना प्रकार के पकवान चढ़ाएँ। साधर्मी वात्सल्य एवं संघ पूजा करें।

• गीतार्थ परम्परानुसार लोकनाली तप में अरिहन्त पद की आराधना करनी चाहिए–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

38. कल्याणक अष्टाह्निका तप

इस तप नाम से सूचित होता है कि च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण – इन पाँच कल्याणकों से संयुक्त हुए आठ-आठ दिन का तप करने से यह कल्याणक अष्टाह्निका तप कहलाता है। इस तप के द्वारा तीर्थङ्कर नामकर्म

का बन्ध होता है। यह तप पंचकल्याणकों की विशिष्ट आराधना के उद्देश्य से किया जाता है।

विधि

एक भक्ताष्टकं कार्यमर्हत्कल्याणकः पंचके।
प्रत्येकं पूर्यते तच्च, बृहदष्टाह्निका तपः।।

आचारदिनकर, पृ. 364

इसमें वर्तमान काल के भरत क्षेत्रीय चौबीस तीर्थङ्करों के कल्याणकों की आराधना हेतु सर्वप्रथम भगवान ऋषभदेव के एक-एक कल्याणक को लक्ष्य में रखकर आठ-आठ एकासना करें। इस प्रकार 5×8 से गुणा करने पर एक तीर्थङ्कर के निमित्त चालीस एकासना होते हैं। इसी भाँति शेष तेईस तीर्थङ्करों के पाँच-पाँच कल्याणकों को लक्ष्य में रखकर चालीस-चालीस एकासना करें।

यह तप कुल 960 दिन में पूरा होता है। कदाचित एक तीर्थङ्कर से दूसरे तीर्थङ्कर के कल्याणक-तप के बीच में व्यवधान पड़े तो कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु चालीस एकासना तो एक साथ ही करें।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर बृहत्स्नात्रपूजा करें, एक सौ बीस - एक सौ बीस सर्व जाति के पकवान एवं फलादि अर्पित करें, साधुओं को अन्न-पान, वस्त्र आदि का दान देवें तथा साधर्मीभक्ति एवं संघपूजा करें।

• प्रचलित परम्परा के अनुसार इस तप के दिनों में जिस तीर्थङ्कर के, जिस कल्याणक का तप चल रहा हो उस दिन उस तीर्थङ्कर के उसी कल्याणक की 20 माला गिननी चाहिए तथा साथिया आदि 12-12 करने चाहिए। उदाहरणार्थ ऋषभदेव का जाप निम्नानुसार करें –

1. च्यवन कल्याणक - श्री ऋषभनाथ परमेष्ठिने नमः
2. जन्म कल्याणक - श्री ऋषभनाथ अर्हते नमः
3. दीक्षा कल्याणक - श्री ऋषभनाथ नाथाय नमः
4. केवलज्ञान कल्याणक - श्री ऋषभनाथ सर्वज्ञाय नमः
5. निर्वाण कल्याणक - श्री ऋषभनाथ पारंगताय नमः

39. माघमाला तप

यह तप माघ मास में माला रूप में किया जाता है, इसलिए इसका नाम माघमाला तप है। इस तप के करने से शाश्वत सुख (मोक्ष सुख) की प्राप्ति होती

है। यह तप सर्व साधकों के लिए आचरणीय है।

इसकी सामान्य विधि निम्नोक्त है–

आरभ्य पौषदशमी पर्यन्ते माघशुक्लपूर्णायाः ।
स्नात्वाऽर्हन्तं संपूज्य, चैकभक्तं विदध्याच्च ।।

आचारदिनकर, पृ. 364-65

यह तप पौष वदि दशमी (खरतरगच्छ के अनुसार माघ वदि दशमी) के दिन से आरम्भ करके माघ सुदि पूर्णिमा तक निरन्तर एकासन करते हुए करें। इस तप में प्रतिदिन परमात्मा की पूजा करने के बाद एकासना करें। इस प्रकार यह तप चार वर्ष तक किया जाता है।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर बृहत्स्नात्रपूजा पूर्वक स्वर्ण और मणिगर्भित घृत का मेरू बनाकर परमात्मा के आगे रखें। संघभक्ति एवं साधर्मीभक्ति करें।

• प्रचलित विधि के अनुसार इस तप के दिनों में अरिहन्त पद की आराधना करें –

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

40. महावीर तप

भगवान महावीर ने छद्मस्थ अवस्था में जो तप किया, वह महावीर-तप कहलाता है। दिन गणना के अनुसार भगवान ने 12 वर्ष, 6 मास, 15 दिन कठोर तपश्चर्या की थी। उसका सामान्य विवरण इस प्रकार है–

• एक – छहमासी • दो – छह माह में पाँच दिन कम, • नौ – चौमासी तप • दो – तीन मासी तप • बहत्तर – पाक्षिक तप • एक-एक – भद्र, महाभद्र, सर्वतोभद्र प्रतिमाएँ • दो – ढाई मासी तप • छह – दोमासी तप • दो – डेढ़ मासी तप • बारह – मासक्षमण • बारह – अट्ठम (तेला) • दो सौ उनतीस – छट्ठ (बेला) इस तरह 12½ वर्ष के छद्मस्थ साधना काल में कुल 349 दिन आहार लिया। शेष दिनों में उपवास आदि कठिन तपस्याएँ की। इस तप के फल से प्रगाढ़ कर्मों का क्षय होता है।

आचार्य वर्धमानसूरि ने पंचम काल के आराधकों के लिए महावीर तप की

निम्न विधि कही है –

महावीर-तपो ज्ञेयं, वर्षाणि द्वादशैव च।
त्रयोदशैव पक्षाश्च, पंचकल्याण-पारणे।।

आचारदिनकर, पृ. 365

इसमें बारह वर्ष और तेरह पक्ष पर्यन्त निरन्तर दस-दस उपवास के बाद पारणा करते हुए यह तप पूर्ण करें। इस तप के उद्यापन में बृहत्स्नात्र पूजा करें, महावीरस्वामी की प्रतिमा के आगे स्वर्णमय वटवृक्ष रखें तथा साधर्मी वात्सल्य एवं संघ पूजा करें।

• प्रचलित गीतार्थ विहित परम्परानुसार इस तप के दिनों में प्रतिदिन महावीर स्वामी का गुणना करते हुए अरिहन्त पद का ध्यान करें।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री महावीर स्वामिने नमः	12	12	12	20

41. लक्षप्रतिपद तप

यह तप प्रतिपदा (एकम) से प्रारम्भ होता है। इस तप के करने से अनगिनत अक्षय लक्ष्मी (आत्मगुणों की सम्पदा) की प्राप्ति होती है। इस कारण इसे लक्षप्रतिपद-तप कहते हैं। यह आगाढ़ तप गृहस्थ आराधकों के लिए निरूपित किया गया है।

आचारदिनकर में इसकी निम्न विधि वर्णित है–

शुक्ल प्रतिपदः सूर्य, संख्यया एकाशनादिभिः।
समर्थनीयास्तपसि, लक्षप्रतिपदाख्यके।।

आचारदिनकर, पृ. 365

यह तप शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन यथाशक्ति एकासन आदि करते हुए करें। इस तरह बारह प्रतिपदा (एक वर्ष) पर्यन्त करने से यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन

उद्यापने पूजापूर्वं लक्षधान्यं ढौकनीयं। लक्षसंख्याधान्यानां निबन्धो यथा- चोषामाणा 5, पाइली 1, मुगसेइ 1, पाइली 2, मोठसेइ 1, पाइली 2, जवसेइ 2, तिलपाइ 7, गोधूमसेइ 8, चउलासेइ 3, चणासेइ 1,

कांगुमाणा 3, कोद्रवमाणा 3, उडदमाणा 5, तूवरिसेइ 4, जुवारिमाणा 5।

आचारदिनकर, पृ. 365

आचारदिनकर की विधि अनुसार इस तप के उद्यापन में परमात्मा की पूजा करें। तदनन्तर परमात्मा के आगे एक लाख परिमाण का धान्य निम्न प्रकार से चढ़ायें –

चावल – पाँच मण एक पाइली, मूंग – एक सई दो पाइली, मोठ –एक सइ दो पाइली, जव – दो सइ, तिल – सात पाइली, गेहूँ – आठ सइ, चवला – तीन सइ, चना – एक सइ, कांगु – (चावल की एक जाति) तीन मण, कोद्रव – तीन मण, उड़द – पाँच मण, तुअर – चार सइ, ज्वार – पाँच सइ। सइ लगभग 4 किलो और 500 ग्राम परिमाण होती है तथा पाइली 900 ग्राम की होती है।

• प्रचलित परम्परानुसार इस तप के दौरान सिद्धपद की आराधना करें।

जाप	**साथिया**	**खमा.**	**कायो.**	**माला**
ॐ नमो सिद्धाणं	8	8	8	20

42. अष्टापद पावड़ी तप

अष्टापद + पावड़ी अर्थात अष्टापद पर्वत पर आठ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं जिन्हें साधारण व्यक्ति पार नहीं कर सकता। तद्भव मोक्षगामी जीव ही इन आठ सीढ़ियों पर चढ़ते हुए अष्टापद की यात्रा कर सकता है। उत्तराध्ययनसूत्र टीका में कहा गया है कि **'चरमसरीरी साहू आरूहइ नगवरे न अन्नेति'**– चरम शरीरी साधु ही अष्टापद पर्वत पर आरोहण कर सकता है, अन्य नहीं। कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र' (10वें पर्व) में लिखा है कि– **'योऽष्टापदे जिनान् नत्वा, वसेद् रात्रिम् स सिध्यति'** अर्थात जो अष्टापद पर विद्यमान जिन-बिम्बों को वन्दन करके वहीं एक रात्रि विश्राम करता है, वह अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करता है।

गणधर गौतमस्वामी स्वयं इसी भव में मोक्षगामी होने का निश्चय करने हेतु सूर्य रश्मियों का आलम्बन लेकर इस पर्वत पर चढ़े थे। वहाँ से लौटते वक्त उन्होंने पन्द्रह सौ तीन तापसों को प्रतिबोधित कर दीक्षा दी और उन सभी ने उसी दिन केवलज्ञान प्राप्त किया।

यह तपश्चरण अष्टापद पर्वत पर चढ़ने के लिए किया जाता है, इसलिए

इसे अष्टापद पावड़ी-तप कहते हैं। इस तप के फल से दुर्लभ मोक्षपद की प्राप्ति होती है। यह पर्वतीय स्थान मोक्ष-प्राप्ति का अनन्तर कारण है, क्योंकि प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव ने छह उपवास का तप करके एक हजार मुनियों के साथ यहीं मोक्ष प्राप्त किया था। तत्पश्चात भगवान ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती ने वहाँ सिंह निषद्या नामक भव्य जिनमन्दिर का निर्माण करवाया और उस जिनालय में वर्तमान के चौबीस तीर्थङ्करों की उनके देह प्रमाण के अनुसार संस्थान, रंग और लांछनयुक्त प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की। उसमें भी दक्षिण दिशा में 1 से 4 तीर्थङ्करों के बिम्ब, पश्चिम दिशा में 5 से 12 तीर्थङ्करों के बिम्ब, उत्तर दिशा में 13 से 22 तथा पूर्व दिशा में 23 से 24 तीर्थङ्करों के बिम्ब प्रतिष्ठित किये। सिद्धाणं बुद्धाणं सूत्र में "चत्तारि अट्ठ दस दोय" का यह पाठ उक्त सन्दर्भ में ही कहा गया है।

इस पर्वत का दूसरा नाम कैलाश पर्वत है। आचार्य हेमचन्द्र ने 'अभिधान-चिन्तामणिकोश' के चौथे भूमिकाण्ड में अष्टापद पर्वत को कैलाश पर्वत कहा है। आचार्य जिनप्रभसूरि ने 'विविधतीर्थकल्प' के अन्तर्गत 'अष्टापद-गिरि-कल्प' में इसी बात की पुष्टि की है। उन्होंने लिखा है – **"तीसे अ उत्तरदिसाभाए बारहजोयणेसु अट्ठावओ नाम केलासपराभिहाणो रम्भो नगवरो अट्ठजोयणुच्चा।"** अर्थात अयोध्या नगरी से उत्तर दिशा की तरफ बारह योजन दूर अष्टापद नामक रम्य पर्वत है जिसकी उँचाई आठ योजन है और उसका दूसरा नाम कैलाश पर्वत है।

आधुनिक भूगोल के अनुसार कैलाश पर्वत हिमालय पर तिब्बत देश में मानसरोवर की उत्तर दिशा में 25 मील की दूरी पर स्थित है। विद्वानों की मान्यतानुसार इस पर्वत का शिखर प्रति समय बर्फ से ढका रहता है, अतः अत्यधिक ठण्ड के कारण इस पर्वत पर आरोहण नहीं किया जा सकता। यह तप गृहस्थों के करने योग्य है। इसकी उपलब्ध विधि इस प्रकार है–

तहा आसोय-सियट्ठमिमाइ अट्टदिणे एगासणाइ तवोत्ति।
पढमा पाउडी। एवं अट्ठसु वरिसेसु अट्ठ पाउडिओ।।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 29

अश्विनाष्टाह्निकास्वेव, यथाशक्ति तपः क्रमै।
विधेयमष्टवर्षाणि, तपः अष्टापदः परं।।

आचारदिनकर, पृ. 369

इस तप में आश्विन शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा तक के आठ दिनों में यथाशक्ति उपवास-एकासन आदि करें। एक वर्ष में एक परिपाटी (ओली) पूर्ण होती है। इस तरह आठ वर्षों में आठ ओली करने पर यह तप पूर्ण होता है। इसमें कुल 64 दिन लगते हैं।

इस तप में प्रतिवर्ष परमात्मा के आगे सोने की सीढ़ी बनवाकर रखें तथा अष्टप्रकारी पूजा करें। इस तरह आठ वर्ष तक आठ सीढ़ियाँ बनाएँ।

उद्यापन

उज्जवणे-कणगमय-अट्ठावय-पूया कणग-निस्सेणी य कायव्व पक्कन्नाइ फलाइ चउवीस-वत्थूणि जत्थ सो अट्ठावय-तवो।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 29

उद्यापने चतुर्विंशति-संख्या, पक्वान्न फल-जातीनां।
बृहत्स्नात्र विधि-पूर्वकं ढौकनं संघ-वात्सल्यं-संघ-पूजा च ।।

आचारदिनकर, पृ. 369

इस तप के अनुमोदनार्थ उद्यापन में स्वर्णमय अष्टापद पर्वत की पूजा करें और सोने की सीढ़ी बनवाकर चौबीस तीर्थङ्करों के सामने चढ़ायें। बृहत्स्नात्र पूजा रचायें। चौबीस-चौबीस विभिन्न जाति के पकवान एवं फल चढ़ाये। साधर्मिक वात्सल्य एवं संघ पूजा करें।

- सुविहित परम्परानुसार इस तप के दिनों में निम्नलिखित क्रियाएँ करें –

जाप	**साथिया**	**खमा.**	**कायो.**	**माला**
श्री अष्टापद तीर्थाय नमः	8	8	8	20

43. मोक्षदण्ड तप

यहाँ मोक्षदण्ड का अर्थ है गुरु का दण्डा। यह दण्डा मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर होने का सूचक है, अतः मोक्ष उपलब्धि में पुष्ट निमित्त बनता है। इस दण्डे को आधार मानकर जो तप किया जाता है उसे मोक्षदण्ड-तप कहते हैं। यह तप गृहस्थ आराधकों के लिए करणीय कहा गया है। इसके फल से सर्व प्रकार की विपत्तियाँ दूर होती हैं।

इस सम्बन्ध में तीन विधियाँ प्रचलित है –

प्रथम विधि

> **यावन्मुष्टिप्रमाणं, स्याद्गुरुदण्डस्य तावतः ।**
> **विदधीतैकान्तराश्चोपवासान् सुसमाहितः ।।**

आचारदिनकर, पृ. 369

आचारदिनकर के अनुसार इसमें गुरु का दण्डा जितने मुष्टि प्रमाण का हो उतने एकान्तर उपवास करें। इस तप में उपवास की गिनती सभी के लिए समान नहीं होती, क्योंकि सभी आराधकों की मुट्ठी का आकार भिन्न-भिन्न होता है।

उद्यापन – अन्तिम उपवास के दिन गुरु के दण्ड की चन्दन से पूजा करें तथा गुरु को वस्त्र प्रदान करें। दण्ड के समीप अक्षत और श्रीफल रखें। दण्ड की जितनी मुष्टियाँ हों, उस परिमाण में विविध जाति के फल, मुद्रा, पकवान एवं रत्न आदि भी रखें। साधर्मीवात्सल्य एवं संघपूजा करें।

दूसरी विधि – अर्वाचीन प्रति (तपसुधानिधि, पृ. 209) के आधार पर इसमें गुरु के दण्ड को अंगूठे के पर्व से नापें, जितनी मुष्टि की संख्या हो उतने एकाशन करें। उद्यापन में उतनी ही संख्या में मोदक आदि चढ़ायें।

तीसरी विधि – तपसुधानिधि (पृ. 210) के अनुसार इसमें क्रमशः उपवास, आयंबिल, नीवि, एकासन और एक-एक पुरिमड्ढ करने पर एक ओली पूर्ण होती है। इस तरह पाँच ओली करने पर 25 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

• आचार्य प्रणीत परम्परानुसार इस तपश्चरण काल में साधुपद के गुणों की आराधना करनी चाहिए, इससे यह तप श्रेष्ठ फलदायी होता है।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं	27	27	27	20

44. अदुःखदर्शी तप

जिस तप के करने से सर्व दुःखों का नाश होता है, उसे अदुःखदर्शी तप कहते हैं।

यह तप गृहस्थ उपासकों के लिए करणीय है। इस तप की विधि सर्वप्रथम आचारदिनकर में प्राप्त होती है। अर्वाचीन पुस्तकों में इसके तीन रूप निम्न प्रकार देखे जाते हैं–

प्रथम प्रकार

शुक्लपक्षेषु कर्त्तव्याः, क्रमात्पंचदशस्वपि।
उपवासस्तिथिष्वेवं, पूर्यते विधिनैव तत्।।

आचारदिनकर, पृ. 369

इस तप को प्रारम्भ करने हेतु किसी भी शुभ मास की शुक्ला प्रतिपदा को उपवास करें, फिर दूसरे मास में शुक्ल पक्ष की द्वितीया को उपवास करें- इस प्रकार क्रमशः पन्द्रहवें मास में पूर्णिमा को उपवास करें। इस तरह कुल पन्द्रह उपवासों से यह तप पूरा होता है। यदि कोई तिथि भूल जायें, तो तप को फिर से प्रारम्भ करें।

द्वितीय प्रकार – इसमें पूर्ववत तप प्रारम्भ करके प्रत्येक पक्ष की एक-एक तिथि आगे-आगे बढ़ाते हुए उपवास करें। ऐसा करने पर पन्द्रह पक्षों में पन्द्रह उपवासों से यह तप पूर्ण होता है।

तृतीय प्रकार – इसमें तिथि नियम का विचार किये बिना 15 उपवास एकान्तर पारणे से करें। इस प्रकार एक माह में यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के उद्यापन में ऋषभदेव प्रभु की पूजा करें। चाँदी का वृक्ष बनवाकर उसकी शाखा में सोने का पालना बांधें, उस पालने में सूत की गादी रखें, उस पर स्वर्ण की पुतली बनवाकर सुलाएं। पन्द्रह-पन्द्रह पकवान एवं फल चढ़ाएँ। पन्द्रह माह तक तप की तिथियों पर नये-नये नैवेद्य आदि परमात्मा को अर्पित करें। संघवात्सल्य एवं संघपूजा करें।

• पूर्व परम्परा का अनुसरण करते हुए इसमें प्रथम तीर्थङ्कर का जाप आदि करें।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री ऋषभदेवस्वामी अर्हते नमः	12	12	12	20

45. गौतमपात्र (पड़गह) तप

गौतम स्वामी के पात्र को लक्ष्य में रखकर जो तप किया जाता है उसे गौतमपात्र-तप कहते हैं। आगमों में वर्णन आता है कि गौतमस्वामी ने स्वलब्धि प्रयोग से केवल एक पात्र खीर द्वारा 1503 तापसों को यथेष्ट पारणा करवाया था, जिससे 501 तापसों ने पारणा करते-करते केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। उस लब्धि विशेष की सम्प्राप्ति के उद्देश्य से यह तप करते हैं। इस तप के प्रभाव से विविध लब्धियों की प्राप्ति होती है। यहाँ 'पड़गह' का हिन्दी रूपान्तरण

'पतद्ग्रह' है। यहाँ पतद्ग्रह का अभिप्राय पात्र है।

यह श्रावक-श्राविकाओं के करने योग्य आगाढ़ तप है। यह तप दो प्रकार के किया जाता है।

प्रथम प्रकार

एकासु पंचदशसु, स्वशक्तेरनुसारतः ।
तपः कार्यं गौतमस्य, पूजाकरणपूर्वकम् ।।

आचारदिनकर, पृ. 370

इस तप में प्रत्येक पूर्णिमा को यथाशक्ति उपवास या एकासना करके गौतमस्वामी मूर्ति की पूजा करें। इस प्रकार पन्द्रह पूर्णिमाओं तक करने पर यह तप पूर्ण होता है। इसमें पन्द्रह महीने लगते हैं।

द्वितीय प्रकार – तपसुधानिधि (पृ. 107) के अनुसार यह तप कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा के दिन से प्रारम्भ करें और एक वर्ष पर्यन्त प्रत्येक प्रतिपदा को उपवास आदि करें। इस तरह दूसरे विकल्प में 24 उपवासादि होते हैं।

उद्यापन – इस तप को प्रख्यात एवं आत्मस्थ करने हेतु उद्यापन दिन में महावीरस्वामी एवं गौतमस्वामी की बृहद्स्नात्र पूजा करें। चाँदी के पात्र में खीर भरकर झोली सहित मूर्त्तियों के समक्ष रखें तथा काष्ठमय पात्र में खीर भरकर झोली युक्त गुरु को प्रदान करें। उस दिन विशेष साधर्मीभक्ति एवं संघपूजा करें।

• प्रचलित सामाचारी के अनुसार इस तपस्या में साधु पद की आराधना करते हुए निम्न कायोत्सर्ग आदि करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ ह्रीँ श्रीँ गौतमस्वामिने नमः	27	27	27	20

46. निर्वाणदीप (दीपावली) तप

यह तप भगवान महावीर के निर्वाण-कल्याणक से सम्बन्धित है। जब प्रभु वीर को निर्वाण (मोक्ष) हुआ उस समय अमावस्या की अर्धरात्रि होने से चारों ओर गहन अन्धकार व्याप्त था, लेकिन प्रभु की अन्तिम देशना सुनने के लिए आये हुए नव मल्लवी और नव लिच्छवी कुल अठारह गणनायक राजाओं ने प्रभु के केवलज्ञान रूपी भाव प्रकाश का विरह होने के कारण द्रव्य प्रकाश किया अर्थात अनगिनत दीपक प्रगटाये। इस रात्रि में देवी-देवताओं ने भी निर्वाण

महोत्सव के अवसर पर दीपोत्सव मनाया जिससे वह रात्रि प्रकाश पूर्ण बन गयी इसीलिए इसका नाम निर्वाणदीप है तथा लोकव्यवहार में यह दिन दीपावली अथवा दीवाली के नाम से प्रसिद्ध है।

दूसरा तथ्य है कि यह दिन निर्वाण मार्ग का दर्शन करवाने हेतु दीपक के समान होने से भी यह तप 'निर्वाण दीपक' के नाम से विख्यात है। दूसरे शब्दों में निर्वाण मार्ग दिखाने में दीपक के सदृश होने से इस तप को निर्वाण दीप तप कहते हैं। यह श्रावकों के करने योग्य आगाढ़ तप है। इस तप के करने से मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है।

आचारदिनकर में इसकी निम्न विधि उल्लिखित है –

वर्ष त्रयं दीपमाला, पूर्वे मुख्ये दिन-द्वये।
उपवासद्वयं कार्यं, दीप-प्रस्तार पूर्वकम्।।

आचारदिनकर, पृ. 370

यह तप करने हेतु कार्तिक वदि चतुर्दशी और अमावस्या में निरन्तर दो उपवास (बेला) करें। इन दोनों दिन महावीरस्वामी की प्रतिमा के आगे अखण्ड अक्षत चढ़ाएं एवं रात्रि में अखण्ड घी का दीपक रखें। इस प्रकार तीन वर्ष तक करने पर यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के तीसरे वर्ष के अन्त में भगवान महावीर की बृहत्स्नात्र पूजा रचायें। उनके समक्ष एक हजार घी के दीपक रखें। उस दिन संघ वात्सल्य एवं साधर्मी भक्ति करें।

• वर्तमान सामाचारी के अनुसार इस तप के दिनों में निम्न जाप आदि करने चाहिए।

जाप

1. चतुर्दशी की रात्रि में – श्री महावीरस्वामी सर्वज्ञाय नमः
2. अमावस्या की अर्धरात्रि में – श्री महावीरस्वामी पारंगताय नमः
3. अमावस्या की अन्तिम रात्रि में – श्री गौतमस्वामी सर्वज्ञाय नमः

साथिया	खमा.	कायो.	माला
12	12	12	20

47. अखण्ड दशमी तप

इस तप के सुप्रभाव से अखण्ड सुख (मोक्ष सुख) की प्राप्ति होती है। इसलिए इसे अखण्ड दशमी तप कहा गया है। यह श्रावक-श्राविकाओं के करने योग्य आगाढ़ तप है।

आचार्य वर्धमानसूरि ने इसकी निम्न विधि कही है-

शुक्लासु दशसंख्यासु, निजशक्त्या तपोविधिम्।
विदधीत ततः पूर्तिस्तस्य संपद्यते क्रमात्।।

आचारदिनकर, पृ. 370

इस तप में शुक्ल पक्ष की दश दशमियों में अपनी शक्ति के अनुसार एकासन आदि तप करें। यह तप 10 महीनों में पूर्ण होता है। वर्तमान में यह तप प्राय: एकासना द्वारा किया जाता है।

उद्यापन – इस तप को आत्मसात करने हेतु उद्यापन में परमात्मा के आगे दस-दस की संख्या में पकवान, फल आदि रखें। अखण्ड स्वस्तिक बनाकर उस पर नैवेद्य रखें। अखण्ड वस्त्र पहनकर चैत्य की भमती में घी की तीन अखण्ड धारा दें। साधर्मीवात्सल्य एवं संघ पूजा करें।

- प्रचलित विधि के अनुसार इस तपश्चरण में प्रभु पार्श्वनाथ का स्मरण करते हुए अरिहन्त पद की आराधना करें –

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ ह्रीँ पार्श्वनाथाय नमः	12	12	12	20

48. कर्मचूर्ण तप

चार घाति कर्मों का क्षय करने के उद्देश्य से जो तप किया जाता है उसे कर्मचूर-तप कहते हैं। इस तप के करने से प्रगाढ़ कर्म शिथिल हो जाते हैं और विपुल मात्रा में बंधे हुए कर्म न्यून हो जाते हैं। फिर वह आत्मा शनैः शनैः सभी कर्मों से सर्वथा मुक्त हो जाती है। यह तप गृहस्थ एवं श्रमण दोनों के लिए हितकारी है।

विधि

उपवासत्रयं कुर्यादादावन्ते निरन्तरम्।
मध्ये षष्ठिमिता कुर्यादुपवासाँश्च सान्तरान्।।

आचारदिनकर, पृ. 372

इस तप में सर्वप्रथम तेला करके एकासन से पारणा करें। तदनन्तर साठ उपवास एकान्तर एकासन के पारणें से करें, फिर अन्त में तीन उपवास करें।

इस प्रकार इसमें 66 उपवास और 62 पारणा कुल 138 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के अन्त में बृहद्स्नात्र-पूजा करें, फिर चाँदी का वृक्ष एवं स्वर्ण की कुल्हाड़ी बनवाकर परमात्मा के समक्ष रखें। उस दिन साधर्मी वात्सल्य एवं संघपूजा करें। यहाँ चाँदी का वृक्ष 158 कर्म प्रकृतियों का एवं कुल्हाड़ी उनके विध्वंस की सूचक है।

- जीत व्यवहार के अनुसार इस तप में अरिहन्त पद की आराधना करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

49. लघुनंद्यावर्त्त तप

जैन परम्परा में अष्टमंगल का गौरवपूर्ण स्थान है। तीर्थङ्कर परमात्मा जब भी विचरण करते हैं उनका प्रत्येक कदम मंगलकारक एवं शुभता का उत्पादक होने से उसके प्रतीक रूप में अष्टमंगल की रचना की जाती है। वह देवकृत रचना उनके अग्रभाग में स्थिर रहती हुई कदमों के साथ आगे-आगे बढ़ती रहती है। उस अष्टमंगल में एक मंगल नंद्यावर्त्त कहलाता है।

यह तप नंद्यावर्त्त की आराधना के लिए किया जाता है। जैन परम्परा में नंद्यावर्त्त का पूजन भी होता है। उसमें नंद्यावर्त्त आकार का यन्त्र निर्मित कर पूजनीक देवी-देवताओं की स्थापना करते हैं। फिर मन्त्रोच्चार के साथ यथायोग्य सामग्री अर्पित करते हुए पूजन विधि की जाती है।

इस तपाराधना में लगभग देवी-देवताओं की स्थापना के अनुसार ही तपश्चर्या की जाती है। यह तप करने से परलोक सम्बन्धी तीर्थङ्कर नामकर्म का बंध तथा इहलोक में सर्व देवों का सान्निध्य प्राप्त होता है।

विधि

लघोश्च नंद्यावर्त्तस्य, तपः कार्यं विशेषतः।
तदाराधन संख्याभिरूद्यापनमिहादिवत्।।

आचारदिनकर, पृ. 373

इस तप में सर्वप्रथम नंद्यावर्त्त पट्ट की आराधना हेतु उपवास करें। तत्पश्चात धरणेन्द्र, अम्बिका, श्रुत देवी एवं गौतमस्वामी की आराधना के लिए चार आयम्बिल करें। फिर पंचपरमेष्ठी एवं रत्नत्रय की आराधना के लिए आठ आयम्बिल करें। इसी प्रकार सोलह विद्या देवियों की आराधना के लिए सोलह एकासने चौबीस शासन यक्षणियों की आराधना के लिए चौबीस एकासने, दस दिक्पालों की आराधना के लिए दस एकासने, नवग्रह एवं क्षेत्रपाल इन दस की आराधना के लिए दस एकासने तथा चार निकाय के देवों की आराधना के लिए एक उपवास करें। इस तरह उपवास 2, आयम्बिल 12, एकासन 64 कुल मिलाकर 78 दिनों में यह तप पूरा होता है।

इसका तप यन्त्र यह है –

तप दिन-78											
नाम	नंद्यावर्त्त	धरणेन्द्र	अंबिका	श्रुतदेवी	गौतम	परमेष्ठी एवं रत्नत्रय	सोलह विद्या देविया	चौबीस शासन यक्ष	दस दिक्पाल	नवग्रह एवं क्षेत्रपाल	चार निकाय के देव
तप	उप.1	आ.1	आ.1	आ.1	आ.1	आ.8	ए.16	ए.24	ए.10	ए.10	उप.1

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर बृहत्स्नात्र पूजा करें, उपाश्रय में लघुनंद्यावर्त्त की पूजा करवायें तथा संघ वात्सल्य एवं संघ पूजा करें।

50. बृहन्नंद्यावर्त्त तप

नंद्यावर्त्त एक प्रकार की स्वस्तिक रचना है जिसका अष्टमांगलिक में समावेश होता है। जो सर्व प्राणियों के हित के लिए हो, वह मंगल कहलाता है। नंद्यावर्त्त रचना लौकिक एवं लोकोत्तर दोनों प्रकार का मंगल करती है। इस तप के फलस्वरूप पारलौकिक दृष्टि से तीर्थङ्कर नामकर्म का बंध होता है और इस लोक में सर्व ऋद्धि एवं सर्व सम्यक्त्वी देवी-देवताओं का आश्रय प्राप्त होता है।

आचार्य वर्धमानसूरि ने इसे गृहस्थ एवं साधु दोनों के लिए करणीय बतलाया है जो किसी अपेक्षा से साधुओं के लिए उचित नहीं है। यह तप देवी-देवताओं की आराधना हेतु किया जाता है। शास्त्रानुसार मुनियों का गुणस्थान छठां अथवा सातवाँ माना गया है और देवी-देवताओं का चौथा गुणस्थानक कहा गया है। अत:

साधु अपने से नीचे के गुणस्थानकों में स्थित देवों की आराधना कैसे कर सकता है? यह तप श्रावकों के लिए ही करणीय होना चाहिए।

विधि

बृहन्नंद्यावर्त्त-विधि-संख्ययैकाशनादिभिः।
पूरणीयं तपश्चोद्यापने तत्पूजनं महत्।।

आचारदिनकर, पृ. 373

इस तप में सर्वप्रथम नंद्यावर्त्त की आराधना के लिए एक उपवास करें। तत्पश्चात सौधर्मेन्द्र, ईशानेन्द्र और श्रुतदेवता की आराधना के लिए तीन आयम्बिल करें। इसके बाद (प्रथम वलय में स्थित) अरिहन्त आदि आठ की आराधना के लिए आठ आयम्बिल करें।

तत्पश्चात द्वितीय वलय में स्थित चौबीस जिन माताओं की आराधना के लिए चौबीस एकासने करें। फिर तृतीय वलय में स्थित सोलह विद्यादेवियों की आराधना के लिए सोलह एकासन करें। तत्पश्चात चौबीस लोकान्तिक देवों की आराधना के लिए चौबीस एकासन करें। फिर चौसठ इन्द्र एवं इन्द्राणियों की आराधना के लिए चौसठ-चौसठ एकासन करें। तदनन्तर चौबीस शासन-यक्ष एवं यक्षिणियों की आराधना के लिए चौबीस-चौबीस एकासन करें। फिर दस दिक्पालों की आराधना के लिए दस एकासना करें। फिर नौ ग्रह और क्षेत्रपाल इन दस की आराधना के लिए दस एकासना करें। उसके बाद इन सबकी सामूहिक आराधना के लिए एक उपवास करें।

इस प्रकार प्रस्तुत तप में उपवास 1, आयम्बिल 11 और एकासन 264 किये जाते हैं तथा यह तप 277 दिनों में पूर्ण होता है।

इसका यन्त्र न्यास इस प्रकार है –

तप दिन-277														
नाम	नंद्या वर्त्त	सौध मेंन्द्र	ईशा नेन्द्र	श्रुत देवता	प्रथम वलय	द्वितीय वलय	तृतीय वलय	चतुर्थ वलय	पंचम वलय	षष्ठ वलय	सप्तम वलय	अष्टम वलय	नवम वलय	दशम वलय
तप	1 उप.	1 आ.	1 आ.	1 आ.	8 आ.	24 ए.	16 ए.	24 ए.	64 ए.	64 ए.	24 ए.	24 ए.	10 ए.	10 ए.

उद्यापन – इस तप की पूर्णाहुति पर जिनालय में बृहत्स्नात्र पूजा करें। उपाश्रय में प्रतिष्ठा विधि के अनुसार नंद्यावर्त्त पूजा करें। साधर्मी भक्ति एवं संघपूजा करें।

51. बीसस्थानक तप

जिस तप में अरिहन्त आदि श्रेष्ठ बीस पदों (स्थानों) की आराधना की जाती है उसे बीसस्थानक-तप कहते हैं। तीर्थङ्करों के जीवन चरित्र से अवगत होता है कि प्रत्येक तीर्थङ्कर यह तप अवश्य आचरते हैं। यह आवश्यक नहीं कि सभी तीर्थङ्कर बीस ही पदों की उपासना करते हों, लेकिन इस तप का आराधन करते हुए तीर्थङ्कर नामकर्म का बंध निश्चितमेव करते हैं। यह तप तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन करने में परम निमित्त है। यदि इसकी आराधना सम्यक् विधि से की जाये तो उसी भव में इस तप का सुफल प्राप्त हो सकता है। इस सम्बन्ध में गीतार्थ मुनियों ने कहा है – **"तीजे भव थानक तप करि।"**

वर्तमान में यह तप खूब प्रचलित है। आज भी यह तप श्रेष्ठ फल के उद्देश्य से ही किया जाता है। इसकी आराधना आबाल-वृद्ध सभी कोई कर सकते हैं।

यह तप विधिमार्गप्रपा में इस प्रकार प्राप्त होता है–

तित्थयरनामकरणाइ बीसं ठाणाइं पारणंतरिएहिं वीसाए उववासेहिं आराहिज्जंति त्ति चालीसदिणमाणो वीसट्ठाणतवो।।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 29

इस तप में अरिहंत आदि बीस स्थानों की आराधना हेतु बीस उपवास एकान्तर पारणा पूर्वक करें। इस प्रकार चालीस दिन में यह तप पूर्ण होता है।

वर्तमान की प्रचलित परम्परा में प्रत्येक पद की आराधना 20-20 उपवास पूर्वक की जाती है। लगभग 400 उपवास पूर्वक यह तप पूर्ण होता है। कुछ विरले साधक बेले-बेले, तेले-तेले से भी इन पदों की आराधना करते हैं। आजकल एकासना द्वारा भी यह तप किया जा रहा है।

आचार्य वर्धमानसूरि ने भी इस तप की चर्चा अवश्य की है लेकिन उन्होंने इस आराधना में तप करना आवश्यक नहीं बतलाया है। उनका मन्तव्य है कि मुक्ति के लिए इन बीस पदों की आराधना अवश्य की जानी चाहिए, किन्तु वह तप द्वारा ही की जाये यह जरूरी नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में

तत्सम्बन्धी प्रामाणिक पाठ देखने को नहीं मिले हैं।

1. वर्तमान सामाचारी के अनुसार एक पद की आराधना निमित्त 20 उपवास छह माह की अवधि में पूर्ण हो जाने चाहिए यानि एक ओली छह माह के भीतर पूर्ण कर लेनी चाहिए, अन्यथा उस ओली को पुनः से करने का जीतव्यवहार है। इस तरह दस वर्षों में बीस ओली की आराधना हो जानी चाहिए।

2. प्रत्येक उपवास के दिन तीनों समय देववन्दन, उभय सन्ध्याओं में प्रतिक्रमण, निर्धारित संख्या में साथिया आदि यथावत करने चाहिए।

3. जन्म-मरण के सूतक, चैत्र-आसोज की शाश्वती ओली, क्षय-वृद्धि तिथि आदि दिनों में यह तप नहीं करना चाहिए।

उद्यापन – इस तप की एक-एक ओली अथवा युगपद् बीस ओली पूर्ण होने पर बृहत्स्नात्र पूजा रचायें तथा ज्ञान-दर्शन-चारित्र के बीस-बीस उपकरण गृहस्थ एवं साधुओं को यथावश्यकता प्रदान करें। बीस ओली सम्पन्न होने पर साधर्मी वात्सल्य एवं संघ पूजा करें।

• आचार्य विहित परम्परानुसार इस तप के प्रत्येक पद की आराधना करते समय निम्न क्रियाएँ करें–

	जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1.	ॐ ह्रीँ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20
2.	ॐ ह्रीँ नमो सिद्धाणं	39	39	39	20
3.	ॐ ह्रीँ नमो पवयणस्स	27	27	27	20
4.	ॐ ह्रीं नमो आयरियाणं	36	36	36	20
5.	ॐ ह्रीँ नमो थेराणं	10	10	10	20
6.	ॐ ह्रीँ नमो उवज्झायाणं	25	25	25	20
7.	ॐ ह्रीँ नमो लोए सव्वसाहूणं	27	27	27	20
8.	ॐ ह्रीँ नमो नाणस्स	51	51	51	20
9.	ॐ ह्रीँ नमो दंसणस्स	67	67	67	20
10.	ॐ ह्रीँ नमो विणय-संपन्नस्स	52	52	52	20
11.	ॐ ह्रीँ नमो चारित्तस्स	70	70	70	20
12.	ॐ ह्रीँ नमो बंभव्वयधारिणं	18	18	18	20

13.	ॐ ह्रीँ नमो किरियाणं	25	25	25	20
14.	ॐ ह्रीँ नमो तवस्स	12	12	12	20
15.	ॐ ह्रीँ नमो गोयमस्स	11	11	11	20
16.	ॐ ह्रीँ नमो जिणाणं	20	20	20	20
17.	ॐ ह्रीँ नमो संयमस्स	17	17	17	20
18.	ॐ ह्रीँ नमो अभिनव नाणस्स	51	51	51	20
19.	ॐ ह्रीँ नमो सुयस्स	20	20	20	20
20.	ॐ ह्रीँ नमो तित्थस्स	38	28	38	20

52. अष्टकर्मोत्तर-प्रकृति तप

यह कर्मसूदन तप का ही बृहद् प्रकार है। सामान्यत: कर्मसूदन तप आठ कर्मों को क्षय करने के उद्देश्य से किया जाता है जबकि प्रस्तुत तप में आठ कर्मों की 148 उत्तर प्रकृतियों को आत्म प्रदेशों से पृथक् करने का भाव निहित है। स्वरूपतया इस तप की आराधना कर्म रूपी वृक्ष की शाखा, प्रशाखा एवं पत्तियाँ आदि सर्वांश को विनष्ट करने के प्रयोजन से की जाती है। इस तप के फल से शाश्वत सुख का साक्षात्कार होता है।

यह आगाढ़ तप साधु एवं गृहस्थ दोनों के लिए आचरणीय है।

विधिमार्गप्रपानुसार इसकी निम्न विधि है –

1. नाणावरणिज्जस्स उत्तर पयडीओ पंच 2. दंसणावरणिज्जस्स नव 3. वेयणीयस्स दो 4. मोहणीयस्स अट्ठावीसं 5. आउस्स चत्तारि 6. नामस्स तेणउई 7. गोयस्स दो 8. अंतरायस्स पंच एवं अडयाल-सएण उववासाणं अट्ठ-कम्म उत्तरपयडी तवो।। **विधिमार्गप्रपा, पृ. 27**

आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं–

1. ज्ञानावरणी कर्म की पाँच 2. दर्शनावरणीय कर्म की नौ 3. वेदनीय कर्म की दो 4. मोहनीय कर्म की अट्ठाईस 5. आयुष्य कर्म की चार 6. नामकर्म की तिरानबे 7. गोत्रकर्म की दो और 8. अन्तराय कर्म की पाँच - कुल 148 उत्तर प्रकृतियाँ हैं।

इस तप में एक सौ अड़तालीस उपवास निरन्तर अथवा एकान्तर एकाशने के पारणे से करें। इस प्रकार यह तप लगभग पाँच महीने अथवा दस महीने में पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर मूलनायक परमात्मा की स्नात्र पूजा करें, ज्ञान की भक्ति करें, परमात्मा के आगे 148-148 संख्या में मोदक, फल आदि चढ़ायें, गुरु को आहार आदि बहरायें तथा साधर्मी भक्ति एवं संघ पूजा करें।

- जीतव्यवहार के अनुसार इस तप में उपवास के दिन उत्तर प्रकृतियों के क्रम से निम्न जाप आदि करें–

	जाप	सा.	खमा.	कायो.	माला
1.	ज्ञानावरणी कर्म की उत्तर प्रकृतियों में 5 दिन				
	श्री अनन्तज्ञान संयुताय सिद्धाय नमः	5	5	5	20
2.	दर्शनावरणी कर्म में 9 दिन				
	श्री अनन्तदर्शन संयुताय सिद्धाय नमः	9	9	9	20
3.	वेदनीय कर्म में 2 दिन				
	श्री अव्याबाधगुणसंयुताय सिद्धाय नमः	2	2	2	20
4.	मोहनीय कर्म में 28 दिन				
	श्री अनन्तचारित्रगुण संयुताय सिद्धाय नमः	28	28	28	20
5.	आयुष्य कर्म में 4 दिन				
	श्री अक्षयस्थितिगुण संयुताय सिद्धाय नमः	4	4	4	20
6.	नामकर्म में 93 दिन				
	श्री अरूपी निरंजनगुण संयुताय सिद्धाय नमः	93	93	93	20
7.	गोत्रकर्म में 2 दिन				
	श्री अगुरुलघुगुण संयुताय सिद्धाय नमः	2	2	2	20
8.	अन्तराय कर्म में 5 दिन				
	श्री अनन्तवीर्यगुण संयुताय सिद्धाय नमः	5	5	5	20

फल की आकांक्षा से किये जाने वाले तप

आचार्य हरिभद्रसूरि (पंचाशक प्रकरण 19/25) कहते हैं कि जिससे कषाय का निरोध हो, ब्रह्मचर्य का पालन हो, जिनेन्द्र देव की पूजा-स्तुति हो और

भोजन का त्याग हो वे सभी तप कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त शेष तप मुग्ध लोक में विशेष रूप से प्रचलित होने पर भी कल्याणकारक नहीं है। मुग्ध प्राणी शुरू से ही मोक्षार्थ तप में प्रवृत्ति नहीं करते हैं, अपितु लौकिक उपलब्धियों हेतु तप करते हैं जबकि बुद्धिमान आत्माएँ मोक्ष प्राप्ति के लिए आगमोक्त विधि से ही तप करती हैं।

यहाँ प्रश्न होता है कि मोक्ष-प्राप्ति के लक्ष्य से किया गया तपश्चरण ही आत्मविशुद्धि का हेतु बनता है, शेष लौकिक फल के जनक होते हैं तब उस प्रकार के तप क्यों किये जाएं?

भौतिक सुख की उपलब्धि से संसार-चक्र का अन्त नहीं होता, जबकि तप साधना संसार चक्र को विखण्डित करने के लिए की जाती है, अत: लोक समृद्धि के निमित्त तप नहीं किये जाने चाहिए? इसका समाधान देते हुए बताया गया है कि सर्वाङ्ग सुन्दर, निरुजशिखा, आयतिजनक आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के तप भले ही दैहिक फल की अपेक्षा से किये जाते हों, किन्तु ये तप जिनशासन में नव प्रविष्ट जीवों की योग्यता के अनुसार मोक्षमार्ग स्वीकार के कारण हैं, क्योंकि कई जीव ऐसे भी हो सकते हैं जो प्रारम्भ में संसार-सुख की इच्छा से जिन धर्म में प्रवृत्त होते हों; किन्तु बाद में लौकिक आकांक्षाओं से रहित मोक्षमार्ग की अभिरुचि वाले बन जाते हैं। इसलिए मुग्ध प्राणियों के लिए फलाकांक्षा तप मोक्ष प्राप्ति में पारम्परिक हेतुभूत होने से निरर्थक नहीं है। कुशल अनुष्ठानों में विघ्न न आये, तद्हेतु साधर्मिक देवताओं की भी तप रूप आराधना की जाती है। कुछ तप कषायादि के निरोध हेतु किये जाते हैं जिससे तपस्वी साधक मोक्ष मार्ग के अनुकूल भाव पाकर आप्त उपदिष्ट चारित्र प्राप्त कर लेते हैं।

कहने का भावार्थ यह है कि अध्यात्म जगत में सर्व प्रकार के तपों का भिन्न-भिन्न दृष्टियों से एक विशिष्ट महत्त्व है। कुछ तपश्चर्याएँ मोक्ष की अनन्तर कारण होती हैं तो कुछ परम्परा से मोक्ष दिलवाती हैं।

1. सर्वाङ्गसुन्दर तप

इस तप के नाम से ही ज्ञात होता है कि यह तप सर्वाङ्गसुन्दर शरीर की प्राप्ति के लिए किया जाता है, क्योंकि शरीर के सर्वाङ्ग पूर्ण होने पर ही धर्म की प्राप्ति सुलभ होती है। श्रावक को मार्गानुसारी के 35 गुणों से युक्त होना चाहिए, उनमें श्रावक का 'सर्वाङ्गसुन्दर होना' भी एक गुण बतलाया गया है। इस तप को

विधिवत करने से सर्वाङ्ग सुन्दरता की प्राप्ति होती है। जैनाचार्यों ने यह आगाढ़ तप मुनि एवं गृहस्थ उभय वर्गीय आराधकों के लिए आवश्यक बतलाया है। आज इस तप का प्रचलन नहीं के बराबर है।

इसकी प्रामाणिक विधि निम्न प्रकार है –

अट्ठुववासा एगंतरेण, विहिपारणं च आयामं।
सव्वंगसुंदरो सो होइ, तवो सुक्क पक्खम्मि।।

पंचाशक, 19/30

तहा सुक्कपक्खे अट्ठोववासा एगंतरआयंबिलपारणेण।
सव्वंगसुंदरो खमाभिग्गहजिणपूयामुणिदाणपरेण विहेओ।।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 25

शुक्लपक्षेऽष्टोपवासा, आचाम्लान्तरिताः क्रमात्।
विधीयन्ते तेन तपो, भवेत्सर्वांगसुन्दरम्।।

आचारदिनकर, पृ. 365

पंचाशक प्रकरण आदि ग्रन्थों के अनुसार इसमें शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन से आठ उपवास एकान्तर आयम्बिल के पारणे से करें अर्थात शुक्ल पक्ष की एकम के दिन उपवास करके पारणे में आयम्बिल करें- इस प्रकार आठ उपवास और सात आयम्बिल द्वारा पन्द्रह दिन में यह तप पूर्ण करें। इस तपस्या में शक्ति के अनुसार क्षमा, संयम आदि दस प्रकार के धर्मों का पालन करते हुए कषायादि का त्याग करें।

इसका यन्त्र न्यास यह है –

तप दिन- 15, शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा तक															
शुक्ल तिथि	प्र.	द्वि.	तृ.	च.	पं.	ष.	स.	अ.	न.	द.	ए.	द्वा.	त्र.	च.	पू.
तप	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ

उद्यापन – इस तप के अनुमोदनार्थ पूर्णिमा के दिन बृहत्स्नात्र पूजा करें, फिर परमात्मा के आगे रत्नजड़ित स्वर्णमय पुरुष रखें तथा संघ वात्सल्य एवं संघपूजा करें।

• गीतार्थ आचार का अनुसरण करते हुए तपस्या काल में अरिहन्त पद

की आराधना करें।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

2. निरुजशिखा तप

निरुजशिखा का अर्थ है रोग रहित शिखा। जिस तप के द्वारा मस्तक पर्यन्त सम्पूर्ण शरीर निरोगी बनता है, उसे निरुजशिखा तप कहते हैं। इसमें सर्वाङ्ग निरोग अवस्था को प्राप्त करते हैं, इसलिए यह तप सर्वाङ्गसुन्दर तप की भाँति कृष्णपक्ष में किया जाता है। इस तप के करने से बाह्य एवं आभ्यन्तर आरोग्य की प्राप्ति होती है। मूलत: भव रोग के उच्छेद के लिए यह तप किया जाता है। यह अनागाढ़ तप गृहस्थ साधकों हेतु प्रस्थापित है।

इसकी आचरण विधि इस प्रकार है –

''एवं चिय किण्ह पक्खे गिलाणपडिजागरणाभिग्गहसारो निरुजसिंहो।''

विधिमार्गप्रपा, पृ. 25

तपो नीरुजशिखाख्यं हि, विधेयं तद्वदेव हि।
नवरं कृष्ण पक्षे तु, करणं तस्य शस्यते।।

आचारदिनकर, पृ. 366

यह तप सर्वाङ्गसुन्दर तप की तरह ही किया जाता है। विशेष इतना है कि इसमें कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन से आठ उपवास एकान्तर आयंबिल के पारणा पूर्वक करें। इस तरह आठ उपवास और सात आयंबिल द्वारा 15 दिनों में यह तप पूर्ण होता है। इस तप के दिनों में रोगी की सेवा करने का नियम रखना चाहिए।

इसका यन्त्र न्यास द्रष्टव्य है –

तप दिन- 15, कृष्ण प्रतिपदा से अमावस्या तक															
कृष्ण तिथि	प्र.	द्वि.	तृ.	च.	पं.	ष.	स.	अ.	न.	द.	ए.	द्वा.	त्र.	च.	पू.
तप	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ.	आ.	उ

उद्यापन – इस तप की उद्यापन-विधि पूर्व तप की भाँति समझनी चाहिए।

• प्रचलित विधि के अनुगमनार्थ इस तप काल में प्रतिदिन अरिहन्त पद का गुणना आदि करें।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

3. सौभाग्यकल्पवृक्ष तप

जिस वृक्ष के सामने चिन्तन करने मात्र से मनवांछित वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है, उसे कल्पवृक्ष कहा गया है। युगलिक काल में जन्म लेने वाले मानवों का निर्वाह कल्पवृक्ष से ही होता है। उन्हें असि-मसि-कृषि आदि किसी तरह की व्यापारिक या खाद्य प्रवृत्ति नहीं करनी पड़ती है। इस दुषमकाल में कल्पवृक्षों का प्रभाव समाप्त हो चुका है। तदुपरान्त यह तप सौभाग्य देने में कल्पवृक्ष के समान है अतः इसे सौभाग्यकल्पवृक्ष तप कहते हैं।

इस तप के फल से शाश्वत सौभाग्य की प्राप्ति होती है। सौभाग्य सर्व जनों को प्रिय है। व्यावहारिक विवाह आदि प्रसंगों पर भी सौभाग्य की वांछा की जाती है।

आचारदिनकर के अनुसार यह तप साधुओं के लिए भी आचरणीय है जो भौतिक दृष्टि से उचित नहीं है। चूँकि साधु प्रायः कभी भी कोई तप फल की आकांक्षा से नहीं करते हैं, अतः यह तप श्रावकों के लिए ही करणीय होना चाहिए।

विधिमार्गप्रपा आदि में इसकी निम्न विधि उल्लिखित है –

चित्ते एगंतरओ सव्वरसं पारणं च विहिपुव्वं
सोहग्गकप्परूक्खो, एस तवो होइ णायव्वो।।

पंचाशक प्रकरण, 19/35

तहा सोहकग्गप्परूक्खो चित्ते एगंतरोवासा।
गुरुदाण विहिपुव्वं सव्वरसं पारणगं च।।

विधिमार्गप्रपा, पृ.25

सौभाग्य-कल्पवृक्षस्तु, चैत्रेऽनशन-संचयैः।
एकान्तरैः परं कार्यं, तिथौ चन्द्रादिके शुभे।।

आचारदिनकर, पृ. 366

यह तप चैत्र मास की कृष्ण प्रतिपदा से प्रारम्भ करके सम्पूर्ण मास में

एकान्तर उपवास द्वारा किया जाता है। इस तप में 15 उपवास और 15 पारणा कुल एक महीना लगता है।

इस तपस्या के दौरान पारणे के दिन मुनियों को सरस भोजन देकर फिर स्वयं को ग्रहण करना चाहिए।

इसका यन्त्र न्यास यह है–

तप दिन- 15, पारणा दिन- 15															
कृष्ण तिथि	प्र.	द्वि.	तृ.	च.	पं.	ष.	स.	अ.	न.	द.	ए.	द्वा.	त्र.	च.	अमा.
तप	उ.	पा.	उ.	पा.	उ.	पा.	उ.	पा.	उ.	पा.	उ.	पा.	उ.	पा.	उ.
शुक्ल तिथि	प्र.	द्वि.	तृ.	च.	पं.	ष.	स.	अ.	न.	द.	ए.	द्वा.	त्र.	च.	पू.
तप	पा.	उ.	पा.	उ.	पा.	उ.	पा.	उ.	पा.	उ.	पा.	उ.	पा.	उ.	पा.

उद्यापन– इस तप के पूर्ण होने पर यथाशक्ति दान करें, विविध फलों के भार से झुकी हुई विविध शाखाओं से युक्त कल्पवृक्ष की सुनहरे चावलों आदि से रचना करें। जिन-प्रतिमा के आगे नानाविध फलों के भार से अवनत स्वर्ण का अथवा चाँदी का कल्पवृक्ष चढ़ायें। चारित्रनिष्ठ मुनियों को दान दें तथा संघ पूजा एवं साधर्मी भक्ति करें।

• प्रचलित परम्परा के अनुगमनार्थ इस तपश्चर्या में अरिहन्त पद की आराधना करें।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

4. दमयन्ती तप

उपलब्ध कृतियों के अनुसार यह तप नल राजा के वियोगावस्था में दमयन्ती द्वारा किया गया था, इसलिए इसे दमयन्ती-तप कहते हैं। इस तप के करने से दमयन्ती के देह व मन रूपी गगन मण्डल पर छाये विपत्तियों के बादल खण्ड-खण्ड होकर नष्ट हो गये, वैसे ही इस तप के प्रभाव से समस्त विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। यह तप बाह्य जगत के साथ-साथ आभ्यन्तर जगत में छायी

आपत्तियों एवं विपत्तियों से भी रक्षा करता है। यह श्रावकों के करने योग्य अनागाढ़ तप है।

विधिमार्गप्रपा आदि में वर्णित इसकी विधि इस प्रकार है –

तहा एगेग-तित्थयर-मणुसरिय वीस-वीस-आयंबिलाणि।
पारणय रहियाणि। एगं च आयंबिलं सासण-देवयाए।।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 27

दमयन्ता प्रति जिनमाचाम्लान्येक विंशतिः।
कृतानि संततान्येव, दमयन्तीतपो हि तत्।।

आचारदिनकर, पृ. 366

इस तप में प्रत्येक तीर्थङ्कर को लक्ष्य में रखकर बीस-बीस तथा शासन देवता को लक्ष्य में रखकर एक-एक इस तरह निरन्तर इक्कीस-इक्कीस आयंबिल से एक-एक तीर्थङ्कर की उपासना करें। प्रत्येक तीर्थङ्कर के निमित्त 21-21 आयंबिल करने पर कुल 504 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

वर्तमानकाल की अपेक्षा आचार्य वर्धमानसूरि यह भी कहते हैं कि शक्ति न होने पर प्रत्येक तीर्थङ्कर के 21 आयंबिल करने के बाद पारणा भी कर सकते हैं। इस विधि से पारणे के 24 दिन मिलाने पर 528 दिनों में यह तप पूरा किया जाता है।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर आयम्बिल की संख्या अनुसार 504-504 विविध जाति के फल, पकवान एवं मुद्राएँ परमात्मा के समक्ष रखें। चौबीस तीर्थङ्करों के 24 तिलक चढ़ायें तथा साधर्मी भक्ति एवं संघ पूजा करें।

• दमयन्ती तप की सम्यक् आराधना हेतु इन दिनों में जिस तीर्थङ्कर का तप चल रहा हो, उस तीर्थङ्कर नाम के आगे 'सर्वज्ञाय नमः' जोड़ दें।

जाप	**साथिया**	**खमा.**	**कायो.**	**माला**
श्री ऋषभदेव सर्वज्ञाय नमः	12	12	12	20
अथवा				
श्री शासनदेव्यै नमः				

5. आयतिजनक तप

'आयति' शब्द का अर्थ है परवर्तीकाल और 'जनक' शब्द का अर्थ है उत्पन्न करने वाला। यह भविष्यकाल (कालान्तर) में शुभत्व को प्रदान करने वाला होने से इसे आयतिजनक तप कहते हैं। इस तप के करने से उत्तरकाल में

सर्व तरह के शुभत्व की प्राप्ति होती है। यह आगाढ़ तप श्रावकों के लिए बताया गया है।

इसके निम्नलिखित तीन प्रकारान्तर देखे जाते हैं–

प्रथम प्रकार

आयइजणगो वि एवं (एगासणपारणेणं बत्तीसं आयंबिलाणि) चिय नवरं वंदणग-पडिक्कमण-सज्झायकरण-साहुसाहुणि-वेयावच्चाइ-सव्व-कज्जेसु अणिगूहिय-बल वीरियस्स अच्चंत-परिसुद्धो हवइ।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 25

प्रथम विकल्प के अनुसार इस तप में बत्तीस आयम्बिल एकान्तर एकाशन के पारणे से करें। इस तरह यह तप 64 दिनों में पूर्ण होता है। इस तपश्चरण काल में देववन्दन, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, साधु-साध्वी वैयावृत्य आदि शुभ कार्य अन्तरंग शक्ति को छिपाये बिना अत्यन्त शुद्धि पूर्वक करने चाहिए।

द्वितीय प्रकार

एगं पुण एवमाहंसु अणिगूहिय-बल-वीरियस्स निरंतर-बत्तीसायं-बिल-पमाणो एगासणं तरिय-बत्तीसोववायप्पमाणे वा आयइ-जणगोत्ति।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 25

दूसरी विधि के अनुसार इस तप में स्वशक्ति को छिपाये बिना लगातार बत्तीस आयम्बिल करें अथवा एकासन के अन्तर से बत्तीस उपवास परिमाण तप करें। इस विकल्प में 32 या 64 दिन लगते हैं।

तृतीय प्रकार

कार्यं द्वात्रिंशदाचाम्लैः स्वसत्वेन निरंतरैः।
एवं स्यादायतिशुभं, तप उद्यापनान्वितम्।।

आचारदिनकर, पृ. 366-67

तीसरी विधि के अनुसार यह तप निरन्तर बत्तीस आयंबिल करने से पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर बृहद् स्नात्र पूजा करें, 24-24 की संख्या में पकवान, फल आदि चढ़ायें तथा साधर्मीभक्ति एवं संघपूजा करें।

• जीत परम्परानुसार इस तप के दिनों में प्रतिदिन अरिहन्त पद का गुणना आदि करें।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

6. अक्षयनिधि तप

जिसका कभी क्षय न हो ऐसी निधि को अक्षयनिधि कहते हैं। यह तप द्रव्यतः भौतिक निधि एवं आध्यात्मिक निधि प्राप्त करने के प्रयोजन से किया जाता है। इस तप के प्रभाव से मनवांछित निधि की प्राप्ति होती ही है इसलिए इसे अक्षयनिधि-तप कहते हैं।

यह आगाढ़ तप श्रावकों के लिए करणीय बतलाया गया है। वर्तमान में यह तप अत्यधिक प्रचलित है। इसके दो प्रकारान्तर निम्न हैं–

प्रथम प्रकार

तहा जिण-पुरओ कलसो पइट्ठियो मुट्ठीहिं पइ-दिण-खिप्प-माण-तंडुलेहिं जावइय-दिणेहिं पूरिज्जइ, तावइय-दिणाणि एगासणगाइं अक्खय-निहि-तवो। **विधिमार्गप्रपा, पृ. 27**

विधिमार्गप्रपा के निर्देशानुसार भाद्र कृष्णा चतुर्थी के दिन से यह तप प्रारम्भ करें। उस दिन तीर्थङ्कर प्रतिमा के आगे एक कलश की स्थापना करें, फिर उसमें प्रतिदिन प्रमाणोपेत एक मुट्ठी चावल डालते जायें, जितने दिनों में वह कलश भरे उतने दिनों तक एकासना आदि तप करें, वह अक्षयनिधि-तप कहलाता है।

इस विधि में दिनों की गिनती नहीं होती। जितने दिनों में कलश भरे उतने दिन तप किया जाता है।

दूसरा प्रकार

घटं संस्थाप्य देवाग्रे, गन्ध-पुष्पादि-पूजितम्।
तपो विधीयते पक्षं, तदक्षयनिधिः स्फुटम्।।

आचारदिनकर, पृ. 367

आचारदिनकर के मतानुसार यह तप भादवा वदि चतुर्थी को प्रारम्भ करें। उस दिन जिनेश्वर परमात्मा के आगे की भूमि को गाय के गोबर से शुद्ध करके

तथा उस पर गहुँली करके स्वर्ण, मणि, मुक्ताफल, सुपारी आदि से भरे हुए घट की स्थापना करें। तत्पश्चात एक पक्ष (15 दिन) तक उसकी नित्य पूजा करें। प्रतिदिन परमात्मा की तीन प्रदक्षिणा करके कुम्भ में अंजलि भर अक्षत डालें। प्रतिदिन स्वशक्ति के अनुसार बियासना, एकासना आदि का प्रत्याख्यान करें एवं नृत्य गीतोत्सव आदि करते हुए पर्युषण पर्यन्त यह तप करें।

इस तप की चार परिपाटी चार वर्ष में पूर्ण होती है। वर्तमान में यह तप भाद्र कृष्णा चतुर्थी से संवत्सरी पर्यन्त सोलह दिन एकासन द्वारा किया जाता है।

उद्यापन – इस तप के बहुमानार्थ चौथी परिपाटी के अन्त में बृहद् स्नात्र पूजा रचायें, परमात्मा के आगे विविध जाति के पकवान आदि रखें तथा साधर्मी भक्ति एवं संघपूजा करें।

• गीतार्थ मुनियों के अनुसार इस तपोयोग में ज्ञान पद की आराधना करनी चाहिए। इन दिनों ज्ञान पद सम्बन्धी विशिष्ट क्रिया भी होती है। विस्तार भय से उसका वर्णन 'तपसुधानिधि' आदि संकलित पुस्तकों से जानें।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ ह्रीँ क्लीं नमो नाणस्स	51	51	51	20

7. मुकुटसप्तमी तप

यह तप सात महीनों तक सप्तमी तिथि के दिन किया जाता है तथा उद्यापन में मुकुट बनवाकर चढ़ाते हैं। इसलिए इसे मुकुटसप्तमी तप कहते हैं। इस तप के पुण्य योग से वांछित वस्तुओं की प्राप्ति होती है। यह आगाढ़ तप गृहस्थों के लिए निर्दिष्ट किया गया है।

इसकी प्राप्त विधि निम्न प्रकार है –

आषाढ़ादि च पौषान्तं, सप्तमासान् शितीष्वपि।
सप्तमीषूपवासाश्च, विधेयाः सप्तसंख्यका।।

आचारदिनकर, पृ. 367

इस तप में आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष एवं पौष महीनों की कृष्णपक्ष की सप्तमी के दिन उपवास करें।

इसमें अनुक्रम से 1. विमलनाथ 2. अनन्तनाथ 3. चन्द्रप्रभु या शान्तिनाथ 4. नेमिनाथ 5. ऋषभदेव 6. महावीरस्वामी और 7. पार्श्वनाथ – इन सात

तीर्थङ्करों की विशेष आराधना करें। उपवास के दिन उस तीर्थङ्कर की स्नात्र पूजा रचायें तथा अष्टप्रकारी पूजा सामग्री चढ़ायें।

उद्यापन – इस तप की महिमा वर्धनार्थ पूर्णाहुति अवसर पर बृहद्स्नात्र पूजा करें, चाँदी की लोकनाली बनवाकर उसके ऊपर स्वर्णमय एवं रत्नमय मुकुट निर्मित कर रखें। उपवास संख्या के अनुसार सात-सात पकवान एवं फल आदि सर्व सामग्री परमात्मा के समक्ष रखें। साधर्मीभक्ति एवं संघपूजा करें।
आचारदिनकर, पृ. 367

• प्रचलित परम्परानुसार इस तप के दिनों में जिस तीर्थङ्कर का तप प्रवर्तित हो उसके नाम का जाप आदि करें।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री विमलनाथाय नमः	12	12	12	20

शेष गुणना इसी भाँति समझें।

8. अम्बा तप

बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान नेमिनाथ की शासन रक्षिका अम्बिका देवी मानी जाती है। यह तप उसी अम्बिका देवी के आराधनार्थ किया जाता है, इसलिए इसका नाम अम्बा तप है। इस तप के फलस्वरूप अम्बा देवी से वरदान प्राप्त होता है। वर्तमान में इस देवी के नाम का प्रभुत्व अत्यधिक है। यह तप गृहस्थों के लिए करणीय है।

यह तप दो रीतियों से किया जाता है –

प्रथम रीति

तहा अंबा-तवो पंचसु किण्ह पंचमीसु एगासणाइ-नेमिनाह अंब-पूया-पुव्वं किज्जइ।। **विधिमार्गप्रपा, पृ. 26**

विधिमार्गप्रपा के मतानुसार यह तप किसी भी शुभ मास की कृष्ण पंचमी से प्रारम्भ कर लगातार पाँच महीनों तक पाँच कृष्ण पंचमियों में एकासना आदि के द्वारा करें। उस दिन नेमिनाथ भगवान और अम्बा देवी की पूजा भी अवश्य करें। इस प्रकार प्रथम विधि के अनुसार यह तप पाँच माह की कृष्ण पंचमियों में एकासन आदि के द्वारा किया जाता है।

दूसरी रीति

शुक्लादि-पंचमीष्वेव, पंचमासेषु वै तपः।
एकभक्तादिना वै कार्यमम्बापूजन पूर्वकम्।।

आचारदिनकर, पृ. 367

आचारदिनकर के निर्देशानुसार यह तप शुक्लपक्ष की पाँच पंचमियों में एकासना आदि तप करते हुए करें।

इस विधि के अनुसार भी भगवान नेमिनाथ और अम्बादेवी की पूजा अवश्य करनी चाहिए।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर उत्तम धातुओं से अम्बादेवी की मूर्ति बनवाकर उसकी स्थापना करें और शास्त्रोक्त विधि से हमेशा उसकी पूजा करें। उस दिन साधर्मी वात्सल्य एवं संघपूजा भी करें।

• प्रचलित परिपाटी में इस तप की आराधना निम्न विधि से करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री अम्बिका देव्यै नमः	12	12	12	20

यह तप भगवान नेमिनाथ की शासन देवी से सम्बन्धित है तथा इसमें मुख्य आराध्य अथवा सर्वोच्च स्थानीय अरिहन्त परमात्मा ही है। इसलिए साथिया आदि 12-12 किये जाते हैं।

9. रोहिणी तप

यह तप रोहिणी नक्षत्र में किया जाता है, इसलिए इसे रोहिणी-तप कहते हैं। इस तप की आराधना से स्त्रियों को अविधवापन और सौभाग्यसुख की प्राप्ति होती है। इस तपश्चर्या के द्वारा रोहिणी नामक राजकन्या ने अखण्ड सौभाग्य को प्राप्त किया था, इस विषयक वृत्तान्त संकलित प्रतियों से जानना चाहिए। आज स्त्रियों में रोहिणी तप खूब प्रचलित है। यह गृहस्थ साधकों का आगाढ़ तप है।

विधिमार्गप्रपादि में उल्लिखित विधि इस प्रकार है –

तहा रोहिणी-तवो रोहिणी-नक्खत्ते वासुपुज्ज जिण-विसेस-पूया पुरस्सर मुववासो सत्तमासाहि य, सत्तवरिसाणि।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 26

रोहिण्यां च तपः कार्यं, वासुपूज्यार्चना-युतं।
सप्तवर्षं सप्तमासं, उपवासादिभिः परम्।।

आचारदिनकर, पृ. 368

विधिमार्गप्रपा के अनुसार यह तप अक्षय तृतीया के दिन अथवा उसके आगे-पीछे जब रोहिणी नक्षत्र हो उस दिन वासुपूज्य भगवान की पूजा पूर्वक प्रारम्भ करें। तत्पश्चात सात वर्ष और सात महीने तक (प्रति माह) रोहिणी नक्षत्र के दिन उपवास तप करें।

आचारदिनकर के मतानुसार इस तप में यथाशक्ति उपवास, आयंबिल, नीवि या एकासन कुछ भी किया जा सकता है।

उद्यापन– इस तप के सम्पूर्ण होने पर विधिमार्गप्रपा के अनुसार वासुपूज्य भगवान की प्रतिमा बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा करवानी चाहिए। आचारदिनकर के निर्देशानुसार वासुपूज्य भगवान की बड़ी पूजा करवायें, प्रभु पूजा में सोने का अशोक वृक्ष चढ़ायें तथा संघपूजा करें।

• गीतार्थ व्यवहार का अनुपालन करते हुए इस तपस्या काल में मुख्य रूप से अरिहन्त पद की आराधना करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री वासुपूज्यसर्वज्ञाय नमः	12	12	12	20

10. श्रुतदेवता तप

जैनागमों में धर्म दो प्रकार का कहा गया है – 1. चारित्रधर्म और 2. श्रुतधर्म। श्रुतधर्म को श्रुतज्ञान और सम्यग्ज्ञान भी कहते हैं। श्रुतज्ञान की अधिष्ठात्री देवी को श्रुतदेवता कहा जाता है। यह तप श्रुतदेवता की आराधना निमित्त किया जाता है, अतः इसे श्रुतदेवता-तप कहते हैं। इस तप के करने से अगम-अगोचर श्रुत की प्राप्ति होती है। यह आगाढ़ तप गृहस्थ साधकों के लक्ष्य से दिखाया गया है।

विधि

तहा एगारससु सुक्क, एगारससु सुयदेवया-पूया मोणोपवास जुत्तो सुयदेवया तवो।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 26

एकादशेषु शुक्लेषु, पक्षेष्वेकादशेषु च।
यथाशक्ति तपः कार्यं, वाग्देव्यर्चनपूर्वकं।।

आचारदिनकर, पृ. 368

विधिमार्गप्रपा के मत से इसमें ग्यारह शुक्ल एकादशियों के दिन मौन पूर्वक उपवास करें। आचारदिनकर के अनुसार इसमें यथाशक्ति कोई भी तप किया जा सकता है। इस प्रकार यह तप ग्यारह महीनों में पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप की श्रेष्ठता प्रसारित करने हेतु तप के अन्तिम दिन में उत्तम धातु से श्रुतदेवता की मूर्ति बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा करवायें तथा विधि पूर्वक उसकी पूजा करें। उस दिन यथासामर्थ्य साधर्मी भक्ति एवं संघपूजा भी करें।

• प्राचीन परम्परानुसार इस तप के दिनों में अग्रलिखित जापादि करें –

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री श्रुतदेवतायै नमः	14	14	14	20

11. श्री तीर्थङ्करमातृ तप

तीर्थङ्कर परमात्मा की माताओं के निमित्त जो तप किया जाता है, उसे मातृ तप कहते हैं। यह तप वर्तमान अवसर्पिणी कालखण्ड के चौबीस तीर्थङ्कर की माताओं से सम्बन्धित है। तीर्थङ्कर की माताएँ पुण्यशाली होती हैं, क्योंकि जब प्रभु गर्भ में आते हैं तब श्रेष्ठ फलदायी चौदह स्वप्न देखती हैं, गर्भ प्रभाव से माता का शरीर स्वच्छ एवं सुगन्धमय हो जाता है, अन्य माताओं के समान उनका गर्भ-स्थान बेडौल नहीं दिखता, वे गूढ़गर्भा होती हैं। तीर्थङ्कर के जन्म के बाद उनकी माता गर्भ धारण नहीं करतीं, परन्तु इस विषय में नेमिनाथ भगवान की माता शिवादेवी अपवाद रूप हैं, क्योंकि उसने नेमिनाथ के बाद रथनेमि को जन्म दिया था, ऐसा कदाच ही होता है।

सप्ततिशतस्थान प्रकरण में कहा गया है कि वर्तमान भरत क्षेत्रीय चौबीस तीर्थङ्करों की माताओं में से ऋषभ आदि आठ तीर्थङ्करों की माताएँ मोक्ष गयी हैं, सुविधिनाथ आदि आठ तीर्थङ्करों की माताएँ तीसरे सनत्कुमार देवलोक में गयी हैं और कुन्थुनाथ आदि आठ तीर्थङ्करों की माताएँ चौथे माहेन्द्र देवलोक में गयी हैं। मतान्तर से त्रिशला माता का बारहवें देवलोक में जाने का भी उल्लेख मिलता है। इस वर्णन का भावार्थ यह है कि तीर्थङ्कर की माताएँ पूजनीय हैं। यह

तप करने से श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति होती है। इस तप का निर्देश गृहस्थ आराधकों के लिए किया गया है।

विधिमार्गप्रपा आदि ग्रन्थों में इसकी प्रामाणिक विधियाँ कही गयी हैं।

विधि

तहा सत्तसु भद्दवएसु पइदिणं नव-नव-नेवज्ज-ढोवणेण जिण-जणणि-पूया-पुव्वं सुक्क-सत्तमीए आरब्भ तेरासि-पज्जतं एगासण-सत्तगं कीरइ, जत्थ से मायार तवो। भद्दवयसुद्ध-चउद्दसीए पइवरिसं उज्जवणं कायव्व। वलि-दुद्ध-दहि-घिय, खीर-करंबय-लप्पसिया-घेउर-पूरीओ चउसीसं खीच्चडी पूआ पुइ दाडिमाइ- फलाणि य सुपुत्त-सावियाणं दायव्वाइं। पीयवत्थ-अंगरायनया तंबोलाइं दाऊण।।

विधिमार्गप्रपा, पृ. 27

भादस्य शुक्लपक्षे तु, प्रारम्भ सप्तमीं तिथिं।
त्रयोदश्यन्तमाधेयं तपो हि मातृसंज्ञकम्।।

आचारदिनकर, पृ. 368

यह तप भाद्र शुक्ला सप्तमी से प्रारम्भ कर भाद्र शुक्ला त्रयोदशी तक सात दिन एकासन के द्वारा किया जाता है।

मूल विधि के अनुसार यह सात वर्षों में पूर्ण होता है। इसमें सात वर्ष के 7-7 दिन जोड़ने पर कुल 49 दिन लगते हैं। आचार्य जिनप्रभसूरि के मत से इस तप में प्रतिदिन माताओं के चित्रित पट्ट के आगे नये-नये पकवान चढ़ायें। साथ ही सप्तमी को दूध, अष्टमी को दही, नवमी को घी, दशमी को खीर, एकादशी को करंबक (दही भात), द्वादशी को लापसी और त्रयोदशी को घेवर चढ़ायें।

उद्यापन – विधिमार्गप्रपाकार के अनुसार इस तप के दरम्यान प्रतिवर्ष भाद्र शुक्ला चतुर्दशी को उद्यापन करना चाहिए। उस दिन चौबीस-चौबीस मालपुए, अनार आदि विविध जाति के फल, खिचड़ी का पात्र तीर्थंकर परमात्मा की माताओं के समक्ष रखें। चौबीस सुहागिन माताओं को वस्त्र, ताम्बूल आदि प्रदान करें।

आचारदिनकर के अनुसार यह उद्यापन हर दो-दो वर्ष के अन्तराल में पूर्वोक्त रीति से ही करना चाहिए। इस प्रकार सात वर्षों के मध्य तीन उद्यापन करें तथा चौथा उद्यापन सातवें वर्ष में तप पूर्णाहुति के प्रसंग पर करें।

सातवें वर्ष के उद्यापन में तीर्थंकर माताओं के आगे सप्तमी के दिन तेल, अष्टमी को घी, नवमी को पकवान, दशमी को गाय का दूध, एकादशी को दही, द्वादशी को गुड़, त्रयोदशी को खिचड़ी, बड़ी, कनिक (आटा), हरड़, धनिया, मेथी, गोंद, नेत्राञ्जन, सलाई, सात-सात पान, सुपारी आदि रखें। पुत्रवती श्राविका को श्रीफल प्रदान करें। साधर्मी वात्सल्य एवं संघपूजा करें।

• गीतार्थ आज्ञानुसार इस तप के दिनों में प्रतिदिन निम्नोक्त संख्या में कायोत्सर्ग आदि करें–

जाप	**साथिया**	**खमा.**	**कायो.**	**माला**
श्री जिनमात्रे नमः	24	24	24	20

12. सर्वसुखसम्पत्ति तप

समस्त प्रकार के सुखों एवं सम्पत्तियों को उपलब्ध कराने में निमित्त भूत होने से यह तप सर्वसुखसम्पत्ति तप कहलाता है। इस तप का उद्देश्य सर्व प्रकार के सुखों को अनुभूति के स्तर पर रेखांकित करना है। यह तप गृहस्थ वर्ग के लिए ही आराध्य है। मतान्तर से इस तप की तीन विधियाँ प्राप्त होती हैं।

प्रथम प्रकार

तहा एगा पडिवया, दुन्नि दुइज्जाओ, तिन्नि तिज्जाओ, एवं जाव पंचदसीओ उववासा भवंति जत्थ सो। **विधिमार्गप्रपा, पृ. 26**

विधिमार्गप्रपा के अनुसार कृष्ण अथवा शुक्ल पक्षीय किसी भी शुभ प्रतिपदा को यह तप प्रारम्भ करें। फिर उस प्रतिपदा (एकम) के दिन एक उपवास करें। फिर दूसरे पक्ष की दूज तिथि से दो उपवास, तीसरे पक्ष की तीज से तेला, चौथे पक्ष की चतुर्थी से चौला, पाँचवें पक्ष की पंचमी से पंचोला- इस तरह तिथि मुताबिक उपवास संख्या बढ़ाते हुए पन्द्रहवें पक्ष में पूर्णिमा से अथवा अमावस्या से पन्द्रह उपवास करें।

इस प्रकार इस तप में 11 महीना और 22 पक्ष, कुल 120 दिन लगते हैं।

द्वितीय प्रकार

एकादिवृद्धया तिथिषु, तप एकासनादिकम्।
विधेयं सर्वसंपत्ति सुखे, तपसि निश्चितं।।

आचारदिनकर, पृ. 368-69

आचार्य वर्धमानसूरि ने प्रस्तुत तप की पूर्वोक्त विधि ही बतलायी है, केवल उपवास के स्थान पर एकासन का उल्लेख किया है। स्पष्टीकरण के लिए इस तप में प्रतिपदा को एक एकासना करे। दूसरे पक्ष में द्वितीया से दो एकासना करें, तीसरे पक्ष में तृतीया से तीन एकासना करें।

यदि कारणवश कोई तिथि भूल जाएँ, तो पुनः तप का प्रारम्भ करें। इस तरह यह द्वितीय विकल्प भी 120 दिन में पूरा होता है।

तृतीय प्रकार

तीसरे विकल्प के अनुसार इस तप में प्रथम पक्ष की प्रतिपदा को एक उपवास, फिर दो पक्षों की दो दूजों के दो उपवास, फिर तीन पक्ष की तीन तीजों के तीन उपवास- इस प्रकार अमावस्या तथा पूर्णिमा के पन्द्रह उपवास करें। अभी वर्तमान में यही विकल्प अधिक प्रचलित है। इसे आम तौर पर 'पखवासा तप' कहते हैं, क्योंकि इसमें पक्ष की प्रत्येक तिथि की आराधना की जाती है।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर बृहद्स्नात्र पूजा करें, जिन प्रतिमा के आगे 120-120 विविध फल एवं पकवान चढ़ाएँ तथा साधर्मीभक्ति एवं संघपूजा करें।

- प्रचलित परम्परा में इस तप के दिनों में निम्न क्रियाएँ करनी चाहिए–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री ऋषभस्वामी अर्हते नमः	12	12	12	20

13. लघु पखवासा तप

यह सर्वसुखसम्पत्ति तप का लघु प्रकार है। संघयण हीन एवं दुर्बल मन वाले आराधकों की अपेक्षा यह तप निर्दिष्ट किया गया है। इस तप सम्बन्धी मूल पाठ तो देखने को नहीं मिला है, लेकिन वर्तमान में यह तप लोक प्रचलित है, अतः अर्वाचीन प्रतियों (तपसुधानिधि पृ. 145) के आधार पर इसकी विधि दर्शायी जा रही है। इस तप के विषय में भी द्विविध विकल्प हैं।

विधि

प्रथम विकल्प के अनुसार शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त लगातार पन्द्रह उपवास करें। यदि वैसा सामर्थ्य न हो तो दूसरे विकल्प से प्रथम पक्ष की शुक्ल प्रतिपदा को उपवास, दूसरे पक्ष की शुक्ल दूज को एक उपवास, तीसरे शुक्ल

पक्ष की तीज को एक उपवास- इस प्रकार पन्द्रह शुक्ल पक्षों में पन्द्रह तिथियों के पन्द्रह उपवास पूर्ण करें। इसमें दो सौ चालीस दिन लगते हैं।

● प्रचलित विधि के अनुसार इस तप में मुनिसुव्रत भगवान का जाप करते है। साथिया आदि 12-12 करना चाहिए। क्योंकि इसमें अरिहन्त विशेष की ही आराधना की जाती है।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री मुनिसुव्रतस्वामी सर्वज्ञाय नमः	12	12	12	20

14. अमृताष्टमी तप

यह अष्टमी अमृत-अभिषेक के द्वारा पहचानी जाती है। इस दिन अमृत जल के द्वारा अभिषेक किये जाने के कारण इस तप को अमृताष्टमी-तप कहते हैं।

इस तप के फल से आरोग्य की प्राप्ति होती है। स्वरूपतः अमृत तत्त्व अपनी प्रकृति से ही रोग निवारक होता है, इसलिए यह तप आरोग्य लाभ का सूचक माना गया है। इस तप का अधिकारी गृहस्थ माना कहा गया है। इसकी दो विधियाँ निम्नोक्त हैं–

प्रथम रीति

शुक्लाष्टमीषु चाष्टासु, आचाम्लादि तपांसि च।
विदधीत स्वशक्तया च, ततस्तत्पूरणं भवेत्।।

आचारदिनकर, पृ. 370

इस तप में शुक्ल पक्ष की आठ अष्टमियों को यथाशक्ति आयंबिल आदि तप करें। इस प्रकार यह तप आठ महीनों में पूर्ण होता है।

द्वितीय रीति

तपसुधानिधि (पृ. 210) के अनुसार इसमें 13 एकासना, 24 नीवि एवं 15 आयंबिल करने से यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर बृहद्स्नात्र पूजा रचायें, फिर घृत तथा दूध से भरे हुए दो कलश तथा एक मण का मोदक परमात्मा के आगे रखें। संघ वात्सल्य एवं संघपूजा करें।

● प्रचलित सामाचारी के अनुसार इस तप में सिद्ध पद की आराधना करें।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो सिद्धाणं	8	8	8	20

15. परत्रपाली तप

परलोक के लिए यह तप पाल के समान होने से इसे परत्रपाली-तप कहते हैं। यह तप पारलौकिक सुख की कामना से किया जाता है। अतः इस तप के फल से परलोक में सद्गति प्राप्त होती है। इस तप का अधिकारी गृहस्थ माना गया है। इसकी यह विधि बतायी गयी है –

पंच वर्षाणि वीरस्य, कल्याणकसमाप्तितः।
उपवासत्रयं कृत्वाः, द्वात्रिंशदरसांश्चरेत्।।

आचारदिनकर, पृ. 371

इस तप को दीपावली के दिन से प्रारम्भ करके प्रथम तेला (निरन्तर तीन उपवास) करें। तत्पश्चात निरन्तर बत्तीस नीवि करें। इस प्रकार पाँच वर्ष तक करने पर यह तप पूर्ण होता है।

कुछ आचार्यों के अनुसार इसमें नीवि के स्थान पर एकान्तर उपवास करने चाहिए। जैन प्रबोध में इस तप के अन्त में पुनः तेला करने का भी निर्देश किया है।

इस तप यन्त्र का न्यास इस प्रकार है –

वर्ष-5, तप दिन- 35, कुल दिन - 175		
वर्ष	**दिन**	**तप**
1.	कार्तिक वदि अमावस्या	तेला, फिर 32 नीवि
2.	कार्तिक वदि अमावस्या	तेला, फिर 32 नीवि
3.	कार्तिक वदि अमावस्या	तेला, फिर 32 नीवि
4.	कार्तिक वदि अमावस्या	तेला, फिर 32 नीवि
5.	कार्तिक वदि अमावस्या	तेला, फिर 32 नीवि

उद्यापन – इस तप के उद्यापन में हर वर्ष थाल में एक सेर लापसी की पाल बनाकर एवं बीच में सुगन्धित घी से उसे पूर्णकर परमात्मा के आगे रखें। पाँचवें वर्ष के उद्यापन में परमात्मा की बृहत्स्नात्र पूजा रचायें। साधर्मीभक्ति एवं संघपूजा करें।

- गीतार्थ आज्ञानुसार इस तप के दिनों में भगवान महावीर के निर्वाण

कल्याणक का जाप करें तथा शेष क्रियाएँ अरिहन्त पद की आराधनानुसार करें –

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री महावीरस्वामी पारंगताय नम:	12	12	12	20

16. नमस्कारफल तप

यह पूर्व दर्शित नवकार-तप का लघु रूप है। जो शक्तिहीन 68 एकासना करने में असमर्थ हैं, उनके लिए इस तप का प्रावधान किया गया है।

नवकार मन्त्र जैन धर्म का शाश्वत मंत्र है। अत: इसकी आराधना अवश्य करनी चाहिए। यदि नवकार मन्त्र के प्रत्येक अक्षर की आराधना नहीं कर सकते हैं तो उनके नौ पदों को निश्चित साधना चाहिए। यह तप नौ पद की अपेक्षा से कहा गया है। इसकी सामान्य विधि यह है –

कृत्वा नवैकभक्तानि, तदुद्यापनमेव च।
शक्तिहीनैर्निधेयं च, पूर्ववत्तत्समापनम्।।

आचारदिनकर, पृ. 373

इस तप में नमस्कार मन्त्र के क्रमश: नौ पदों के नव एकासना करें। इस प्रकार यह तप नौ दिन में पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप का उजमणा नवकार तप की भाँति करें तथा साथिया आदि आवश्यक क्रियाएँ भी उसी तरह करें।

17. अविधवादशमी तप

यह तप स्त्रियों के द्वारा वैधव्य से रहित होने के लिए दशमी के दिन किया जाता है, इसलिए इसे अविधवादशमी तप कहते हैं। इस तप के करने से अखण्ड सौभाग्य की प्राप्ति होती है, ऐसा आचार्यों का अभिमत है।

आचारदिनकर में इसकी यह विधि निर्दिष्ट है –

भाद्रपद शुक्ल-दशमी-दिने एकाशनमथो निशायां च।
अंबा-पूजन-जागरण-कर्मणि सुविधिना कुर्यात्।।

आचारदिनकर, पृ. 373

इस तप में भाद्र शुक्ला दशमी के दिन एकासना करें। उस रात्रि में अम्बादेवी की प्रतिमा के समक्ष जागरण करते हुए उसकी पूजा करें। उसके समक्ष श्रीफल आदि द्रव्य सामग्री 10-10 की संख्या में चढ़ायें। इस प्रकार दस वर्ष तक

भाद्र शुक्ला दशमी के दिन एकासना करें। इस तप उद्यापन में इन्द्राणी की पूजा करें। संघ वात्सल्य एवं संघपूजा करें।

• प्राचीन परम्परानुसार इस तप के दौरान अरिहन्त पद की आराधना करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

अर्वाचीन परम्परा में प्रचलित (लौकिक) तप

1. अशुभ निवारण तप

किसी प्रकार की अशुभता का निवारण करने के लिए इस तप का निर्देश किया गया है। आचार्यों की मान्यतानुसार यह तप करने से कालान्तर के सभी अशुभ समाप्त हो जाते हैं। यह गृहस्थ आराधकों के लिए आगाढ़-तप है। तपसुधानिधि (पृ. 162) के अनुसार इस तप की निम्न विधि है –

इसमें प्रथम एक उपवास करें, फिर दो नीवि, फिर तीन आयंबिल, फिर चार एकासना, फिर एक लुखा चुपडां,[1] फिर पाँच एक सिक्थ,[2] फिर चार एकलठाणा,[3] फिर एक एकलधरा,[4] फिर एक अलवाड़ा,[5] फिर एक कवल का तप करें। इस प्रकार यह तप 25 दिनों में पूर्ण होता है।

इसका यन्त्र इस प्रकार है –

तप दिन-25										
तप	उप.	नी.	आ.	ए.	लु.	एकसिक्थ	एकलठाणा	एकलधरा	अलवाड़ा	कवल
सं.	1	2	3	4	1	5	4	1	1	1

टिप्पणी-

1. लूखा चुपड़ा की रीति यह है कि घी और पानी की एक-एक कटोरी भरकर उसे ढंक कर रख दें। फिर अज्ञात व्यक्ति से एक कटोरी खुलवायें। यदि घी की खुले तो एकासना करें तथा पानी की खुले तो आयंबिल करें।
2. एक बार भोजन का जितना हिस्सा थाली में पड़ जाये या रख दिया जाये उतना ही खाना।
3. एकासना करते समय दाहिना हाथ और मुख के सिवाय किसी अंग को नहीं हिलाना।
4. एकलधरा की रीति यह है कि पानी का लोटा लेकर किसी सम्बन्धी के घर जायें। उस समय सम्बन्धी वर्ग में से कोई कहे - "आओ, पधारो" तो एकासना करना। यदि यह पूछ बैठे कि कैसे आये? तो उपवास करना।
5. अलेप पदार्थ।

उद्यापन – इस तप का यथाशक्ति उद्यापन करना चाहिए। इस तपस्या में अरिहन्त पद की आराधना करनी चाहिए।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

2. दारिद्र्यनिवारण तप

यह तप दरिद्रता निवारण के उद्देश्य से किया जाता है। जो प्राणी बाह्य दरिद्रता-गरीबीपन आदि अभावग्रस्त परिस्थितियों के कारण धर्माभिमुख नहीं हो पाते हैं, धर्म क्रियाओं से जुड़ने में रुचि नहीं रखते हैं उन्हें धर्मोन्मुख करने के लिए इस तप का विधान किया गया है।

अर्वाचीन प्रतियों में इसकी यह विधि वर्णित है–

यह तप पूर्णिमा के दिन प्रारम्भ करके, उसमें प्रथम दिन उपवास, दूसरे दिन एकासना, तीसरे दिन नीवि, चौथे दिन आयंबिल, पाँचवें दिन बियासना, छठे दिन उपवास, सातवें दिन एकासना, आठवें दिन नीवि, नौवें दिन आयंबिल और दसवें दिन बियासना करें। इस प्रकार यह तप दस दिनों में पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर साधु-साध्वी को दान देवें, साधर्मीभक्ति करें तथा ज्ञान पूजा करें।

- वर्तमान परम्परानुसार इस तपश्चर्या में निम्न आराधना करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीं नमो नाणस्स	51	51	51	20

3. कलंकनिवारण तप

इस तप का दूसरा नाम सीता तप है, क्योंकि प्राप्त उल्लेखानुसार यह तप सीता सती ने कलंक निवारण के लिए किया था। जो प्राणी शुद्ध भावों से इस तप की आराधना करता है वह कलंक से कभी दूषित नहीं होता तथा किसी तरह का झूठा कलंक लग गया हो तो वह संकट शीघ्र टल जाता है।

यह तप निम्न विधि से करें –

इस तप में क्रमशः एक उपवास, फिर एक बियासना, फिर एक आयंबिल और पुनः एक उपवास करें। कुछ आचार्य इसमें नौ दिन तप करने का निर्देश

करते हैं। इस प्रकार यह तप चार अथवा नौ दिनों में पूर्ण होता है।

• इस तप के उद्यापन में परमात्मा की स्नात्र पूजा रचायें, ज्ञान-पूजा करें तथा मोदक आदि द्रव्य सामग्री चढ़ायें।

• इस तप के दौरान निम्न रूप से अरिहन्त पद की आराधना करनी चाहिए।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

4. स्वर्णकरण्डक तप

यह तप स्वर्ग प्राप्ति के लिए किया जाता है। स्वर्ग अर्थात ऊर्ध्वलोक में बारह कल्पोपन्न देवलोक, नौ ग्रैवेयक देव और पाँच अनुत्तर विमानवासी देव हैं। इस तरह इसमें कुल 26 जाति के देवी-देवता निमित्त आराधना करते हैं। उसकी विधि इस प्रकार है –

इससे सर्वप्रथम बारह देवलोकों के लिए 12 एकासना करें, फिर नव ग्रैवेयकों के लिए 9 नीवि करें, पश्चात फिर पाँच अनुत्तरवासी देवों के लिए 5 आयंबिल करें तथा अन्त में एक उपवास करें। इस प्रकार 27 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

• इस तपस्या में प्रतिदिन अरिहन्त पद की आराधना करनी चाहिए।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

5. अष्टमहासिद्धि तप

यह तप अपने नाम के अभिरूप अष्ट सिद्धियों को पाने के लिए किया जाता है। सम्यक् तप के प्रभाव से लब्धियाँ-सिद्धियाँ-निधियाँ सब कुछ प्रत्यक्ष हो सकती हैं अत: इस तप का निरूपण किया गया है।

विधि – इस तप की आराधना के लिए लगातार आठ एकासना करें अथवा आठ उपवास एकान्तर पारणे से करें। इस प्रकार इस तप में 8 अथवा 16 दिन लगते हैं।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर यथाशक्ति ज्ञान पूजा आदि करें।

• परम्परागत सामाचारी के अनुसार इस तप काल में क्रमश: अधोलिखित जाप करें –

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1. ॐ अणिमा सिद्धये नमः	8	8	8	20
2. ॐ महिमा सिद्धये नमः	8	8	8	20
3. ॐ लघिमा सिद्धये नमः	8	8	8	20
4. ॐ गरिमा सिद्धये नमः	8	8	8	20
5. ॐ वशिता सिद्धये नमः	8	8	8	20
6. ॐ प्राकाम्य सिद्धये नमः	8	8	8	20
7. ॐ प्राप्ति सिद्धये नमः	8	8	8	20
8. ॐ ईशिता सिद्धये नमः	8	8	8	20

अर्वाचीन परम्परा में प्रचलित (लोकोत्तर) तप

1. मेरूत्रयोदशी तप

जैन आम्नाय में माघ कृष्णा त्रयोदशी का दिन मेरूत्रयोदशी के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव भगवान ने अष्टापद पर्वत पर निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त किया था अर्थात सर्व कर्मों पर विजय प्राप्त करके मेरूपर्वत की भाँति आत्मा की सर्वोच्च स्थिति का साक्षात्कार किया था, इसलिए इस दिन को मेरूत्रयोदशी कहा जाता है। यह तप इसी उपलक्ष्य में किया जाता है। इस तप के करने से पूर्वबद्ध कर्मों की वज्र समान श्रृंखलाएँ टूट जाती हैं और नये कर्मों का आश्रव रुक जाता है।

इस तप माहात्म्य के सम्बन्ध में राजा पिंगल का दृष्टान्त प्रसिद्ध है। वर्तमान में यह तपाराधना बहुतायत में देखी जाती है। इस दिन तप न करने वाले आराधक भी जिनालय में पाँच मेरू चढ़ाते हैं। यह अर्पण सामूहिक संघ के साथ भी होता है और वैयक्तिक भी।

पूर्वकाल में रत्नों के मेरू चढ़ाते थे। फिर काल क्रम में सोने और चाँदी के मेरू चढ़ने लगे और वर्तमान में घी के मेरू चढ़ाने की प्रवृत्ति है। कहीं पाँच मोदक भी चढ़ाते हैं। यहाँ पाँच संख्या, पाँच ज्ञान के परिपूर्णता की सूचक है।

तपासुधानिधि (पृ. 163) के अनुसार वर्तमान प्रचलित मेरूत्रयोदशी तप की विधि इस प्रकार है –

यह तप माघ कृष्णा त्रयोदशी के दिन शुरू करके तेरह मास अथवा तेरह वर्ष पर्यन्त (त्रयोदशी के दिन) उपवास करते हुए पूर्ण करें। इस प्रकार इसमें तेरह

महीना या तेरह वर्ष लगते हैं।

उद्यापन – इस तप में पारणे के दिन सुविहित मुनियों को आहार दें, अतिथि संविभाग करें और यथाशक्ति साधर्मीवात्सल्य करें।

• प्रचलित सामाचारी के अनुसार इस तप के दिनों में प्रभु ऋषभदेव के निर्वाण कल्याणक का जाप करें तथा शेष क्रियाएँ अरिहन्त पद के समान करें।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री ऋषभदेव पारंगताय नमः	12	12	12	20

2. पौषदशमी तप

यह तप भगवान पार्श्वनाथ के जन्म कल्याणक की आराधना निमित्त किया जाता है। इस समय सभी तीर्थङ्करों की अपेक्षा प्रभु पार्श्व के उपासक वर्ग अधिक हैं। इनके नाम सुमिरण का साक्षात प्रभाव देखा जाता है। इसी कारण जैन समाज में जैसे चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (भ. महावीर का जन्म कल्याणक) के दिन का महत्त्व है वैसे ही पौष कृष्णा दशमी दिन का भी माहात्म्य है।

जैनाचार्यों के मन्तव्यानुसार इस तप के करने से मनोकामना सिद्ध होती है। इस लोक में अपूर्व सम्पदा की प्राप्ति होती है, परलोक में इन्द्रादि पद प्राप्त होता है और अन्ततः मोक्ष पद का अधिकारी बन जाता है।

वर्तमान में पौष दशमी का तप करने वाले आराधक वर्ग की संख्या बढ़ती जा रही है। तपसुधानिधि (भा. 2, पृ. 173) के अनुसार इस तप में पौष वदि नवमी के दिन मिश्री (साकर) के पानी से एकासना करें और ठाम चौविहार करें। फिर दशमी के दिन ठाम चौविहार पूर्वक एकासना करें। फिर एकादशी के दिन तिविहार एकासना करें, इस प्रकार तीन दिन की आराधना करते हैं।

यह तप तीन रूपों में किया जाता है –

1. मध्यम से दस वर्ष और दस महीना, पौष कृष्णा 9, 10, 11 इन तीन दिनों की आराधना की अपेक्षा।

2. उत्कृष्ट से यावज्जीवन, पौष वदि दसमी की आराधना की अपेक्षा।

3. जघन्य से दस वर्ष पर्यन्त, पौष वदि दसमी की आराधना की अपेक्षा।

इस तपोयोग में तीनों दिन ब्रह्मचर्य का पालन करें, उभय सन्ध्याओं में प्रतिक्रमण करें, जिनालय में स्नात्रपूजा-अष्टप्रकारी पूजा करें और गुरु उपदेश सुनें।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर 10 पुट्ठे, 10 रुमाल (पुस्तक बांधने के), 10 जापमाला, 10 चन्द्रोवा, रत्नत्रय के 10-10 उपकरण, प्रभु पार्श्वनाथ की 10-10 प्रतिमाएँ आदि अर्पित करें।

• इन दिनों अरिहन्त पद की क्रिया करते हुए प्रभु पार्श्वनाथ के जन्म कल्याणक का जाप करें –

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री पार्श्वनाथ अर्हते नमः	12	12	12	20

3. मौन एकादशी तप

जैन एवं जैनेतर उभय परम्पराओं में इस तिथि दिन का अत्यधिक महत्त्व है। जैन परम्परानुसार प्रत्येक अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी कालखण्ड में पाँच भरत एवं पाँच ऐरवत क्षेत्र ऐसे कुल दस क्षेत्रों की 10 चौबीसियों में से 150 कल्याणक शाश्वत रूप से उस दिन होते हैं। इसलिए इस दिन की तुलना किसी अन्य दिन से नहीं की जा सकती।

वर्तमान अवसर्पिणी कालखण्ड की अपेक्षा कहें तो इस चौबीसी के अठारहवें तीर्थङ्कर श्री अरनाथ भगवान की दीक्षा, उन्नीसवें तीर्थङ्कर श्री मल्लिनाथ भगवान का जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान तथा इक्कीसवें तीर्थङ्कर नमिनाथ भगवान का केवलज्ञान- ये पाँच कल्याणक इस दिन हुए हैं। इसी प्रकार पाँच भरत और पाँच ऐरवत इन दस क्षेत्रों में इसी दिन पाँच-पाँच कल्याणक होते हैं। इस तरह $5 \times 10 = 50$ कल्याणक हुए। इन्हीं को भूत, वर्तमान व भविष्यकाल की अपेक्षा गिनने पर $50 \times 3 = 150$ कल्याणक होते हैं। इसलिए इस दिन का माहात्म्य अपूर्व है।

मौन एकादशी आराधना के सुफल के सम्बन्ध में सुव्रत सेठ का कथानक प्रसिद्ध है। यह तप आत्मिक सुख की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

इसकी सुविहित विधि इस प्रकार है –

यह तप मिगसर शुक्ला एकादशी से उपवास पूर्वक शुरू करें। इसमें चतुर्विध प्रकारों में से यथाशक्ति कोई भी रीति अपना सकते हैं–

1. ग्यारह वर्ष तक मिगसर शुक्ला एकादशी को उपवास करना।

2. ग्यारह वर्ष तक प्रत्येक मास की शुक्ला एकादशी के दिन उपवास करना।

3. यावज्जीवन प्रत्येक वर्ष की मौन एकादशी को उपवास करना।

4. ग्यारह महीना तक प्रत्येक मास की कृष्णा एवं शुक्ला एकादशी को उपवास करना।

उपर्युक्त चारों में पहला प्रकार अधिक प्रचलित है।

उद्यापन – इस तप की अनुमोदनार्थ बृहत्स्नात्र पूजा करें, श्रुतभक्ति के आयोजन करवायें, आगम ग्रन्थ आदि लिखवायें, ग्यारह-ग्यारह की संख्या में नैवेद्य, फल, पुष्पादि द्रव्य सामग्री चढ़ायें। यथाशक्ति साधर्मी वात्सल्य एवं संघपूजा करें।

• सुविहित परम्परा का अनुपालन करते हुए प्रत्येक माह की शुक्ला एकादशी के दिन निम्न गुणना आदि करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री मल्लिनाथ सर्वज्ञाय नमः	12	12	12	20

मौन एकादशी के दिन डेढ़ सौ कल्याणकों की एक-एक माला निम्नलिखित क्रम से फेरें–

जम्बूद्वीपे भरत क्षेत्रे अतीत चौबीसी के पाँच कल्याणक।1।

4. श्री महायश सर्वज्ञाय नमः — 6. श्री सर्वानुभूति अर्हते नमः
6. श्री सर्वानुभूति नाथाय नमः — 6. श्री सर्वानुभूति सर्वज्ञाय नमः
7. श्री श्रीधर नाथाय नमः

जम्बूद्वीपे भरत क्षेत्रे वर्तमान चौबीसी के पाँच कल्याणक।2।

21. श्री नमिनाथ सर्वज्ञाय नमः — 19. श्री मल्लिनाथार्हते नमः
19. श्री मल्लिनाथ नाथाय नमः — 19. श्री मल्लिनाथ सर्वज्ञाय नमः
18. श्री अरनाथ नाथाय नमः

जम्बूद्वीपे भरत क्षेत्रे अनागत चौबीसी के पाँच कल्याणक।3।

4. श्री स्वयंप्रभ सर्वज्ञाय नमः — 6. श्री देवश्रुत अर्हते नमः
6. श्री देवश्रुत नाथाय नमः — 6. श्री देवश्रुत सर्वज्ञाय नमः
7. श्री उदयप्रभ नाथाय नमः

धातकीखण्डे पूर्व भरते अतीत चौबीसी के पाँच कल्याणक।4।

4. श्री अकलंक सर्वज्ञाय नमः — 6. श्री शुभंकर अर्हते नमः
6. श्री शुभंकर नाथाय नमः — 6. श्री शुभंकर सर्वज्ञाय नमः

7. श्री सप्त नाथाय नमः

धातकी खण्डे पूर्व भरत वर्तमान चौबीसी के पाँच कल्याणक।5।

21. श्री ब्रह्मेन्द्र सर्वज्ञाय नमः
19. श्री गुणनाथ अर्हते नमः
19. श्री गुणनाथ नाथाय नमः
19. श्री गुणनाथ सर्वज्ञाय नमः
18. श्री गांगिल नाथाय नमः

धातकी खण्डे पूर्व भरत अनागत चौबीसी के पाँच कल्याणक।6।

4. श्री साम्प्रति सर्वज्ञाय नमः
6. श्री मुनिनाथ अर्हते नमः
6. श्री मुनिनाथ नाथाय नमः
6. श्री मुनिनाथ सर्वज्ञाय नमः
7. श्री विशिष्ट नाथाय नमः

पुष्करार्द्धे पूर्व भरते अतीत चौबीसी के पाँच कल्याणक।7।

4. श्री मृदु सर्वज्ञाय नमः
6. श्री व्यक्त अर्हते नमः
6. श्री व्यक्त नाथाय नमः
6. श्री व्यक्त सर्वज्ञाय नमः
7. श्री कलाशत नाथाय नमः

श्री पुष्करार्द्धे पूर्व भरते वर्तमान चौबीसी के पाँच कल्याणक।8।

21. श्री अरण्यवास सर्वज्ञाय नमः
19. श्री योगनाथ अर्हते नमः
19. श्री योगनाथ नाथाय नमः
19. श्री योगनाथ सर्वज्ञाय नमः
18. श्री अयोगनाथ नाथाय नमः

श्री पुष्करार्द्धे पूर्व भरते अनागत चौबीसी के पाँच कल्याणक।9।

4. श्री परम सर्वज्ञाय नमः
6. श्री शुद्धार्त्ति अर्हते नमः
6. श्री शुद्धार्त्ति नाथाय नमः
6. श्री शुद्धार्त्ति सर्वज्ञाय नमः
7. श्री निष्केश नाथाय नमः

धातकी खण्डे पश्चिम भरते अतीत चौबीसी के पाँच कल्याणक।10।

4. श्री सर्वार्थ सर्वज्ञाय नमः
6. श्री हरिभद्र अर्हते नमः
6. श्री हरिभद्र नाथाय नमः
6. श्री हरिभद्र सर्वज्ञाय नमः
7. श्री मगधाधि नाथाय नमः

धातकी खण्डे पश्चिम भरते वर्तमान चौबीसी के पाँच कल्याणक।11

21. श्री प्रत्यक्ष सर्वज्ञाय नमः
19. श्री अक्षोभ अर्हते नमः
19. श्री अक्षोभ नाथाय नमः
19. श्री अक्षोभ सर्वज्ञाय नमः
18. श्री मल्लिसिंह नाथाय नमः

धातकी खण्डे पश्चिम भरते अनागत चौबीसी के पाँच कल्याणक।12।

4. श्री आदिकर सर्वज्ञाय नमः 6. श्री धनद अर्हते नमः
6. श्री धनद नाथाय नमः 6. श्री धनद सर्वज्ञाय नमः
7. श्री पौष नाथाय नमः

पुष्करार्द्धे पश्चिम भरते अतीत चौबीसी के पाँच कल्याणक।13।

4. श्री प्रलंब सर्वज्ञाय नमः 6. श्री चारित्रनिधि अर्हते नमः
6. श्री चारित्रनिधि नाथाय नमः 6. श्री चारित्रनिधि सर्वज्ञाय नमः
5. श्री प्रशमजित नाथाय नमः

पुष्करार्द्धे पश्चिम भरते वर्तमान चौबीस के पाँच कल्याणक।14।

21. श्री स्वामि सर्वज्ञाय नमः 19. श्री विपरीत अर्हते नमः
19. श्री विपरीत नाथाय नमः 10. श्री विपरीत सर्वज्ञाय नमः
18. श्री प्रासादनाथ नाथाय नमः

पुष्करार्द्धे पश्चिम भरते अनागत चौबीसी के पाँच कल्याणक।15।

4. श्री अघटित सर्वज्ञाय नमः 6. श्री भ्रमणेन्द्र अर्हते नमः
6. श्री भ्रमणेन्द्र नाथाय नमः 6. श्री भ्रमणेन्द्र सर्वज्ञाय नमः
7. श्री ऋषभचन्द्र नाथाय नमः

जम्बूद्वीप ऐरवत क्षेत्रे अतीत चौबीसी के पाँच कल्याणक।16।

4. श्री दयांत सर्वज्ञाय नमः 6. श्री अभिनन्दन अर्हते नमः
6. श्री अभिनन्दन नाथाय नमः 6. श्री अभिनन्दन सर्वज्ञाय नमः
7. श्री रत्नेश नाथाय नमः

जम्बूद्वीपे ऐरवत क्षेत्रे वर्तमान चौबीसी के पाँच कल्याणक।17।

21. श्री शामकाष्ठ सर्वज्ञाय नमः 19. श्री मरुदेव अर्हते नमः
19. श्री मरुदेव नाथाय नमः 19. श्री मरुदेव सर्वज्ञाय नमः
18. श्री अतिपार्श्व नाथाय नमः

जम्बूद्वीपे ऐरवत क्षेत्रे अनागत चौबीसी के पाँच कल्याणक।18।

4. श्री नंदिषेण सर्वज्ञाय नमः 6. श्री व्रतधर अर्हते नमः
6. श्री व्रतधर नाथाय नमः 6. श्री व्रतधर सर्वज्ञाय नमः
7. श्री निर्वाण नाथाय नमः

धातकी खण्डे पूर्व ऐरवते अतीत चौबीसी के पाँच कल्याणक।19।

4. श्री सौदय सर्वज्ञाय नमः 6. श्री त्रिविक्रम अर्हते नमः
6. श्री त्रिविक्रम नाथाय नमः 6. श्री त्रिविक्रम सर्वज्ञाय नमः
7. श्री नारसिंह नाथाय नमः

धातकी खण्डे पूर्व ऐरवते वर्तमान चौबीसी के पाँच कल्याणक।20।

21. श्री खेमंत सर्वज्ञाय नमः 19. श्री संतोषित अर्हते नमः
19. श्री संतोषित नाथाय नमः 19. श्री संतोषित सर्वज्ञाय नमः
18. श्री काम नाथाय नमः

धातकी खण्डे पूर्व ऐरवते अनागत चौबीसी के पाँच कल्याणक।21।

4. श्री मुनिनाथ सर्वज्ञाय नमः 6. श्री चन्द्रदाह नाथाय नमः
6. श्री चन्द्रदाह अर्हते नमः 6. श्री चन्द्रदाह सर्वज्ञाय नमः
7. श्री दिलादित्य नाथाय नमः

पुष्करार्द्धे पूर्व ऐरवते अतीत चौबीसी के पाँच कल्याणक।22।

4. श्री अष्टाहिक सर्वज्ञाय नमः 6. श्री वणिक अर्हते नमः
6. श्री वणिक नाथाय नमः 6. श्री वणिक सर्वज्ञाय नमः
7. श्री उदयज्ञान नाथाय नमः

पुष्करार्द्धे पूर्व ऐरवते वर्तमान चौबीसी के पाँच कल्याणक।23।

21. श्री तपोकन्दन सर्वज्ञाय नमः 19. श्री सायकाक्ष अर्हते नमः
19. श्री सायकाक्ष नाथाय नमः 19. श्री सायकाक्ष सर्वज्ञाय नमः
18. श्री खेमन्त नाथाय नमः

श्री पुष्करार्द्धे पूर्व ऐरवते अनागत चौबीसी के पाँच कल्याणक।24।

4. श्री निर्वाण सर्वज्ञाय नमः 6. श्री रविराज अर्हते नमः
6. श्री रविराज नाथाय नमः 6. श्री रविराज सर्वज्ञाय नमः

7. श्री प्रथमनाथ नाथाय नमः

धातकी खण्डे पश्चिम ऐरवते अतीत चौबीसी के पाँच कल्याणक।25।

4. श्री पुरुख सर्वज्ञाय नमः
6. श्री अवबोध अर्हते नमः
6. श्री अवबोध नाथाय नमः
6. श्री अवबोध सर्वज्ञाय नमः
7. श्री विक्रमेन्द्र नाथाय नमः

धातकी खण्डे पश्चिम ऐरवते वर्तमान चौबीसी के पाँच कल्याणक।26।

21. श्री सुशान्त सर्वज्ञाय नमः
19. श्रीहर अर्हते नमः
19. श्रीहर नाथाय नमः
19. श्रीहर सर्वज्ञाय नमः
18. श्री नन्दकेश नाथाय नमः

श्री धातकी खण्डे पश्चिम ऐरवते अनागत चौबीसी के पाँच कल्याणक।27।

4. श्री महामृगेन्द्र सर्वज्ञाय नमः
6. श्री असौचित अर्हते नमः
6. श्री असौचित नाथाय नमः
6. श्री असौचित सर्वज्ञाय नमः
7. श्री धर्मेन्द्र नाथाय नमः

पुष्करार्द्धे पश्चिम ऐरवते अतीत चौबीसी पाँच कल्याणक।28।

4. श्री अश्ववृन्द सर्वज्ञाय नमः
6. श्री कुटिल अर्हते नमः
6. श्री कुटिल नाथाय नमः
6. श्री कुटिल सर्वज्ञाय नमः
7. श्री वर्धमान नाथाय नमः

पुष्करार्द्धे पश्चिम ऐरवते वर्तमान चौबीसी के पाँच कल्याणक।29।

21. श्री नन्द्रिक सर्वज्ञाय नमः
19. श्री धर्मचन्द्र अर्हते नमः
19. श्री धर्मचन्द्र नाथाय नमः
19. श्री धर्मचन्द्र सर्वज्ञाय नमः
18. श्री विवेक नाथाय नमः

पुष्करार्द्धे पश्चिम ऐरवते अनागत चौबीसी के पाँच कल्याणक।30।

4. श्री कलाप सर्वज्ञाय नमः
6. श्री विसोप अर्हते नमः
6. श्री विसोप नाथाय नमः
6. श्री विसोप सर्वज्ञाय नमः
7. श्री आरण नाथाय नमः

4. दस प्रत्याख्यान तप

प्रत्याख्यान शब्द के दो अर्थ ध्वनित होते हैं। पहला निषेधवाचक और दूसरा प्रतिज्ञावाचक। जैसे 'आज उपवास का प्रत्याख्यान है' इस वाक्य से बोध होता है कि आज चारों प्रकार के आहार का त्याग है। जैसे 'तुम्हें रात्रिभोजन त्याग का प्रत्याख्यान ले लेना चाहिए' इस वाक्य में प्रत्याख्यान का अर्थ प्रतिज्ञा है। यहाँ प्रत्याख्यान शब्द निषेध एवं त्याग अर्थ में प्रयुक्त है।

जैन ग्रन्थों में काल सम्बन्धी दसविध प्रत्याख्यान की चर्चा की गयी है उनके नाम ये हैं – 1. नवकारसी 2. पौरुषी 3. पुरिमड्ढ 4. एकासन 5. एकलठाणा 6. आयम्बिल 7. उपवास 8. चरिम 9. अभिग्रह और 10. नीवि।

यह तप इन्हीं दस प्रकार के प्रत्याख्यान से सम्बन्धित है। अर्वाचीन प्रतियों में इसकी निम्नोक्त दो विधियाँ प्राप्त होती हैं –

प्रथम विधि – इस तप में क्रमश: प्रथम दिन उपवास करें, दूसरे दिन एकासना करें, तीसरे दिन आयम्बिल-ठाम चौविहार पूर्वक करें, चौथे दिन नीवि करें, पाँचवें दिन एक कवल का एकासना-ठाम चौविहार पूर्वक करें, छठे दिन एकलठाणा करें, सातवें दिन एक दत्ति का आयम्बिल-ठाम चौविहार पूर्वक करें, आठवें दिन आयम्बिल करें, नौवें दिन एकासना मात्र ठाम चौविहार से करें तथा दसवें दिन खाखरा खाकर आयम्बिल करें। इस प्रकार यह तप निरन्तर दस दिन तक किया जाता है। इसे 'बड़ा दस प्रत्याख्यान तप' भी कहते हैं।

द्वितीय विधि – दूसरी विधि के अनुसार प्रथम दिन उपवास, दूसरे दिन एकासना, तीसरे दिन आयम्बिल, चौथे दिन एकासना, पाँचवें दिन नीवि, छठे दिन एक कवल, सातवें दिन खीर का एकासना, आठवें दिन नारियल (गिरि) का एकासना, नौवें दिन पात्र भरकर एकासना और दसवें दिन उपवास करें। इसे 'छोटा दस प्रत्याख्यान तप' कहते हैं।

उक्त दोनों प्रकारों में मुख्य अन्तर यह है कि प्रथम में दसों दिन के प्रत्याख्यान प्राय: ठाम चौविहार पूर्वक होते हैं जबकि दूसरे विकल्प में वैसा नहीं होता।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर प्रभु की अष्टप्रकारी पूजा करें। प्रभु के सामने मोदक, फल आदि दस-दस की संख्या में चढ़ायें तथा ज्ञानपूजा करें।

- गीतार्थ परम्परानुसार दस प्रत्याख्यान-सम्बन्धी दोनों प्रकारों में निम्न जापादि करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1. श्री समकित पारंगताय नमः	67	67	67	20
2. श्री अक्षय समकिताय नमः	17	17	17	20
3. श्री समकित निधिनाथाय नमः	8	8	8	20
4. श्री केवलज्ञानी नाथाय नमः	21	21	21	20
5. श्री एकत्व गताय नमः	31	31	31	20
6. श्री स्वर्गनिधि नाथाय नमः	45	45	45	20
7. श्री गौतमलब्धि नाथाय नमः	28	28	28	20
8. श्री अक्षयनिधि नाथाय नमः	9	9	9	20
9. श्री प्रव्रजाय नमः	13	13	13	20
10. श्री मुनिसुव्रताय नमः	12	12	12	20

5. अट्ठाईसलब्धि तप

आत्मा की शक्ति विशेष को लब्धि कहते हैं अथवा विशिष्ट प्रकार से एकत्रित हुई शक्ति भी लब्धि कहलाती है। यह लब्धि तपश्चरण से प्राप्त होती है। यदि जिनशासन की महती प्रभावना करने हेतु अथवा धर्म संघ पर आये संकट का निवारण करने हेतु तो लब्धिधारी मुनि स्वलब्धि का प्रयोग करते हैं। चेतना अनन्त शक्तियों का पुञ्ज है इसलिए लब्धियाँ भी अनेक हो सकती हैं। तदुपरान्त मुख्य रूप से 28 लब्धियों का उल्लेख किया गया है। उनका सामान्य विवरण इस प्रकार है–

1. आमर्षौषधि लब्धि- हाथ, पैर आदि किसी भी अवयवों के स्पर्श मात्र से सर्व प्रकार की व्याधियों का नष्ट हो जाना, आमर्षौषधि लब्धि है।

2. विप्रुडौषधि लब्धि- मल-मूत्र का स्पर्श करने या लगाने मात्र से किसी भी प्रकार के रोग को नष्ट कर देना, विप्रुडौषधि लब्धि है।

3. खेलौषधि लब्धि- थूक, मैल आदि के स्पर्श मात्र से सब व्याधियाँ शान्त कर देना, खेलौषधि लब्धि है।

4. जल्लौषधि लब्धि- शरीर के पसीने से सब प्रकार की व्याधियाँ शान्त कर देना, जल्लौषधि लब्धि है।

5. सर्वौषधि लब्धि- शरीर के प्रत्येक अंग-उपांग जैसे केश, नख, रोम

आदि के स्पर्श से सब रोगों को नष्ट करने की शक्ति प्राप्त होना, सर्वौषधि लब्धि है।

6. संभिन्नश्रोतो लब्धि- सर्व इन्द्रियों द्वारा श्रोत्रेन्द्रिय के विषय को जानना, संभिन्नश्रोतो लब्धि है।

7. अवधिज्ञान लब्धि- इन्द्रियों और मन की सहायता के बिना रूपी द्रव्यों को देखना या जानना, अवधिज्ञान लब्धि है।

8. ऋजुमति मनःपर्यव लब्धि- अढ़ाई द्वीप में विद्यमान संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत विचारों को इन्द्रियों और मन की सहायता के बिना जानना ऋजुमति मन:पर्यव लब्धि है।

9. विपुलमति मनःपर्यव लब्धि – अढ़ाई द्वीप में विद्यमान संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को इन्द्रियों और मन की सहायता के बिना विशेष रूप से जानना विपुलमति मन:पर्यव लब्धि है।

10. चारण लब्धि – आकाश में गमन करने की शक्ति प्राप्त होना, चारण लब्धि है।

11. आशीविष लब्धि – दांतों में विष जैसी शक्ति उत्पन्न हो जाना, आशीविध लब्धि है।

12. केवलज्ञान लब्धि – लोक-अलोक के पदार्थों के समस्त भाव-पर्यायों को जानना, केवलज्ञान लब्धि है।

13. गणधर लब्धि – गणधर पद प्राप्त करना, गणधर लब्धि है।

14. पूर्वधर लब्धि – चौदहपूर्व तक का श्रुत प्राप्त करना, पूर्वधर लब्धि है।

15. तीर्थङ्कर लब्धि – तीर्थङ्कर पद प्राप्त करना तीर्थंकर लब्धि है।

16. चक्रवर्ती लब्धि – चक्रवर्ती पद प्राप्त करना चक्रवर्ती लब्धि है।

17. बलदेव लब्धि – बलदेव पद प्राप्त करना बलदेव लब्धि है।

18. वासुदेव लब्धि – तीन खण्ड के अधिपति वासुदेव पद प्राप्त करना वासुदेव लब्धि है।

19. अमृताश्रव लब्धि – अमृत जैसे वचनों को प्राप्त करना, अमृताश्रव लब्धि है।

20. कोष्ठकबुद्धि लब्धि – कोठार में सुरक्षित धान्य की भाँति आगम पाठों को दीर्घकाल तक स्थिर रखना, कोष्ठकबुद्धि लब्धि है।

21. पदानुसारी लब्धि – किसी भी ग्रन्थ का पहला, मध्य या अन्तिम पद सुनकर उसका अनुसरण करने वाले सर्व श्रुत का ज्ञान प्राप्त कर लेना पदानुसारी लब्धि है।

22. बीज लब्धि – बीजभूत एक पद को सुनकर दूसरा सर्व श्रुत यथार्थ जानना, बीज लब्धि है।

23. तेजोलेश्या लब्धि – अग्नि के समान अति उष्ण पुद्गल फेंकना, तेजोलेश्या लब्धि है।

24. आहारक लब्धि – आहारक शरीर बनाना, आहारक लब्धि है।

25. शीतलेश्या लब्धि – जलते पदार्थों को जल छिड़काव के समान शान्त कर देना शीतलेश्या लब्धि है।

26. वैक्रिय लब्धि – विविध प्रकार की क्रियाएँ करना वैक्रिय लब्धि है।

27. अक्षीणमहानस लब्धि – लघु पात्र के आहार से अगणित को भर पेट भोजन करवाना, अक्षीणमहानस लब्धि है।

28. पुलाक-लब्धि – चक्रवर्ती की सेना को भी चकनाचूर करना, पुलाक लब्धि है।

विधि – तपसुधानिधि (पृ. 225) के अनुसार इस तप में एक-एक लब्धि के निमित्त 28 उपवास एकान्तर पारणे से करें अथवा लगातार 28 एकासना करें।

उद्यापन – इस तप के मध्य या अन्त में स्नात्र पूजा करवायें, फल-पकवान्न आदि 28-28 की संख्या में चढ़ायें और यथाशक्ति साधर्मीभक्ति करें।

• गीतार्थ सामाचारी के अनुसार इस तप में उपवास या एकासना के दिन क्रमशः एक-एक लब्धिपद का जाप करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1. ॐ आमर्षौषधि लब्धये नमः	50	50	50	20
2. ॐ विप्रुडौषधि लब्धये नमः	50	50	50	20
3. ॐ खेलौषधि लब्धये नमः	50	50	50	20
4. ॐ जल्लौषधि लब्धये नमः	50	50	50	20
5. ॐ सर्वौषधि लब्धये नमः	50	50	50	20
6. ॐ संभिन्नश्रोतो लब्धये नमः	50	50	50	20

7.	ॐ अवधि लब्धये नमः	50	50	50	20
8.	ॐ ऋजुमति मनःपर्यव लब्धये नमः	50	50	50	20
9.	ॐ विपुलमति मनःपर्यव लब्धये नमः	50	50	50	20
10.	ॐ चारण लब्धये नमः	50	50	50	20
11.	ॐ आशीविष लब्धये नमः	50	50	50	20
12.	ॐ केवल लब्धये नमः	50	50	50	20
13.	ॐ गणधर लब्धये नमः	50	50	50	20
14.	ॐ पूर्वधर लब्धये नमः	50	50	50	20
15.	ॐ तीर्थङ्कर लब्धये नमः	50	50	50	20
16.	ॐ चक्रवर्ती लब्धये नमः	50	50	50	20
17.	ॐ बलदेव लब्धये नमः	50	50	50	20
18.	ॐ वासुदेव लब्धये नमः	50	50	50	20
19.	ॐ अमृताश्रव लब्धये नमः	50	50	50	20
20.	ॐ कोष्ठकबुद्धि लब्धये नमः	50	50	50	20
21.	ॐ पदानुसारी लब्धये नमः	50	50	50	20
22.	ॐ बीजबुद्धि लब्धये नमः	50	50	50	20
23.	ॐ तेजोलेश्या लब्धये नमः	50	50	50	20
24.	ॐ आहारक लब्धये नमः	50	50	50	20
25.	ॐ शीतलेश्या लब्धये नमः	50	50	50	20
26.	ॐ वैक्रिय लब्धये नमः	50	50	50	20
27.	ॐ अक्षीणमहानस लब्धये नमः	50	50	50	20
28.	ॐ पुलाक लब्धये नमः	50	50	50	20

6. अष्टप्रवचनमातृ तप

जिस प्रकार माता अपनी सन्तान का यत्न पूर्वक पालन-पोषण एवं रक्षण करती है, उसी प्रकार पाँच समितियों और तीन गुप्तियों के रूप में अष्ट प्रवचन माता संयम माता समान चारित्र की रक्षा करती है। इसीलिए इसे अष्टप्रवचन माता कहते हैं।

आवश्यक क्रियाओं को एकाग्र चित्त पूर्वक करना समिति है तथा शुभ क्रियाओं (शुभ योगों) को अनुशासित रखना गुप्ति है।

1. **ईर्या समिति–** किसी जीव को कष्ट न हो इस तरह सावधानी पूर्वक चलना, बैठना, लेटना, अंगों के संकोच-प्रसारण की क्रियाएँ करना ईर्यासमिति है।

2. **भाषा समिति –** किसी के लिए अहितकर न हो ऐसे सत्य, निरवद्य एवं विवेक पूर्ण वचन बोलना भाषा समिति है।

3. **एषणा समिति –** बयालीस दोषों से रहित आहार-पानी ग्रहण करना एषणा समिति है।

4. **आदान-निक्षेपणा समिति –** वस्त्र, पात्र, उपकरण आदि को सावधानी से उठाना और रखना आदान-निक्षेपणा समिति है।

5. **परिष्ठापनिका समिति –** मल-मूत्र, श्लेष्म आदि अशुचि पदार्थों को जीव-जन्तु रहित स्थान पर डालना परिष्ठापनिका समिति है।।

6. **मनोगुप्ति –** मन के दुष्ट विचारों को रोकना मनो गुप्ति है।

7. **वचनगुप्ति –** अत्यावश्यक स्थिति में बोलना अन्यथा मौन रखना वचनगुप्ति है।

8. **कायगुप्ति –** काया की दुष्ट प्रवृत्तियों को रोकना कायगुप्ति है।

इस तप के करने से विशुद्ध चारित्र की उपलब्धि होती है अतः यह तप उत्कृष्ट चारित्र धर्म की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

इसकी वर्तमान प्रचलित विधि निम्न प्रकार है –

1. इसमें प्रत्येक माताओं की आराधना के लिए तीन-तीन दिन एकासना करें। जैसे ईर्यासमिति की आराधना के लिए तीनों दिन एक-एक कवल आहार लें।

2. फिर भाषा समिति की आराधना हेतु पहले दिन दो कवल, दूसरे दिन एक कवल, तीसरे दिन दो कवल ग्रहण करें।

3. एषणा समिति की आराधना हेतु तीन दिन अनुक्रम से 3-1-3 कवल ग्रहण करें।

4. आदान-निक्षेपणा समिति की आराधना हेतु तीन दिन क्रमशः 4-1-4 कवल ग्रहण करें।

5. परिष्ठापनिका समिति की आराधना हेतु तीन दिन क्रमशः 5-1-5 कवल ग्रहण करें।

6. मनोगुप्ति की आराधना के लिए क्रमशः 6-1-6 कवल ग्रहण करें।

7. वचनगुप्ति की आराधना के लिए क्रमशः 7-1-7 कवल ग्रहण करें।

8. कायगुप्ति की आराधना के लिए क्रमशः 8-1-8 कवल ग्रहण करें।

इस प्रकार 24 एकासना में 80 कवल ग्रहण करते हुए 8 पारणा पूर्वक यह तप 32 दिनों में पूर्ण किया जाता है।

उद्यापन– इस तप की महिमा को अभिवर्धित करने हेतु स्नात्र पूजा रचायें, रत्नत्रय के आठ-आठ उपकरणों का दान करें तथा संघपूजा आदि भक्ति करें।

• सुविहित परम्परानुसार प्रत्येक समिति-गुप्ति की आराधना के दिनों में क्रमशः निम्न जाप आदि करें–

क्रम	जाप	सा.	खमा.	कायो.	माला
1.	ॐ ईर्यासमिति धराय नमः	3	3	3	20
2.	ॐ भाषासमिति धराय नमः	5	5	5	20
3.	ॐ एषणासमिति धराय नमः	7	7	7	20
4.	ॐ आदान-भंड-निक्षेपणा समिति धराय नमः	9	9	9	20
5.	ॐ उच्चार-प्रस्रवणखेल परिष्ठापनिका समिति धराय नमः	11	11	11	20
6.	ॐ मनोगुप्ति धराय नमः	13	13	13	20
7.	ॐ वचनगुप्ति धराय नमः	15	15	15	20
8.	ॐ कायगुप्ति धराय नमः	17	17	17	20

7. चत्तारिअट्ठदसदोय तप

यह तप अष्टापद तीर्थ की आराधना के लिए किया जाता है। प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव प्रभु ने इसी पर्वत पर निर्वाण पद प्राप्त किया था। उनके प्रथम पुत्र भरत चक्रवर्ती ने यहाँ सिंह निषद्या-प्रासाद का निर्माण करवाया, जिसमें चारों दिशाओं में वर्तमान चौबीस तीर्थङ्करों की प्रतिमाएँ उनके देह परिमाण के अनुसार इस क्रम से स्थापित की हैं–

1. **दक्षिण दिशा में -** पहले से चौथे तीर्थङ्कर तक कुल चार प्रतिमाएँ।

2. **पश्चिम दिशा में** - पाँचवें से बारहवें तीर्थङ्कर तक कुल आठ प्रतिमाएँ।

3. **उत्तर दिशा में** - तेरहवें से बाईसवें तीर्थङ्कर तक, कुल दस प्रतिमाएँ।

4. **पूर्व दिशा में** - तेईसवें और चौबीसवें तीर्थङ्कर की कुल दो प्रतिमाएँ।

यह तपश्चरण पूर्वोक्त प्रतिमाओं की संख्या क्रम के अनुसार किया जाता है।

विधि

तपसुधानिधि (पृ. 230) के निर्देशानुसार इसमें सर्वप्रथम निरन्तर चार उपवास करके पारणा करें, फिर निरन्तर आठ उपवास करके पारणा करें, फिर लगातार दस उपवास करके पारणा करें, फिर दो उपवास करके पारणा करें। इस प्रकार इस तप में 24 उपवास और 4 पारणा कुल 28 दिन लगते हैं।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर 24-24 की संख्या में ज्ञान-दर्शन-चारित्र के उपकरण चढ़ायें और यथाशक्ति प्रभु भक्ति, गुरु भक्ति एवं साधर्मी भक्ति करें।

• आचार्य सम्मत परम्परा से इस तप में अष्टापदतीर्थ की आराधना निम्न रीति पूर्वक करनी चाहिए–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री अष्टापदतीर्थाय नमः	24	24	24	20

8. कण्ठाभरण तप

इसका दूसरा नाम सिद्धिवधू कण्ठाभरण-तप है। जैसे नवविवाहित वधू के कण्ठ में आभूषण शोभित होता है वैसे ही मुक्ति रूपी नारी के कण्ठ में आत्मगुणों का आभूषण शोभायमान हो, एतदर्थ यह तप किया जाता है। सामान्यतया इस तप की प्रवृत्ति बहुत से प्रान्तों में देखी जाती है।

यह तप दो प्रकार से किया जाता है। उसकी विधियाँ निम्न हैं –

प्रथम प्रकार – तपसुधानिधि (पृ. 231) के मतानुसार इस तप में प्रथम बेला करके पारणा करें। फिर उपवास कर पारणा करें, फिर अट्ठम करके पारणा करें। फिर उपवास और अन्त में बेला करके पारणा करें। इस प्रकार इसमें 9 उपवास और 5 पारणा कुल 14 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

द्वितीय प्रकार – दूसरे विकल्प के अनुसार इस तप में प्रथम छट्ठ करके पारणा करें, फिर सात उपवास एकान्तर पारणे से करें, फिर अट्ठम (तेला) करके

पारणा करें, फिर सात उपवास एकान्तर पारणे से करें और अन्त में छट्ठ करके पारणा करें।

इसमें 21 उपवास और 16 पारणा कुल 37 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर ज्ञान द्रव्य में नौ मोती चढ़ाकर ज्ञान भक्ति करें।

• इस तपस्या काल में सिद्धि प्राप्ति हेतु सिद्ध पद की आराधना करनी चाहिए–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो सिद्धाणं	8	8	8	20

9. क्षीरसमुद्र तप

हम मध्यलोक में रहते हैं। इस लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। उनमें पाँचवां क्षीरवर समुद्र है। इसका पानी दूध जैसा श्वेत और उसका स्वाद शक्कर मिश्रित दूध जैसा मीठा है। तीर्थङ्करों के जन्म कल्याणक के समय उनका अभिषेक इसी क्षीरसागर के जल द्वारा किया जाता है। हमारा आचार, विचार और जीवन क्षीरसागर के पानी जैसी मिठास से युक्त हो, एतदर्थ यह क्षीरसमुद्र-तप करते हैं। स्त्रियों में यह तप विशेष प्रचलित है और यह प्राय: पर्युषणों के दिनों में किया जाता है।

इसकी दो विधियाँ इस प्रकार वर्णित हैं –

प्रथम विधि – इस तप में लगातार सात उपवास करके आठवें दिन गुरु भगवन्त को खीर बहराने के बाद स्वयं भी ठाम चौविहार खीर से एकासना करें।

द्वितीय विधि – दूसरी रीति के अनुसार यह तप श्रावण मास में निरन्तर आठ एकासना उसके ऊपर एक उपवास करके किया जाता है।

उद्यापन – इस तप के पूर्णाहुति प्रसंग पर जिनालय में खीर-खांड एवं घृत से भरा हुआ एक थाल रखें, गुरु को अन्नादि बहरायें, ज्ञान-भक्ति करें तथा साधर्मी-भक्ति का उपक्रम रचें।

• प्रचलित विधि के अनुसार इसमें निम्न जाप आदि करें –

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
क्षीरवरसम सम्यगदर्शन धराय नम:	7	7	7	20

10. पैंतालीस आगम तप

जिस प्रकार सूर्य के अस्त होने पर दीपक के प्रकाश से काम लिया जाता है वैसे ही केवलज्ञान रूपी सूर्य के अस्त होने पर आगम रूपी दीपक से स्व-पर का उपकार किया जाता है। आगम आप्त पुरुषों की साक्षात वाणी का संकलन है। आप्त पुरुष (तीर्थङ्कर) अर्थ रूप में उपदेश देते हैं, उसे गणधर सूत्र रूप में गुम्फित करते हैं। आगम ग्रन्थों में सूत्रबद्ध वाणी का संग्रह होता है।

इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर के शासन में 11 गणधर हुए, उनमें पाँचवें गणधर सुधर्मास्वामी ने द्वादशांगी रची है, जो इस समय बारह अंग आदि आगम के रूप में विख्यात है। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा में 45 आगम माने गये हैं उनकी गणना इस प्रकार है – 11 अंग सूत्र, 12 उपांग सूत्र, 10 प्रकीर्णक सूत्र, 6 छेद सूत्र, 4 मूल सूत्र, 1 नन्दीसूत्र और 1 अनुयोगद्वार सूत्र। वर्तमान में यह तप सामूहिक रूप में अधिक प्रचलित है।

विधि – प्रचलित सामाचारी के अनुसार इसमें 45 उपवास एकान्तर पारणा अथवा सामर्थ्य अनुरूप पूर्ण करें।

दूसरी रीति के अनुसार इसमें लगातार 45 एकासना करें।

इस तप के दौरान प्रत्येक आगम की पूजा करते हुए भक्ति अवश्य करनी चाहिए।

उद्यापन – यह तप पूर्ण होने पर आगम ग्रन्थों की शोभा यात्रा निकालें। नन्दीसूत्र एवं भगवतीसूत्र की स्वर्ण मोहर से पूजा करें। प्रत्येक आगम की चाँदी के सिक्के एवं वासक्षेप से पूजा करें। जिनप्रतिमा के समक्ष 45-45 ज्ञान के उपकरण चढ़ायें। 45 आगम की बड़ी पूजा करवायें और गुरु पूजा करें।

• सुविहित परम्परानुसार इस तप में नीचे लिखे अनुसार प्रत्येक दिन पृथक्-पृथक् जाप आदि करें–

	जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1.	ॐ नन्दी सूत्राय नमः	51	51	51	20
2.	ॐ अनुयोगद्वार सूत्राय नमः	62	62	62	20
3.	ॐ दशवैकालिक सूत्राय नमः	14	14	14	20
4.	ॐ उत्तराध्ययन सूत्राय नमः	36	36	36	20
5.	ॐ ओघनिर्युक्ति सूत्राय नमः	10	10	10	20

6.	ॐ आवश्यक सूत्राय नमः	32	32	32	20
7.	ॐ निशीथ छेद सूत्राय नमः	16	16	16	20
8.	ॐ व्यवहार कल्प सूत्राय नमः	20	20	20	20
9.	ॐ दशाश्रुतस्कन्ध सूत्राय नमः	19	19	19	20
10.	ॐ पंचकल्प छेद सूत्राय नमः	19	19	19	20
11.	ॐ जीतकल्प छेद सूत्राय नमः	35	35	35	20
12.	ॐ महानिशीथ छेद सूत्राय नमः	42	42	42	20
13.	ॐ चतुःशरण प्रकीर्णक सूत्राय नमः	10	10	10	20
14.	ॐ आतुरप्रत्याख्यान सूत्राय नमः	10	10	10	20
15.	ॐ भक्तपरिज्ञा सूत्राय नमः	10	10	10	20
16.	ॐ संस्तारकप्रकीर्णक सूत्राय नमः	10	10	10	20
17.	ॐ तन्दुल वैतालिक सूत्राय नमः	10	10	10	20
18.	ॐ चन्द्रवैद्यक प्रकीर्णक सूत्राय नमः	10	10	10	20
19.	ॐ देवेन्द्रस्तव प्रकीर्णक सूत्राय नमः	10	10	10	20
20.	ॐ मरणसमाधि सूत्राय नमः	10	10	10	20
21.	ॐ महाप्रत्याख्यान सूत्राय नमः	10	10	10	20
22.	ॐ गणिविद्या प्रकीर्णक सूत्राय नमः	10	10	10	20
23.	ॐ आचारांग सूत्राय नमः	25	25	25	20
24.	ॐ सूत्रकृतांग सूत्राय नमः	23	23	23	20
25.	ॐ स्थानांग सूत्राय नमः	10	10	10	20
26.	ॐ समवायांग सूत्राय नमः	104	104	104	20
27.	ॐ भगवती सूत्राय नमः	42	42	42	20
28.	ॐ ज्ञाताधर्मकथांग सूत्राय नमः	19	19	19	20
29.	ॐ उपासकदशांग सूत्राय नमः	10	10	10	20
30.	ॐ अंतकृद्दशांग सूत्राय नमः	19	19	19	20
31.	ॐ अनुत्तरोपपातिक सूत्राय नमः	23	23	23	20
32.	ॐ प्रश्नव्याकरण सूत्राय नमः	10	10	10	20
33.	ॐ विपाकांग सूत्राय नमः	20	20	20	20
34.	ॐ औपपातिक सूत्राय नमः	23	23	23	20

35.	ॐ राजप्रश्नीय सूत्राय नमः	42	42	42	20
36.	ॐ जीवाजीवाभिगम सूत्राय नमः	10	10	10	20
37.	ॐ प्रज्ञापनोपांग सूत्राय नमः	36	36	36	20
38.	ॐ सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्राय नमः	57	57	57	20
39.	ॐ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्राय नमः	50	50	50	20
40.	ॐ चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्राय नमः	50	50	50	20
41.	ॐ कल्पावतंस सूत्राय नमः	10	10	10	20
42.	ॐ निरयावलि सूत्राय नमः	10	10	10	20
43.	ॐ पुष्पचूलिका सूत्राय नमः	10	10	20	20
44.	ॐ वह्निदशोपांग सूत्राय नमः	10	10	10	20
45.	ॐ पुष्पिकोपांग सूत्राय नमः	10	10	10	20

11. तेरहकाठिया तप

सुकृत कार्यों में रुकावट डालने वाली प्रवृत्तियों एवं स्थितियों को काठिया शब्द से सम्बोधित किया गया है। जैन ग्रन्थों में ऐसे अवरोधक तत्त्व तेरह बतलाये गये हैं – 1. आलस्य, 2. मोह, 3. अवज्ञा, 4. मान, 5. क्रोध, 6. प्रमाद, 7. कृपणता, 8. भय, 9. शोक, 10. अज्ञान, 11. व्याक्षेप, 12. कुतूहल और 13. विषय।

यह तप इन तेरह काठियों के निवारण के लिए किया जाता है। इस तप का दूसरा नाम 'छूटा अट्ठम' है, क्योंकि इसमें यशाशक्ति 13 अट्ठम किये जाते हैं।

वर्तमान में इसकी निम्न विधि प्राप्त होती है –

इसमें सर्वप्रथम अट्ठम कर एकासना से पारणा करें। उसमें सिर्फ लापसी ही ग्रहण करें तथा ठाम चौविहार के प्रत्याख्यान करें। फिर पुनः एक अट्ठम करें और पारणा में एकासना करते हुए सिर्फ गेहूँ की रोटी ग्रहण करें। इसी तरह तेरह काठियों का विघात करने के लिए प्रत्येक के निमित्त एक-एक अट्ठम करें और पारणे के दिन एकासना करें। यहाँ एकासना के सम्बन्ध में खास यह है कि जैसे पहले अट्ठम के पारणे में मात्र लापसी ग्रहण की जाती है, दूसरे अट्ठम के पारणे में गेहूँ की रोटी ग्रहण की जाती है वैसे ही तीसरे अट्ठम के पारणे में चावल मिश्रित दूध की खीर ग्रहण करें। चौथे अट्ठम का पारणा अपने किसी सगे-

सम्बन्धी के घर पर जाकर करें। पाँचवें अट्ठम का पारणा पुनः अपने स्वजन-सम्बन्धी के घर पर करें। वहाँ जाने पर यदि वह भोजन के लिए आग्रह करे तो ही वहाँ एकासना करें, अन्यथा अपने घर पर बचे हुए भोजन से एकासना करें।

छठवें अट्ठम के पारणे के दिन दो कटोरियाँ एक घी और दूसरी पानी से भरकर उसे ढँक दें। फिर किसी अपरिचित व्यक्ति से एक कटोरी का ढक्कन खुलवायें। उस समय घी की कटोरी खुले तो एकासना करें तथा पानी की खुले तो आयम्बिल करें। सातवें अट्ठम के पारणे में एक घर अपना और छह घर दूसरे इस तरह सात घरों में से किसी एक के यहाँ एकासना करें। आठवें अट्ठम के पारणे में चन्दन बाला की भाँति मुनि को उड़द बाकुला का आहार प्रदान कर स्वयं भी उड़द से ही एकासना करें।

नौवें अट्ठम के पारणे में सूखी रोटी अथवा पूरी से पारणा करें। दसवें अट्ठम के पारणे में सूखड़ी द्वारा एकासना करें। ग्यारहवें अट्ठम के पारणे में द्राक्ष अथवा छुहारे आदि मेवे से एकासना करें। बारहवें अट्ठम के पारणे में धोयी हुई शक्कर आदि के पानी से एकासना करें। तेरहवें अट्ठम के पारणे में पुनः शक्कर से एकासना करें।

इस प्रकार 13 अट्ठम और 13 एकासना कुल 52 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के उद्यापन में स्नात्र पूजा अथवा मोहनीय कर्म निवारण की पूजा करवायें, जिन प्रतिमा के सम्मुख 13-13 की संख्या में फल, नैवेद्य आदि चढ़ायें और यथाशक्ति साधर्मीवात्सल्य करें।

• इस तप के दिनों में निम्न रीति से जाप-साथिया-कायोत्सर्ग आदि निम्न रीति से करें।

जाप	सा.	खमा.	कायो.	माला
1. आलस काठिया निवारकाय नमः	8	8	8	20
2. मोह काठिया निवारकाय नमः	8	8	8	20
3. अवज्ञा काठिया निवारकाय नमः	8	8	8	20
4. मान काठिया निवारकाय नमः	8	8	8	20
5. क्रोध काठिया निवारकाय नमः	8	8	8	20
6. प्रमाद काठिया निवारकाय नमः	8	8	8	20

7.	कृपण काठिया निवारकाय नमः	8	8	8	20
8.	भय काठिया निवारकाय नमः	8	8	8	20
9.	शोक काठिया निवारकाय नमः	8	8	8	20
10.	अज्ञान काठिया निवारकाय नमः	8	8	8	20
11.	व्याक्षेप काठिया निवारकाय नमः	8	8	8	20
12.	कुतूहल काठिया निवारकाय नमः	8	8	8	20
13.	विषय काठिया निवारकाय नमः	8	8	8	20

अथवा

	जाप	सा.	खमा.	कायो.	माला
1.	ॐ ह्रीं धम्मोज्जमियाणं नमः	8	8	8	20
2.	ॐ ह्रीं विजयरागाणं नमः	8	8	8	20
3.	ॐ ह्रीं विनयधारिणं नमः	8	8	8	20
4.	ॐ ह्रीं मद्दवगुण संपन्नाणं नमः	8	8	8	20
5.	ॐ ह्रीं खंति-गुण संपन्नाणं नमः	8	8	8	20
6.	ॐ ह्रीं अप्पमत्तचारिणं नमः	8	8	8	20
7.	ॐ ह्रीं दानलद्धी संपन्नाणं नमः	8	8	8	20
8.	ॐ ह्रीं ववगयभयाणं नमः	8	8	8	20
9.	ॐ ह्रीं वीयसोयाणं नमः	8	8	8	20
10.	ॐ ह्रीं सुमइ नाणधराणं नमः	8	8	8	20
11.	ॐ ह्रीं लद्धी जुत्ताणं नमः	8	8	8	20
12.	ॐ ह्रीं अप्पकम्मसंवरधारिणं नमः	8	8	8	20
13.	ॐ ह्रीं अट्ठपवयणजणणो धारिणं नमः	8	8	8	20

12. देवल इंड़ा तप

देवल यानी जिनालय, इंड़ा यानी कलश। जिनालय का कलश देवल इंड़ा कहलाता है। यह तप चैत्य कलश की आराधना हेतु किया जाता है। इस तप के करने से मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का नाश होता है।

इसकी प्रचलित विधि यह है –

इस तप में सर्वप्रथम लगातार पाँच बियासना करें, फिर निरन्तर सात एकासना करें, फिर निरन्तर नौ नीवि करें, फिर निरन्तर पाँच आयम्बिल करें,

फिर अन्त में एक उपवास करें। इस प्रकार 27 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर यथाशक्ति रत्नत्रय के उपकरणों का दान करें और देवत्रय की भक्ति करें।

- प्रचलित विधि के अनुसार इसमें अरिहन्त पद की आराधना करें –

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

13. नवनिधि-तप

संसारी प्राणियों के लिए नव निधि, अष्ट सिद्धि आदि लब्धियों का विशेष महत्त्व होता है। चक्रवर्ती जैसे पुण्यशालियों क़ो भी नवनिधि की साधना करनी पड़ती है। जब उत्कृष्ट पुण्यराशि एकत्र होती है तब नव निधान सहजतः प्राप्त होते हैं। कई साधक भी आठ सिद्धियों और नव निधियों की वांछा करते हैं, एतदर्थ यह तप प्रस्थापित किया गया है। इन नव निधियों का कभी भी क्षय नहीं होता। इनका सामान्य स्वरूप इस प्रकार है –

1. नैसर्ग निधि – इस निधि से छावनी, नगर, गाँव, मण्डप और पत्तन आदि का निर्माण होता है।

2. पाण्डुक निधि – इससे मान, उन्मान, प्रमाण, गणित तथा धान्यों और बीजों का ज्ञान होता है।

3. पिंगल निधि – इससे नर, नारी, हाथी और घोड़ों के योग्य सर्व प्रकार के आभूषणों की विधि जानी जाती है।

4. महाकाल निधि – इससे वर्तमान, भूत और भविष्यत इन तीनों कालों का ज्ञान होता है तथा कृषि आदि कर्म एवं अन्य शिल्पादि कलाओं का ज्ञान होता है।

5. काल निधि – इससे चाँदी, सोना, मोती, लोहा तथा अन्य धातुओं की खानें उत्पन्न होती है।

6. मानव निधि – इसमें योद्धा, आयुध और कवच के विविध प्रकार तथा सर्व प्रकार की युद्ध नीति और दण्ड नीति प्रकट होती है।

7. सर्वरत्न निधि – इससे सात एकेन्द्रिय और सात पंचेन्द्रिय कुल 14 रत्न उत्पन्न होते हैं।

8. महापद्म निधि – इससे सब प्रकार के शुद्ध और रंगीन वस्त्र निष्पन्न होते हैं।

9. शंख निधि – इससे चार प्रकार के काव्य की सिद्धि, नाट्य एवं नृत्य विधि और सब प्रकार के वाजिंत्र उत्पन्न होते हैं।

उक्त नव निधियों के नाम वाले नागकुमार जाति के देव इनके अधिष्ठायक होते हैं। इसकी प्रचलित विधि यह है –

इस तप में प्रत्येक निधि के लिए शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन उपवास करें, ऐसे नौ उपवास करने पर यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन – मूलनायक प्रतिमा के नव अंगों पर तिलक चढ़ायें।

• इस तपश्चरण काल में जापादि निम्न प्रकार करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1. श्री नैसर्ग निधानाय नमः	9	9	9	20
2. श्री पाण्डुक निधानाय नमः	9	9	9	20
3. श्री पिंगल निधानाय नमः	9	9	9	20
4. श्री काल निधानाय नमः	9	9	9	20
5. श्री महाकाल निधानाय नमः	9	9	9	20
6. श्री मानव निधानाय नमः	9	9	9	20
7. श्री सर्वरत्न निधानाय नमः	9	9	9	20
8. श्री महापद्म निधानाय नमः	9	9	9	20
9. श्री शंख निधानाय नमः	9	9	9	20

14. नव ब्रह्मचर्यगुप्ति तप

जैसे खेत की रक्षा के लिए बाड़ लगायी जाती है वैसे ही ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए शास्त्रकारों ने नव प्रकार की वाड़ बतलायी है। उसका सामान्य स्वरूप इस प्रकार है –

1. विविक्त वसति सेवा – स्त्री, पशु, नपुंसक से रहित स्थान में रहना।

2. स्त्री कथा परिहार – स्त्री-सम्बन्धी वार्त्ताएँ नहीं करना।

3. निषद्याऽनुपवेशन – जिस स्थान या कुर्सी, चौकी आदि पर स्त्री बैठी हुई हो, वहाँ 48 मिनट तक नहीं बैठना।

4. इन्द्रिय अदर्शन – स्त्रियों के अंगोपांग देखने का विचार भी नहीं करना।

5. **कुड्यान्तर-वर्जन** – भीत, द्वार आदि की ओट में गृहस्थ के मकान हों तो वहाँ नहीं रहना।

6. **पूर्वक्रीड़ा अस्मरण** – पूर्व काल में भोगी हुई काम क्रीड़ाओं का स्मरण नहीं करना।

7. **प्रणीताभोजन** – विकारवर्द्धक गरिष्ठ भोजन का त्याग करना।

8. **अतिमात्राऽभोग** – प्रमाण से अधिक आहार नहीं करना।

9. **विभूषा परिवर्जन** – शरीर की सजावट आदि नहीं करना।

यहाँ नव ब्रह्मचर्य गुप्तियों का स्वरूप पुरुष को लक्ष्य में रखकर बतलाया गया है। जहाँ पुरुष के लिए स्त्री का उल्लेख आया है वहाँ ब्रह्मचारी स्त्री के लिए पुरुष समझना चाहिए।

इस तप के करने से उत्कृष्ट चारित्र की प्राप्ति होती है और भावों की निर्मलता में अभिवृद्धि होती है। यह आगाढ़ तप गृहस्थ एवं श्रमण दोनों के लिए करणीय बतलाया गया है।

इसकी प्रचलित विधि यह है –

इस तप में एक-एक गुप्ति की आराधना के लिए नौ-नौ कवल के नौ एकासना करें। इस प्रकार नौ एकासना 81 कवल पूर्वक नौ दिनों में पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप उद्यापन में साधु, साध्वी एवं ब्रह्मचारी श्रावक-श्राविकाओं को वस्त्र आदि का दान देवें।

• वर्तमान परिपाटी के अनुसार इस तप के दिनों में निम्नलिखित कायोत्सर्ग आदि करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो नवबंभचेर गुत्तिधराणं	9	9	9	20

15. निगोदआयुक्षय तप

जैन शब्दावली में साधारण वनस्पति काय को निगोद तथा सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय को सूक्ष्म निगोद कहते हैं। इस विश्व में निगोद के असंख्य गोले हैं। एक-एक गोले में असंख्यात निगोद हैं और एक-एक निगोद में अनन्त जीव होते हैं।

इस पृथ्वी पर बहुत से ऐसे जीव हैं जो अनादिकाल से सूक्ष्म निगोद में ही रहे हुए हैं, उन्हें 'अव्यवहार राशि' के जीव कहा जाता है। निगोद के जीवों की

आयु अन्तर्मुहूर्त की होती है। अन्तर्मुहूर्त्त अर्थात् दो समय से दो घड़ी (48 मिनिट) के भीतर का काल इन दो घड़ी के अन्तराल में निगोद के जीव अनेक बार जन्म-मरण कर लेते हैं तथा अनन्तकाल तक इस स्थिति को भोगते रहते हैं। आगमकारों ने जन्म और मृत्यु की वेदना असह्य बतलायी है।

यह तप निगोद (तिर्यञ्च गति) की आयु का बंध न हो, उस निमित्त किया जाता है। इस तप के फल से निगोद स्थिति का क्षय अथवा निगोद गति का द्वार बन्द हो जाता है।

वर्तमान में यह तप विशेष रूप से प्रचलित है। इसकी अद्य प्रचलित विधियाँ इस प्रकार है –

प्रथम विधि – इस तप में सर्वप्रथम एक उपवास करके एकासना से पारणा करें। फिर बेला करके एकासना करें। फिर निरन्तर तीन उपवास (तेला) करके एकासना करें। तत्पश्चात पुनः बेला करके एकासना करें। फिर पुनः उपवास करके एकासना करें।

इस प्रकार 14 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

द्वितीय विधि – दूसरे प्रकार के अनुसार प्रथम एक उपवास करके एकासना करें। फिर निरन्तर दो उपवास (बेला) करके एकासना करें। फिर निरन्तर तीन उपवास (तेला) करके एकासना करें। फिर निरन्तर चार उपवास (चौला) करके एकासना करें। फिर निरन्तर पाँच उपवास (पंचोला) करके एकासना करें। तत्पश्चात घटते क्रम से चार उपवास करके एकासना करें, तीन उपवास करके एकासना करें, दो उपवास करके एकासना करें और एक उपवास करके एकासना करें।

इस प्रकार यह तप 25 उपवास और 9 पारणे कुल 34 दिनों में पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर जिनप्रतिमा के सामने 14 या 34 की संख्या में मोदक आदि द्रव्य चढ़ायें।

- सुविहित परम्परानुसार इस तप के दिनों में अरिहन्त पद का जाप करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

16. पंचमहाव्रत तप

व्रत अर्थात प्रतिज्ञा। पाँच कठोर प्रतिज्ञाएँ स्वीकार करना महाव्रत कहलाता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह – ये पाँच नियम गृहस्थ के

लिए अणुव्रत के रूप में होते हैं और मुनियों के लिए महाव्रत कहे जाते हैं। गृहस्थ अहिंसादि व्रतों का आंशिक अनुपालन करता है, किन्तु मुनि यावज्जीवन सर्वांशतः परिपालन करते हैं।

इस तप के प्रभाव से सर्वविरति चारित्र धर्म की प्राप्ति होती है। यह तप उत्कृष्ट धर्म की प्राप्ति हेतु किया जाता है। इसकी निम्न विधि कही गयी है –

विधि – इस तप में प्रत्येक महाव्रत के लिए एक-एक उपवास करें तथा प्रत्येक उपवास के पारणे में बियासना करें। इस प्रकार दस दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के अन्तिम दिन में सम्यक् चारित्र की विशिष्ट आराधना करें, चारित्र के उपकरण बनवायें और साधु-साध्वियों की भक्ति करें।

- सुविहित परम्परानुसार इस तप में साधु पद की आराधना करनी चाहिए–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं	27	27	27	20

17. श्री पार्श्वगणधर तप

वर्तमान में भगवान पार्श्वनाथ का नाम सुप्रसिद्ध है, अतः उनकी आराधना के साथ-साथ उनके गणधरों के निमित्त भी तप किया जाता है। प्रभु पार्श्वनाथ के दस गणधर थे। यह तप उन्हें लक्ष्य में रखकर किया जाता है।

विधि – इस तप में दस छट्ठ (बेले) एकान्तर बियासना के पारणे से करें। इस प्रकार 20 उपवास और 10 पारणा कुल 30 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

इसका यन्त्र न्यास इस प्रकार है –

तप दिन– 20, कुल दिन- 30										
दिन	1-2	3	4-5	6	7-8	9	10-11	12	13-14	15
तप	बेला	पा.	बेला	पा.	बेला	पा.	बेला	पा.	बेला	पा.
दिन	16-17	18	19-20	21	22-23	24	25-26	27	28-29	30
तप	बेला	पा.	बेला	पा.	बेला	पा.	बेला	पा.	बेला	पा.

उद्यापन – गणधर मूर्ति की पूजा करें। यदि गणधर प्रतिमा न हो तो मूलनायक प्रतिमा की स्नात्र पूजा रचायें। 10-10 की संख्या में नैवेद्य, फल आदि चढ़ायें। प्रत्येक दिन आँगी रचना करें।

• इस तपोयोग में निम्नांकित जापादि करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ पार्श्वनाथ गणधराय नमः	14	14	14	20

18. दूज तिथि तप

किसी भी श्रेष्ठ कार्य हेतु शुक्ल पक्ष श्रेष्ठ माना गया है अतः यह तप शुक्ल पक्षीय द्वितीया के दिन किया जाता है।

यह तिथि ज्ञान तिथि मानी गयी है। इसलिए इस तप में ज्ञान प्रधान पाँच सूत्रों का जाप करते हैं। इस तप के करने से अपूर्व श्रुत एवं सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति होती है।

विधि – यह तप कार्तिक शुक्ला द्वितीया से शुरू करके जघन्य से 22 मास तथा उत्कृष्ट से 22 वर्ष पर्यन्त प्रत्येक मास में शुक्ल दूज के दिन चौविहार उपवास करें। इस प्रकार यह तप 22 महीना या 22 वर्षों में पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप का उद्यापन यथाशक्ति पंचमी तप की तरह करना चाहिए।

• प्रचलित सामाचारी के अनुसार इस तप में निम्न जापादि करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1. ॐ नन्दीसूत्राय नमः	51	51	51	20
2. ॐ अनुयोगद्वारसूत्राय नमः	62	62	62	20

19. रत्नरोहण तप

मोक्ष रूपी रत्न के मार्ग पर आरोहण करने के उद्देश्य से यह तप किया जाता है। तपसुधानिधि में इसकी निम्न विधि दी गयी है –

यह तप आश्विन शुक्ला पंचमी से शुरू करके इसमें चार-चार दिन की पाँच ओली करें–

प्रथम ओली में – पहले दिन एकासना, दूसरे दिन नीवि, तीसरे दिन आयंबिल एवं चौथे दिन उपवास करें।

द्वितीय ओली में – अनुक्रम से नीवि, आयंबिल, उपवास और एकासना करें।

तृतीय ओली में – अनुक्रम से आयंबिल, उपवास, एकासना और नीवि करें।

चतुर्थ ओली में – अनुक्रम से उपवास, एकासना, नीवि और आयंबिल करें।

पंचम ओली में – अनुक्रम से उपवास, एकासना, नीवि और आयंबिल करें।

इस प्रकार यह तप बीस दिनों में पूर्ण होता है और तीन वर्ष तक किया जाता है।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर पाँच जप माला, पाँच स्थापनाचार्य, पाँच रत्नमय जिनबिम्ब, अष्टप्रकारी पूजा सामग्री आदि चढ़ायें। रत्नत्रय की विशिष्ट आराधना करें।

• प्रचलित सामाचारी के अनुसार इस तपोयोग में अरिहन्त पद की आराधना करें –

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

20. बृहत् संसारतारण तप

संसार रूपी महासागर से तिरने के लिए जो तप किया जाता है, उसे बृहत संसारतारण-तप कहते हैं। जैनाचार्यों ने इस तप का निरूपण पूर्वोक्त प्रयोजन को ही ध्येय में रखकर किया है।

इसकी प्रचलित विधि यह है –

इस तप में क्रमशः तीन अट्ठम आयंबिल के पारणे पूर्वक करें। इस प्रकार यह तप 9 उपवास और 3 आयंबिल कुल बारह दिनों में पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के अन्तिम दिन में चौड़े बर्तन में दूध भरकर उसमें चाँदी की नौका तिरायें। नाव में चाँदी के सिक्के, मोती, प्रवाल आदि डालें। परमात्मा की पूजा पढ़ायें और ज्ञान पूजा करें।

• प्रचलित मान्यतानुसार इस तप साधना में निम्नलिखित जाप-कायोत्सर्ग आदि करें।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	30

21. लघु संसारतारण तप

चरमावर्त्त अवस्था को प्राप्त करने वाले भव्य जीवों का संसार अत्यल्प रह जाता है, उसी लक्ष्य से इस तप का नाम "लघुसंसारतारण-तप" रखा गया है। यह तप करने से अति अल्प संसार का परिभ्रमण भी शीघ्र समाप्त हो जाता है। इसकी प्रचलित विधि निम्न प्रकार है –

इस तप में सर्वप्रथम तीन आयंबिल करके उपवास करें। फिर पुनः तीन आयंबिल और उपवास करें। फिर पुनः तीन आयंबिल और उपवास करें। इस प्रकार 9 आयंबिल और 3 उपवास कुल बारह दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन और साथिया आदि बृहत संसारतारण तप के समान जानना चाहिए।

22. षट्काय तप

जैन विज्ञान में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय- इन छः प्रकार के जीवों को 'षट्काय' की संज्ञा दी गयी है। अहिंसक को इन षट्काय जीवों का सदैव रक्षण करना चाहिए। यह तप षट्काय जीवों की रक्षा करने एवं आत्मतुला सिद्धान्त को आत्मसात करने के उद्देश्य से किया जाता है।

विधि – प्रचलित विधि के अनुसार इस तप में लगातार छह उपवास करें। इस तरह छह दिनों में यह तप पूर्ण हो जाता है।

• गीतार्थ सामाचारी का अनुपालन करते हुए इसमें छहों दिन अरिहन्त पद की क्रियाएँ करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

23. चिन्तामणि तप

जैसे गायों में कामधेनु, वृक्षों में कल्पवृक्ष श्रेष्ठ होता है, वैसे ही मणियों में चिन्तामणि रत्न उत्तम माना गया है। यहाँ चिन्तामणि का अभिप्राय आत्मा की निजी सम्पदा अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय से है। यह तप चेतना का शाश्वत खजाना

जो चिन्तामणि रत्न की तुलना से भी अनुपमित है, उसे पाने के लिए किया जाता है।

जैनाचार्यों ने उक्त भाव की अपेक्षा से ही इस तप का नाम 'चिन्तामणि तप' दिया है।

विधि – इस तप में पहले दिन उपवास, दूसरे दिन एकासना, तीसरे दिन नीवि, चौथे दिन उपवास, पाँचवें दिन एकासना और छठे दिन उपवास किया जाता है। यह आगाढ़ तप छह दिनों में पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के समाप्ति दिन में रात्रि जागरण करें। ज्ञान पूजा करें। पाँच स्त्रियों को ज्ञान के उपकरण देवें तथा साधर्मीभक्ति करें।

- इस तप के दिनों में भी पूर्ववत अरिहन्त पद की ही आराधना करें।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20

24. शत्रुंजय मोदक तप

आत्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके मोक्ष रूपी फल को पाने के लिए यह तप किया जाता है। इस तप में शत्रुंजय तीर्थ का नाम आदर्श रूप में इसीलिए है कि वहाँ पर अनन्त आत्माओं ने राग-द्वेष रूपी शत्रुओं को विनष्ट किया, हम भी इसी लक्ष्य को सिद्ध करें और हमारी पुरुषार्थ यात्रा अगणित वेग से आगे बढ़ सकें।

इस तप के करने से विपुल कर्मों की निर्जरा होती है और राग-द्वेषादि परिणाम मन्द होते हैं। यह आगाढ़ तप गृहस्थ एवं श्रमण दोनों के लिए करणीय है। इसकी तप विधि इस प्रकार है –

इस तप में पहले दिन पुरिमड्ढ़, दूसरे दिन एकासना, तीसरे दिन नीवि, चौथे दिन आयंबिल और पाँचवें दिन उपवास करें। इस प्रकार यह तप पाँच दिनों में पूर्ण होता है।

उद्यापन – इस तप के अन्तिम दिन परमात्मा की बृहद् स्नात्र पूजा करें, पाँच मोदक चढ़ायें, उस पर पाँच रुपया रखें। चाँदी के सिक्के से ज्ञान पूजा करें।

- परम्परा मान्य सामाचारी के अनुसार इन दिनों निम्न विधि से गुणना आदि करें –

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री शत्रुंजय तीर्थाय नमः	21	21	21	20

25. शत्रुंजय छट्ठ–अट्ठम तप

इस तप में छट्ठ-अट्ठम किस हेतु से किये जाते हैं इसकी प्रामाणिक जानकारी का अभाव है। यद्यपि वर्तमान में यह तप खूब प्रचलित है। यह तप गृहस्थ एवं साधु उभय के लिए कहा गया है। प्रायः इस तप की आराधना सामूहिक रूप से होती है। इसकी परम्परा मान्य विधि यह है–

इस तप में सर्वप्रथम अट्ठम (तेला) करके पारणा करें। तदनन्तर सात छट्ठ एकान्तर पारणा से करें। फिर पुनः एक अट्ठम करके पारणा करें।

इस प्रकार इसमें दो अट्ठम, सात छट्ठ और नौ पारणा कुल 29 दिन लगते हैं।

उद्यापन – इस तप की पूर्णाहुति प्रसंग पर तीर्थ यात्रा का संकल्प करें, जिनालय की आशातनाओं को दूर करें और यथाशक्ति प्रभुभक्ति एवं संघभक्ति करें।

• इस तप के दौरान निम्नोक्त गुणना आदि करना चाहिए–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री शत्रुंजय तीर्थाय नमः	21	21	21	20

26. सिद्धि तप

यह तप अपने नाम के अनुरूप सिद्ध पद प्राप्ति के लिए किया जाता है। आठवें गुणस्थान से सिद्ध पद पाने की श्रेणी का प्रारम्भ हो जाता है इसलिए इसमें आठ उपवास तक चढ़ते हैं। वर्तमान में यह तपोयोग खूब प्रचलित है।

इसकी सामान्य विधि यह है –

इस तप में प्रथम एक उपवास करके पारणा करें, फिर दो उपवास करके पारणा करें, फिर तीन उपवास करके पारणा करें, फिर चार उपवास करके पारणा करें, फिर पाँच उपवास करके पारणा करें, फिर छह उपवास करके पारणा करें, फिर सात उपवास करके पारणा करें, फिर आठ उपवास करके पारणा करें।

इस प्रकार इसमें 36 उपवास और 8 पारणा कुल 44 दिनों (डेढ़ मास) में यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन – परमात्मा की बृहद् स्नात्र पूजा करें, साधर्मीभक्ति एवं संघपूजा करें, सुविहित मुनियों को वस्त्र आदि का दान देवें।

• इस तपश्चरण काल में क्रमशः निम्न जाप आदि करें-

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो सिद्धाणं	8	8	8	12

27. परदेशी राजा तप

राजा प्रदेशी एक क्रूर शासक था और जैन सिद्धान्तों के विपरीत मत को स्वीकारता था। एक बार केशी गणधर के समागम से वह परम आस्तिक बन गया और आयुष्य पूर्णकर सूर्याभ नाम का देव हुआ। उस देव ने भगवान महावीर के सम्मुख अपूर्व नृत्य किये। राजप्रश्नीय नामक उपांगसूत्र में परदेशी राजा के जीवन चरित्र का विस्तृत वर्णन है।

यह तप करने से मिथ्याग्रसित बुद्धि निर्मल हो जाती है यानि इस आत्मा का क्षयोपशम उस तरह का हो जाता है जिससे वह सत्य को सत्य और असत्य को असत्य रूप में स्वीकारता है।

विधि – इस तप में 13 छट्ठ बियासना के पारणे से करते हैं। इस प्रकार 39 दिनों में यह तप पूर्ण होता है।

इसमें 13 छट्ठ तेरह प्रकार के सम्यक् दर्शन की आराधना हेतु किये जाते हैं।

उद्यापन – इस तप के बहुमानार्थ सम्यक् दर्शन को पुष्ट करने वाले साधनों का सम्मान करें, दर्शन के उपकरण चढ़ायें तथा साधर्मीभक्ति करें।

• प्रचलित विधि के अनुसार प्रत्येक छट्ठ में क्रमशः निम्नलिखित गुणना आदि करें-

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1. नमो कारक दंसणधराणं	13	13	13	20
2. नमो रोचक दंसणधराणं	13	13	13	20
3. नमो दीपक दंसणधराणं	13	13	13	20
4. नमो निसग्ग रुइधराणं	13	13	13	20
5. नमो उपएस रुइधराणं	13	13	13	20
6. नमो सुत्त-रुइधराणं	13	13	13	20
7. नमो आणा-रुइधराणं	13	13	13	20
8. नमो वीय रुइधराणं	13	13	13	20

9. नमो अभिगम रुइधराणं	13	13	13	20
10. नमो वित्थार रुइधराणं	13	13	13	20
11. नमो किरिया रुइधराणं	13	13	13	20
12. नमो संखेव रुइधराणं	13	13	13	20
13. नमो धम्म रुइधराणं	13	13	13	20

28. बावन जिनालय तप

यह तप नन्दीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों की आराधना के निमित्त किया जाता है। इस तप-सम्बन्धी विस्तृत वर्णन 'नन्दीश्वर तप' में कर चुके हैं। इस तप के द्वारा शाश्वत चैत्यों एवं शाश्वत प्रतिमाओं की उपासना होती है, सम्यग्दर्शन विशुद्ध होता है, दर्शनाचार का परिपालन होता है और दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय होता है।

विधि – इस तप में महीने की दोनों अष्टमियों और दोनों चतुर्दशियों में उपवास करें। इस प्रकार 13 महीनों में 52 उपवासों के द्वारा यह तप पूर्ण होता है।

यह तप करते हुए यदि कोई तिथि भूल जायें तो फिर से शुरू करना चाहिए।

उद्यापन – नन्दीश्वर द्वीप की पूजा रचायें। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भक्ति करें। संघवात्सल्य एवं संघपूजा करें।

• परम्परागत मान्यतानुसार इस तप में उपवास के दिन निम्न जापादि करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री चन्द्रानन स्वामी सर्वज्ञाय नमः	12	12	12	20

29. तीर्थ तप

तीर्थ-यात्रा के लिए प्रस्थान करने के दिन अथवा किसी तीर्थ के प्रथम दर्शन के दिन उपवास करना चाहिए। इससे उत्कृष्ट पुण्य का उपार्जन होता है और सम्यग्दर्शन निर्मल बनता है। तीर्थ दर्शन के दिन उपवास करने से इसे तीर्थ-तप कहा गया है।

तप के दिन निम्न गुणना करें –

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री तीर्थाधिराजाय नमः	20	20	20	20

30. पंचरंगी तप

इस तप में क्रमशः एक उपवास से लेकर पाँच उपवास का तप किया जाता है तथा प्रत्येक दिन पाँच-पाँच आराधक इसमें सम्मिलित होते रहते हैं। इस तरह पाँचों दिन आराधकों के रूप में एक नया रंग (दृश्य) उपस्थित होता है, इसलिए इसे पंचरंगी तप कहते हैं। अर्वाचीन प्रतियों में इसकी विधि निम्न प्रकार है–

प्रथम दिन पाँच आराधक पचोला (लगातार पाँच उपवास करने) का प्रत्याख्यान करें। फिर दूसरे दिन अन्य पाँच व्यक्ति चौले (चार उपवास) का प्रत्याख्यान करें। फिर तीसरे दिन पाँच व्यक्ति तेला का प्रत्याख्यान करें। फिर चौथे दिन पाँच आराधक बेले का प्रत्याख्यान करें। फिर पाँचवें दिन अन्य पाँच आराधक उपवास का प्रत्याख्यान करें।

इस प्रकार इस तप में 25 व्यक्तियों द्वारा उपवास किये जाते हैं तथा यह तप पाँच दिन में पूर्ण होता है। इसी तरह नवरंगी तप समझना चाहिए।

उद्यापन – इस तप के पूर्ण होने पर रथयात्रा (सामूहिक बरघोड़ा) निकालें। 25-25 की संख्या में नैवेद्य आदि चढ़ायें। स्नात्र पूजा रचायें। साधर्मी भक्ति करे।

• इस तपोयोग में ज्ञान की स्थापना करनी चाहिए। फिर तदनुसार साथिया आदि करें –

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ नमो नाणस्स	51	51	51	20

31. चन्दनबाला तप

भगवान महावीर ने छद्मस्थ काल में चौदह अभिग्रह एक साथ धारण किये थे। पाँच मास पच्चीस दिनों के पश्चात यह अभिग्रह कौशाम्बी नगरी में चम्पानगरी के दधिवाहन राजा की पुत्री चन्दनबाला के द्वारा पूर्ण हुआ। उस समय चन्दना तीन दिन की उपवासी थी एवं उसने उड़द बाकुला बहराकर प्रभु के संकल्प को पूर्णता दी। चन्दनबाला तप में यही विधि की जाती है। वर्तमान में

यह तप खूब प्रचलित है।

विधि – तपसुधानिधि (पृ. 310) के अनुसार यह तप कार्तिक कृष्णा दशमी से वैशाख शुक्ला दशमी तक किया जाता है अथवा पर्युषण पर्व के दिनों में या किसी भी दिन किया जा सकता है।

इस तप में एक अट्ठम (तेला) करें। चौथे दिन मुनि को उड़द बाकुले का दान देकर स्वयं भी उसी द्रव्य से पारणा करें। पारणे के दिन आयंबिल का प्रत्याख्यान ठाम चौविहार पूर्वक करना आवश्यक है।

• इस तप में तीनों दिन भगवान महावीर का जाप आदि करें।

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
श्री महावीर स्वामी नाथाय नमः	12	12	12	20

32. नवपदओली तप

जैन परम्परा में नवपद ओली का विशिष्ट स्थान है। यह सिद्धचक्र ओली के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस तप के द्वारा देव, गुरु व धर्म की आराधना स्वयमेव हो जाती है क्योंकि नवपद के प्रारम्भिक दो पदों में देवतत्त्व, अग्रिम तीन पदों में गुरुतत्त्व तथा अन्तिम चार पदों में धर्मतत्त्व समाविष्ट है। इस तप का महत्त्व इसलिए भी है कि बीस स्थानकों एवं तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन के 16 कारणों में भी नवपद समाहित है। नवपद की आराधना से मोक्ष पद तो उपलब्ध होता ही है किन्तु ऋद्धि-समृद्धि-यश- प्रसिद्धि- शारीरिक निरोगता आदि की भी प्राप्ति होती है। इस सम्बन्ध में श्रीपाल राजा और मयणासुन्दरी का कथानक जैन समाज में प्रायः सब जानते हैं।

विधि– यह तप आश्विन शुक्ला 7 के दिन से प्रारम्भ कर आश्विन शुक्ला पूर्णिमा तक नौ दिन तथा चैत्र शुक्ला 7 के दिन से प्रारम्भ कर चैत्र पूर्णिमा तक नौ दिन आयंबिल करके किया जाता है।

इसमें प्रथम दिन चावल की वस्तुएँ, दूसरे दिन गेहूँ की वस्तुएँ, तीसरे दिन चने की वस्तुएँ, चौथे दिन मूंग की वस्तुएँ, पाँचवें दिन केवल उड़द की वस्तुएँ तथा छठें, सातवें, आठवें और नौवें दिन केवल चावल की वस्तुएँ खाकर आयंबिल करना चाहिए। इसमें वर्ण के अनुसार खाद्य वस्तुओं का सेवन किया जाता है, इसलिए इसे वर्ण की ओली भी कहते हैं। यदि ऐसा करने की शक्ति न हो तो सामान्य रीति से आयंबिल करें। इस प्रकार साढ़े चार वर्षों में नौ ओली

= 81 आयंबिल करने पर यह तप पूर्ण होता है।

नियम – इस तप में प्रतिदिन 1. ब्रह्मचर्य का पालन करें 2. उभय सन्ध्याओं में प्रतिक्रमण करें 3. त्रिकाल संध्याओं में देववन्दन करें 4. प्रतिदिन क्रमशः एक-एक पद की क्रिया करें 5. जिस पद के जितने गुण हों उतने साथिया, खमासमण, कायोत्सर्ग आदि करें 6. प्रतिदिन स्नात्रपूजा-अष्टप्रकारी पूजा करें तथा 7. नवपद के गुणों का कीर्तन करें।

- गीतार्थ परम्परानुसार नवपद तप में क्रमशः निम्नलिखित जापादि करें –

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
1. ॐ ह्रीँ नमो अरिहंताणं	12	12	12	20
2. ॐ ह्रीँ नमो सिद्धाणं	8	8	8	20
3. ॐ ह्रीँ नमो आयरियाणं	36	36	36	20
4. ॐ ह्रीँ नमो उवज्झायाणं	25	25	25	20
5. ॐ ह्रीँ नमो लोए सव्वसाहूणं	27	27	27	20
6. ॐ ह्रीँ नमो दंसणस्स	67	67	67	20
7. ॐ ह्रीँ नमो नाणस्स	51	51	51	20
8. ॐ ह्रीँ नमो चारित्तस्स	70	70	70	20
9. ॐ ह्रीँ नमो तवस्स	50	50	50	20

33. एक सौ आठ पार्श्वनाथ तप

यह तप 23वें तीर्थंकर प्रभु पार्श्वनाथ के 108 नामों की अपेक्षा आत्मकल्याण के उद्देश्य से किया जाता है। इस तप में भगवान पार्श्वनाथ के विभिन्न अतिशयों की आराधना की जाती है। वर्तमान में यह तप खूब प्रचलित है।

विधि– प्रचलित परम्परानुसार इस तपाराधना में यथाशक्ति 108 उपवास, आयम्बिल, नीवि या एकासना करें। यह तप निरन्तर भी किया जा सकता है और पृथक्-पृथक् दिनों में भी।

उद्यापन– तप के आदि, मध्य या अन्त में स्नात्र पूजा रचायें तथा 108-108 अष्टप्रकारी सामग्री चढ़ायें।

- इस तप में अरिहंत पद की आराधना करते हुए निम्न जाप आदि करें।

साथिया	खमा.	कायो.	माला
12	12	12	20

	जाप	गाँव
1.	ॐ ह्रीँ शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः	शंखेश्वर
2.	ॐ ह्रीँ अंतरिक्ष पार्श्वनाथाय नमः	शिरपुर
3.	ॐ ह्रीँ अमीझरा पार्श्वनाथाय नमः	बड़ाली
4.	ॐ ह्रीँ आशापूरण पार्श्वनाथाय नमः	नूनगाम
5.	ॐ ह्रीँ अशोक पार्श्वनाथाय नमः	चम्पा
6.	ॐ ह्रीँ अजाहरा पार्श्वनाथाय नमः	अजाहरा
7.	ॐ ह्रीँ अवंति पार्श्वनाथाय नमः	उज्जैन
8.	ॐ ह्रीँ अलौकिक पार्श्वनाथाय नमः	हासामपुरा
9.	ॐ ह्रीँ कलिकुंड पार्श्वनाथाय नमः	धोलका
10.	ॐ ह्रीँ कल्पद्रुम पार्श्वनाथाय नमः	मथुरा
11.	ॐ ह्रीँ करेडा पार्श्वनाथाय नमः	भोपालसागर
12.	ॐ ह्रीँ कच्छुलिका पार्श्वनाथाय नमः	काछोली
13.	ॐ ह्रीँ कल्याण पार्श्वनाथाय नमः	विसनगर
14.	ॐ ह्रीँ कल्हारा पार्श्वनाथाय नमः	भरूच
15.	ॐ ह्रीँ काभिका पार्श्वनाथाय नमः	खंभात
16.	ॐ ह्रीँ केसरीया पार्श्वनाथाय नमः	भद्रावती
17.	ॐ ह्रीँ कोका पार्श्वनाथाय नमः	पाटण
18.	ॐ ह्रीँ कंकण पार्श्वनाथाय नमः	पाटण
19.	ॐ ह्रीँ कंबोइया पार्श्वनाथाय नमः	कंबोई
20.	ॐ ह्रीँ कुकड़ेश्वर पार्श्वनाथाय नमः	कुकड़ेश्वर
21.	ॐ ह्रीँ कुंकुमरोल पार्श्वनाथाय नमः	जालोर
22.	ॐ ह्रीँ कामितपूरण पार्श्वनाथाय नमः	उन्हैल
23.	ॐ ह्रीँ खामणा पार्श्वनाथाय नमः	भोपावर
24.	ॐ ह्रीँ खोया पार्श्वनाथाय नमः	खोयागाम
25.	ॐ ह्रीँ गाडलिया पार्श्वनाथाय नमः	मांडल
26.	ॐ ह्रीँ गीरूआ पार्श्वनाथाय नमः	पंजाब
27.	ॐ ह्रीँ गोडी पार्श्वनाथाय नमः	आहोर
28.	ॐ ह्रीँ गंभीरा पार्श्वनाथाय नमः	गांभु

29.	ॐ ह्रीँ घृतकल्लोल पार्श्वनाथाय नमः	सुथरी
30.	ॐ ह्रीँ घोया पार्श्वनाथाय नमः	पाटण
31.	ॐ ह्रीँ चेल्लण पार्श्वनाथाय नमः	मेवाड़
32.	ॐ ह्रीँ चारूप पार्श्वनाथाय नमः	चारूप
33.	ॐ ह्रीँ चोरवाडी पार्श्वनाथाय नमः	चोरवाड़
34.	ॐ ह्रीँ चंपा पार्श्वनाथाय नमः	पाटण
35.	ॐ ह्रीँ भद्र पार्श्वनाथाय नमः	रापर
36.	ॐ ह्रीँ चिंतामणी पार्श्वनाथाय नमः	बम्बई
37.	ॐ ह्रीँ छाया पार्श्वनाथाय नमः	महेन्द्र पर्वत
38.	ॐ ह्रीँ जगवल्लभ पार्श्वनाथाय नमः	कुम्भोजगिरी
39.	ॐ ह्रीँ जयवर्द्धन पार्श्वनाथाय नमः	जयपुर
40.	ॐ ह्रीँ जीरावला पार्श्वनाथाय नमः	जीरावला
41.	ॐ ह्रीँ जोटावा पार्श्वनाथाय नमः	धीणोज
42.	ॐ ह्रीँ टांकला पार्श्वनाथाय नमः	पाटण
43.	ॐ ह्रीँ डोराला पार्श्वनाथाय नमः	पालनपुर
44.	ॐ ह्रीँ डोकरीया पार्श्वनाथाय नमः	प्रभासपाटण
45.	ॐ ह्रीँ द्वारा पार्श्वनाथाय नमः	मूली गांव
46.	ॐ ह्रीँ दादा पार्श्वनाथाय नमः	बेड़ा
47.	ॐ ह्रीँ दोलती पार्श्वनाथाय नमः	पाटण
48.	ॐ ह्रीँ त्रिभुवनभानु पार्श्वनाथाय नमः	अहिछत्रा
49.	ॐ ह्रीँ नवलखा पार्श्वनाथाय नमः	पाली
50.	ॐ ह्रीँ नवखंडा पार्श्वनाथाय नमः	घोघा
51.	ॐ ह्रीँ नवपल्लव पार्श्वनाथाय नमः	मांगरोल
52.	ॐ ह्रीँ नवफणा पार्श्वनाथाय नमः	आबुजी
53.	ॐ ह्रीँ नागफणा पार्श्वनाथाय नमः	चित्तौड़
54.	ॐ ह्रीँ नरोड़ा पद्मावती पार्श्वनाथाय नमः	नरोड़ा
55.	ॐ ह्रीँ नाकोड़ा पार्श्वनाथाय नमः	नाकोड़ाजी
56.	ॐ ह्रीँ नागेश्वर पार्श्वनाथाय नमः	नागेश्वर
57.	ॐ ह्रीँ पल्लवीया पार्श्वनाथाय नमः	पालनपुर

58.	ॐ ह्रीँ पोसीना पार्श्वनाथाय नमः	पोसीना
59.	ॐ ह्रीँ भेलूपुर पार्श्वनाथाय नमः	वाराणसी
60.	ॐ ह्रीँ पंचासरा पार्श्वनाथाय नमः	पाटण
61.	ॐ ह्रीँ पुरुषादानीय पार्श्वनाथाय नमः	अहमदाबाद
62.	ॐ ह्रीँ पोसालाया पार्श्वनाथाय नमः	ऐरणपुर
63.	ॐ ह्रीँ पाताल चक्रवर्ती पार्श्वनाथाय नमः	महाकाल
64.	ॐ ह्रीँ फलवृद्धि पार्श्वनाथाय नमः	मेड़तारोड़
65.	ॐ ह्रीँ बरेजा पार्श्वनाथाय नमः	बरेजा
66.	ॐ ह्रीँ बहि पार्श्वनाथाय नमः	मन्दसौर
67.	ॐ ह्रीँ भटेवा पार्श्वनाथाय नमः	चाणस्मा
68.	ॐ ह्रीँ भाभा पार्श्वनाथाय नमः	जामनगर
69.	ॐ ह्रीँ भीलड़िया पार्श्वनाथाय नमः	भिलड़ी
70.	ॐ ह्रीँ भीड़भंजन पार्श्वनाथाय नमः	चाणस्मा
71.	ॐ ह्रीँ भवभयहर पार्श्वनाथाय नमः	खंभात
72.	ॐ ह्रीँ मनमोहन पार्श्वनाथाय नमः	कंबोई
73.	ॐ ह्रीँ मक्षी पार्श्वनाथाय नमः	मक्षीजी
74.	ॐ ह्रीँ मनोरथ पार्श्वनाथाय नमः	चित्तौड़
75.	ॐ ह्रीँ मनोरंजन पार्श्वनाथाय नमः	मेहसाणा
76.	ॐ ह्रीँ मनवांछित पार्श्वनाथाय नमः	नेर
77.	ॐ ह्रीँ भूलेवा पार्श्वनाथाय नमः	अहमदाबाद
78.	ॐ ह्रीँ मोढेरा पार्श्वनाथाय नमः	मोढेरा
79.	ॐ ह्रीँ मुहरी पार्श्वनाथाय नमः	टिटोई
80.	ॐ ह्रीँ स्फुलिंग पार्श्वनाथाय नमः	बीजापुर
81.	ॐ ह्रीँ मुलतान पार्श्वनाथाय नमः	मुलतान
82.	ॐ ह्रीँ रावण पार्श्वनाथाय नमः	अलवर
83.	ॐ ह्रीँ संकटहरण पार्श्वनाथाय नमः	जैसलमेर
84.	ॐ ह्रीँ लोढ़ण पार्श्वनाथाय नमः	डभोई
85.	ॐ ह्रीँ लोद्रवा पार्श्वनाथाय नमः	लोद्रवा
86.	ॐ ह्रीँ लोहाणा पार्श्वनाथाय नमः	लोहाणा

87.	ॐ ह्रीँ वरकाणा पार्श्वनाथाय नमः	वरकाणा
88.	ॐ ह्रीँ विघ्नहरा पार्श्वनाथाय नमः	अंतरिक्षजी
89.	ॐ ह्रीँ विश्वचिंतामणी पार्श्वनाथाय नमः	खंभात
90.	ॐ ह्रीँ वही पार्श्वनाथाय नमः	जीर्ण मालवा
91.	ॐ ह्रीँ सहस्रफणा पार्श्वनाथाय नमः	पाटण
92.	ॐ ह्रीँ सप्तफणा पार्श्वनाथाय नमः	भणसाल
93.	ॐ ह्रीँ सेसली पार्श्वनाथाय नमः	सेसली
94.	ॐ ह्रीँ शामला पार्श्वनाथाय नमः	पाटण
95.	ॐ ह्रीँ सोगडीया पार्श्वनाथाय नमः	नाडलाई
96.	ॐ ह्रीं शेरीसा पार्श्वनाथाय नमः	शेरीसा
97.	ॐ ह्रीँ सोरठा पार्श्वनाथाय नमः	वल्लभीपुर
98.	ॐ ह्रीँ स्वयंभू पार्श्वनाथाय नमः	कापरडा
99.	ॐ ह्रीँ स्थंभण पार्श्वनाथाय नमः	खंभात
100.	ॐ ह्रीँ सोरडीया पार्श्वनाथाय नमः	सिरोही
101.	ॐ ह्रीँ सेसफणा पार्श्वनाथाय नमः	सणवा
102.	ॐ ह्रीँ रामचिंतामणि पार्श्वनाथाय नमः	खंभात
103.	ॐ ह्रीँ सुलतान पार्श्वनाथाय नमः	सिद्धपुर
104.	ॐ ह्रीँ सूरजमंडन पार्श्वनाथाय नमः	सूरत
105.	ॐ ह्रीँ शंखलपुरा पार्श्वनाथाय नमः	शंखलपुर
106.	ॐ ह्रीँ हमीरपुरा पार्श्वनाथाय नमः	मीरपुर
107.	ॐ ह्रीँ उवसग्गहरं पार्श्वनाथाय नमः	नगपुरा
108.	ॐ ह्रीँ ह्रींकार पार्श्वनाथाय नमः	अहमदाबाद

34. बीस विहरमान तप

इस तप के द्वारा महाविदेह क्षेत्र में विचरण कर रहे बीस तीर्थंकरों की आराधना की जाती है। यह तप महाविदेह की श्रेष्ठ भूमि पर जन्म लेने एवं विचारों को प्रशस्त करने के उद्देश्य से करते हैं।

विधि– इस तप में 20 उपवास निरन्तर अथवा एकान्तर पारणे पूर्वक करें।

उद्यापन– यह तप पूर्ण होने पर मूलनायक भगवान की पूजा करवायें तथा यथाशक्ति देवद्रव्य, गुरुद्रव्य एवं साधारणद्रव्य में वृद्धि करें।

• जीत परम्परा के अनुसार इस तपकाल में निम्न क्रियाएँ करें—

साथिया	खमा.	कायो.	माला
12	12	12	20

जाप

1. श्री सीमन्धर जिनेश्वराय नमः
2. श्री युगमन्धर जिनेश्वराय नमः
3. श्री बाहु जिनेश्वराय नमः
4. श्री सुबाहु जिनेश्वराय नमः
5. श्री सुजात जिनेश्वराय नमः
6. श्री स्वयंप्रभ जिनेश्वराय नमः
7. श्री ऋषभानन जिनेश्वराय नमः
8. श्री अनंतवीर्य जिनेश्वराय नमः
9. श्री सूरप्रभ जिनेश्वराय नमः
10. श्री विशाल जिनेश्वराय नमः
11. श्री वज्रंधर जिनेश्वराय नमः
12. श्री चन्द्रानन जिनेश्वराय नमः
13. श्री चन्द्रबाहु जिनेश्वराय नमः
14. श्री भुजंग स्वामी जिनेश्वराय नमः
15. श्री ईश्वर स्वामी जिनेश्वराय नमः
16. श्री नमिप्रभ जिनेश्वराय नमः
17. श्री वीरसेन जिनेश्वराय नमः
18. श्री महासेन जिनेश्वराय नमः
19. श्री देवसेन जिनेश्वराय नमः
20. श्री अजितवीर्य जिनेश्वराय नमः

35. अष्टमी तप

जैन मत में अष्टमी एवं चतुर्दशी को चारित्र तिथि के रूप में माना गया है। यह तप सम्यक् चारित्र की आराधना एवं मोहनीय कर्म का क्षय करने के उद्देश्य से किया जाता है।

इस दिन तप करने से शरीर और मन भी स्वस्थ रहते हैं।

विधि—यह तप शुभ दिन में शुक्ल पक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ करके आठ वर्ष-आठ मास पर्यन्त दोनों अष्टमियों में उपवास पूर्वक किया जाता है।

उद्यापन— इस तप के पूर्ण होने पर स्नात्र पूजा करवायें तथा व्रतीधर गृहस्थ एवं साधुओं की वस्त्र-पात्र-आहारादि से भक्ति करें।

• इस तप में संयम पद प्राप्ति की अभिलाषा से निम्न जापादि करें–

जाप	साथिया	खमा.	कायो.	माला
ॐ ह्रीँ नमो चरित्तस्स	17	17	17	20

36. सहस्रकूट तप

यह तप 1024 तीर्थंकरों की आराधना के उद्देश्य से किया जाता है। सहस्रकूट में 1024 तीर्थंकरों की गणना इस प्रकार होती है—

• 720 तीर्थंकर = पाँच भरत एवं पाँच ऐरवत इन दस क्षेत्रों की अतीत-वर्तमान-अनागत ऐसे तीन-तीन चौबीसी के 5 + 5 = 10, 10 × 3 = 30, 24 × 30 = 720 तीर्थंकर होते हैं।

• 160 तीर्थंकर = अवसर्पिणी के चौथे आरे में और उत्सर्पिणी के तीसरे आरे में जब मनुष्य की संख्या सविशेष होती है, वह उत्कृष्ट काल कहलाता है। उस समय पाँच भरत व पाँच ऐरवत क्षेत्र में एक-एक तीर्थंकर विचरण करते हैं तथा महाविदेह क्षेत्र के 160 विजय में प्रत्येक में एक-एक तीर्थंकर विचरण करते हैं। इस प्रकार 160 तीर्थंकर होते हैं।

• 20 तीर्थंकर = वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र में विचरण कर रहे 20 तीर्थंकर।

• 120 तीर्थंकर = भरत क्षेत्र की वर्तमान चौबीशी के पाँच-पाँच कल्याणक ऐसे 24 × 5= 120 होते हैं।

• 4 तीर्थंकर = 1. ऋषभानन 2. चन्द्रानन 3. वारिषेण 4. वर्धमान ये चार शाश्वत नाम हैं।

यहाँ शाश्वत से तात्पर्य यह है कि भरत एवं ऐरवत क्षेत्र की दस चौबीशियों और बीस विहरमानों में उक्त नामवाले तीर्थंकर कहीं न कहीं होते ही है।

इस तरह 1024 तीर्थंकर होते हैं।

विधि– यह तप किसी भी शुभ दिन में प्रारम्भ कर इसमें 1024 तीर्थंकर की आराधना के निमित्त 1024 उपवास या एकाशना आदि करें।

इसमें उपवास आदि तप लगातार करना जरूरी नहीं है, अलग-अलग भी कर सकते हैं।

उद्यापन– यदि सामर्थ्य हो तो उपवास की संख्यानुसार ज्ञान-दर्शन-चारित्र के उपकरणों का दान देवें, पंच कल्याणक पूजा करवाएं तथा साधर्मी वात्सल्य करें।

• प्रचलित विधि के अनुसार गुणना आदि निम्न प्रकार करें–

साथिया	खमा.	कायो.	माला
12	12	12	20

जाप– उपवास के दिन जिस तीर्थंकर की आराधना करनी हो उनके नाम के साथ 'सर्वज्ञाय नमः' पद जोड़ देवें। 1024 तीर्थंकरों के नाम इस प्रकार है–

जंबुद्वीपे भरतक्षेत्रे अतीत चौबीशी

1. केवलज्ञानी
2. निर्वाणी
3. सागर
4. महाशय
5. विमलनाथ
6. सर्वानुभूति
7. श्रीधर
8. श्रीदत्त
9. दामोदर
10. सुतेज
11. स्वामिनाथ
12. मुनिसुव्रत
13. सुमतिनाथ
14. शिवगति
15. अस्त्याग
16. नमीश्वर
17. अनिल
18. यशोधर
19. कृतार्थ
20. जिनेश्वर
21. शुद्धमति
22. शिवंकर
23. स्यंदन
24. संप्रति

जंबुद्वीपे भरतक्षेत्रे वर्तमान चोबीशी

1. ऋषभदेव
2. अजितनाथ
3. संभवनाथ
4. अभिनंदनस्वामी
5. सुमतिनाथ
6. पद्मप्रभु
7. सुपार्श्वनाथ
8. चंद्रप्रभु
9. सुविधिनाथ
10. शीतलनाथ
11. श्रेयांसनाथ
12. वासुपूज्यस्वामी
13. विमलनाथ
14. अनंतनाथ
15. धर्मनाथ
16. शांतिनाथ
17. कुंथुनाथ
18. अरनाथ
19. मल्लिनाथ
20. मुनिसुव्रतस्वामी
21. नमिनाथ
22. नेमिनाथ
23. पार्श्वनाथ
24. महावीरस्वामी

जंबुद्वीपे भरतक्षेत्रे अनागत चोबीशी

1. पद्मनाभ
2. सुरदेव
3. सुपार्श्व
4. स्वयंप्रभ
5. सर्वानुभूति
6. देवश्रुत
7. उदय
8. पेढाल
9. पोट्टिल
10. शतकीर्ति
11. सुव्रत
12. अमम
13. निष्कषाय
14. निष्पुलाक
15. निर्मम
16. चित्रगुप्त
17. समाधि
18. संवर
19. यशोधर
20. विजय
21. मल्लि
22. देव
23. अनंतवीर्य
24. भद्रंकर

धातकीखंडे पूर्व भरते अतीत चोबीशी

1.	रत्नप्रभ	9.	पुरंदनाथ	17.	सिद्धार्थनाथ
2.	अमित	10.	स्वामिनाथ	18.	संयमनाथ
3.	असंभव	11.	देवदत्त	19.	अमलनाथ
4.	अकलंक	12.	वासवदत्त	20.	देवेन्द्रनाथ
5.	चंद्रस्वामी	13.	श्रेयांस	21.	प्रवरनाथ
6.	शुभंकर	14.	विश्वरुप	22.	विश्वसेन
7.	सत्यनाथ	15.	तपस्तेज	23.	मेघनंदन
8.	सुंदरनाथ	16.	प्रतिबोध	24.	सर्वज्ञनाथ

धातकीखंडे पूर्व भरते वर्तमान चोबीशी

1.	युगादिनाथ	9.	अभय	17.	पंचमुष्टि
2.	सिद्धांतनाथ	10.	अप्रकंप	18.	त्रिमुष्टिक
3.	महेश	11.	पद्मनाथ	19.	गांगिक
4.	परमार्थ	12.	पद्मानंद	20.	प्रणव
5.	समुद्दर	13.	प्रियंकर	21.	सर्वांग
6.	भूधर	14.	सुकृतनाथ	22.	ब्रह्मेन्द्र
7.	उद्योत	15.	भद्रेश्वर	23.	इंद्रदत्त
8.	आर्थव	16.	मुनिचंद्र	24.	जिनपति

धातकीखंडे पूर्व भरते अनागत चोबीशी

1.	सिद्धनाथ	9.	ब्रह्मशांति	17.	रविचंद्र
2.	सम्यग् नाथ	10.	पर्वतनाथ	18.	प्रभवनाथ
3.	जिनेन्द्र	11.	कार्मुक	19.	सन्निधिनाथ
4.	संप्रति	12.	ध्यानवर	20.	सुकर्ण
5.	सर्वनाथ	13.	कल्प	21.	सुकर्मा
6.	मुनिनाथ	14.	संवरनाथ	22.	अमम
7.	विशिष्टनाथ	15.	स्वस्थनाथ	23.	पार्श्वनाथ
8.	अपरनाथ	16.	आनंदजिन	24.	शाश्वतनाथ

धातकीखंडे पश्चिम भरते अतीत चोबीशी

1.	वृषभनाथ	9.	प्रबुद्ध	17.	प्रमुखजिन
2.	प्रियमित्र	10.	प्रव्रजित	18.	पल्योपम
3.	शांतनु	11.	सौधर्म	19.	अर्कोपम
4.	सुमृदु	12.	तमोदीप	20.	निष्ठित
5.	अतीत	13.	वज्रसेन	21.	मृगनाभि
6.	अव्यक्त	14.	बुधनाथ	22.	देवेन्द्र
7.	कलाशत	15.	प्रबंधनाथ	23.	प्रयच्छनाथ
8.	सर्वजि	16.	अजितस्वामी	24.	शिवनाथ

धातकीखंडे पश्चिम भरते वर्तमान चोबीशी

1.	विश्वेंदु	9.	मंजुकेशी	17.	पल्लि
2.	कपिलनाथ	10.	पीतवास	18.	अयोग
3.	वृषभनाथ	11.	सुररिपु	19.	योगनाथ
4.	प्रियतेज	12.	दयानाथ	20.	कामरिपु
5.	विमर्शजिन	13.	सहस्त्रध्वज	21.	अरण्यबाहु
6.	प्रशमजिन	14.	जिनसिंह	22.	नमिकनाथ
7.	चारित्रनाथ	15.	रेपक	23.	गर्भज्ञानी
8.	प्रभादित्य	16.	बाहुजिन	24.	अजित

धातकीखंडे पश्चिम भरते अनागत चोबीशी

1.	रत्नकेश	9.	नाराहार	17.	नरनाथ
2.	चक्रहस्त	10.	अमूर्ति	18.	प्रतिकृत
3.	कृतज्ञ	11.	द्विजनाथ	19.	मृगेन्द्रनाथ
4.	परमेश्वर	12.	श्वेतांग	20.	तपोनिधि
5.	सुमूर्ति	13.	चारुनाथ	21.	अचलनाथ
6.	मुहुर्तिक	14.	देवनाथ	22.	अरण्यक
7.	नि:केश	15.	दयाधिक	23.	दशानन
8.	प्रशस्त	16.	पुष्पनाथ	24.	सात्विकनाथ

पुष्करवर द्वीपार्धे पूर्व भरते अतीत चोबीशी

1. मदगन
2. मूर्तिस्वामि
3. निरागस्वामी
4. प्रलंबित
5. पृथ्वीपति
6. चारित्रनिधि
7. अपराजित
8. सुबोधक
9. बुधेश
10. वैतालिक
11. त्रिमुष्टिक
12. मुनिबोध
13. तीर्थस्वामी
14. धर्माधिक
15. ग्रामेश
16. समाधिक
17. प्रभुनाथ
18. अनादि
19. सर्वतीर्थ
20. निरुपम
21. कुमारक
22. विहाराग्र
23. धरणेश्वर
24. विकास

पुष्करवर द्वीपार्धे पूर्व भरते वर्तमान चोबीशी

1. जगन्नाथ
2. प्रभासनाथ
3. संवर
4. भरतेश
5. धर्मानन
6. विख्यात
7. अवसानक
8. प्रबोधक
9. तपोनाथ
10. पाठक
11. त्रिकर
12. सागर
13. श्रीवास
14. श्रीस्वामी
15. सुकर्मेश
16. कर्मातिक
17. अमलेन्द्र
18. ध्वजांशिक
19. प्रसाद
20. विपरीत
21. मृगांक
22. कपाटिक
23. गजेन्द्र
24. ध्यानज्ञ

पुष्करवर द्वीपार्धे पूर्व भरते अनागत चोबीशी

1. वसंतध्वज
2. त्रिमातूल
3. अघटित
4. त्रिखंभ
5. अचेल
6. प्रवादिक
7. भूमानंद
8. त्रिनयन
9. सिद्धांत
10. प्रथग
11. भद्रेश
12. गोस्वामी
13. प्रवासिक
14. मंडलौक
15. महावसु
16. उदीयंतु
17. दर्दुरिक
18. प्रबोधनाथ
19. अभयांक
20. प्रमोद
21. दफारिक
22. व्रतस्वामी
23. निधान
24. त्रिकर्मक

पुष्करवर द्वीपार्धे पश्चिम भरते अतीत चोबीशी

1. पद्मचंद
2. रक्तांग
3. अयोगिक
4. सर्वार्थ
5. ऋषि
6. हरिभद्र
7. गणाधिप
8. पारत्रिक
9. ब्रह्म
10. मुनींद्र
11. दीपक
12. राजर्षि
13. विशाख
14. अचिंतित
15. रविस्वामी
16. सोमदत्त
17. जय
18. मोक्ष
19. अग्निभानु
20. धनुष्कांग
21. रोमांचित
22. मुक्तिनाथ
23. प्रसिद्ध
24. जिनेश

पुष्करवर द्वीपार्धे पश्चिम भरते वर्तमान चोबीशी

1. पद्मपद
2. प्रभावकनाथ
3. योगेश्वर
4. बल
5. सुषमांग
6. बलातीत
7. मृगांक
8. कलंबक
9. ब्रह्मनाथ
10. निषेधक
11. पापहर
12. सुस्वामी
13. मुक्तिचंद
14. अप्राप्तिक
15. नदीतट
16. मलधारी
17. सुसंयम
18. मलयसिंह
19. अक्षोभ
20. देवधर
21. प्रयच्छ
22. आगमिक
23. विनीत
24. रतानंद

पुष्करवर द्वीपार्धे पश्चिम भरते अनागत चोबीशी

1. प्रभावक
2. विनयेंद्र
3. सुभावस्वामी
4. दिनकर
5. अगस्तेय
6. धनद
7. पौखनाथ
8. जिनदत्त
9. पार्श्वनाथ
10. मुनिसिंह
11. आस्तिक
12. भवानंद
13. नृपनाथ
14. नारायण
15. प्रथमांक
16. भूपति
17. दृष्टांशु
18. भवभीरुक
19. नंदननाथ
20. भार्गवनाथ
21. परावस्यु
22. किल्विषाद
23. नवनाशिक
24. भरतेश

जंबूद्वीपे ऐरावतक्षेत्रे अतीत चोबीशी

1.	पंचरुप	9.	अंगुष्टिक	17.	सौभाग्य
2.	जिनहर	10.	विन्यासक	18.	दिनकर
3.	संपुटिक	11.	आरोष	19.	व्रताधि
4.	उज्जयंतिक	12.	सुविधान	20.	सिद्धिकर
5.	अधिष्ठायक	13.	प्रदत	21.	शारीरिक
6.	अभिनंदन	14.	कुमार	22.	कल्पद्रुप
7.	रत्नेश	15.	सर्वशैल	23.	तीर्थाधि
8.	रामेश्वर	16.	प्रभंजन	24.	फलेश

जंबूद्वीपे ऐरावतक्षेत्रे वर्तमान चोबीशी

1.	चंद्रानन	9.	शतायुष	17.	पार्श्वस्वामी
2.	सुचंद्र	10.	शिवसुत	18.	अभिधान
3.	अग्रिषेण	11.	श्रेयांस	19.	मरुदेव
4.	नंदिषेण	12.	स्वयंजल	20.	श्रीधर
5.	ऋषिदत्त	13.	सिंहसेन	21.	सामकंबु
6.	व्रतधर	14.	उपशांत	22.	अग्निप्रभ
7.	सोमचंद्र	15.	गुप्तसेन	23.	अग्रिदत्त
8.	अर्थसेन	16.	महावीर्य	24.	वीरसेन

जंबूद्वीपे ऐरावतक्षेत्रे आगत चोबीशी

1.	सिद्धार्थ	9.	सिद्धसेन	17.	सुव्रत
2.	विमल	10.	महसेन	18.	जिनेन्द्र
3.	विजयघोष	11.	वीरमित्र	19.	सुपार्श्व
4.	नंदिषेण	12.	सत्यसेन	20.	सुकोशल
5.	सुमंगल	13.	चंद्रविभु	21.	अनंत
6.	वज्रधर	14.	महेन्द्र	22.	विमल
7.	निर्वाण	15.	स्वयंजल	23.	अजितसेन
8.	धर्मध्वज	16.	देवसेन	24.	अग्रिदत्त

धातकीखंडे पूर्व ऐरावते अतीत चोबीशी

1.	वज्रस्वामी	9.	हरींद्र	17.	देवभद्र
2.	इंद्रदत्त	10.	प्रतेरीक	18.	धरणेंद्र
3.	सूर्यकस्वामी	11.	निर्वाण	19.	तीर्थनाथ
4.	पुरुरव	12.	धर्महेतु	20.	उदयानंद
5.	स्वामिनाथ	13.	चतुर्मुख	21.	शिवनाथ
6.	अवबोध	14.	जिनकृतेंदु	22.	धार्मिक
7.	विक्रमसेन	15.	स्वयं	23.	क्षेत्रस्वामी
8.	निर्घटिक	16.	विमलादित्य	24.	हरिश्चंद्र

धातकीखंडे पूर्व ऐरावते वर्तमान चोबीशी

1.	अपश्चिम	9.	रुकमेंद्र	17.	मेघानंद
2.	पुष्पदंत	10.	कृपाल	18.	नंदिकेश
3.	अर्हंत	11.	पेढाल	19.	हरनाथ
4.	सुचरित्र	12.	सिद्धेश्वर	20.	अधिष्ठायक
5.	सिद्धानंद	13.	अमृततेज	21.	शांतिक
6.	नंदक	14.	जितेन्द्रस्वामी	22.	नंदिक
7.	प्रकृप	15.	भोगली	23.	कुंडपार्श्व
8.	उदयनाथ	16.	सर्वार्थ	24.	विरोचन

धातकीखंडे पूर्व ऐरावते अनागत चोबीशी

1.	विजयप्रभ	9.	पद्मचंद	17.	नागेन्द्र
2.	नारायण	10.	बोधकेंद्र	18.	नीलोत्पल
3.	सत्यप्रभ	11.	चिंताहिक	19.	अप्रकंप
4.	महामृगेन्द्र	12.	उतराहिक	20.	पुरोहित
5.	चिंतामणि	13.	अपाशित	21.	उभयेंद्र
6.	अशोचित	14.	देवजल	22.	पार्श्वनाथ
7.	धर्मेन्द्र	15.	तारक	23.	निर्वचस
8.	उपवासित	16.	अमोघ	24.	वियोषित

धातकीखंडे पश्चिम ऐरावते अतीत चोबीशी

1. सुमेरुक
2. जिनकृत
3. ऋषिकल्प
4. स्वंवृन्द्र
5. निर्मम
6. कुटलिक
7. वर्धमान
8. अमृतेंद्र
9. शंखानंद
10. कल्याणव्रत
11. हरिनाथ
12. बाहुस्वामी
13. भार्गव
14. सुभद्र
15. पंचपाद
16. विशेषित
17. ब्रह्मचारी
18. असंख्यगति
19. चारित्रेश
20. पारिणामिक
21. कंबोज
22. निधिनाथ
23. कौशिक
24. धर्मेश

धातकीखंडे पश्चिम ऐरावते वर्तमान चोबीशी

1. उपाहित
2. जिनस्वामी
3. राम
4. इंद्रजित
5. पुष्पक
6. मंडिक
7. प्रभानंद
8. मदनसिंह
9. हस्तीन्द्र
10. चंद्रपाल
11. अश्वबोध
12. जनकादि
13. विभूतिक
14. कुमारचन्द्र
15. सौवर्ण
16. हरिप्रभ
17. प्रियमित्र
18. धर्मदेव
19. धर्मचंद्र
20. प्रवाहित
21. नंदिनाथ
22. अश्वामिक
23. अपूर्वनाथ
24. चित्रक

धातकीखंडे पश्चिम ऐरावते अनागत चोबीशी

1. रवींदु
2. सुकुमाल
3. पृथ्वीवंत
4. कुलपरोधा
5. धर्मनाथ
6. प्रियसोम
7. वरुण
8. अभिनंदन
9. स्वर्भानु
10. सुदृष्ट
11. मौष्टिक
12. सुवर्णकेतु
13. सोमचंद्र
14. क्षेत्राधिप
15. जिनेन्द्र
16. कूर्मेषक
17. तमोरिपु
18. देवतामित्र
19. कृतपार्श्व
20. बहुनंद
21. अधोरिक
22. विकुंचिक
23. दृष्टि
24. वत्सेश

पुष्करार्ध द्वीपे पूर्व ऐरावते अतीत चोबीशी

1. कृतांत	9. वज्रांग	17. वत्सल
2. अंबरिक	10. तिरोहित	18. जिनेन्द्र
3. देवादित्य	11. अपापक	19. तुषार
4. अष्टनिधि	12. लोकोत्तिर	20. भुवनस्वामी
5. चंद्रनाथ	13. जलधि	21. सुकालिक
6. वेणुक	14. विद्योतन	22. देवाधिदेव
7. त्रिभानु	15. सुमेरु	23. आकाशिक
8. ब्रह्मादि	16. सुभाषित	24. अंबिक

पुष्करार्ध द्वीपे पूर्व ऐरावते वर्तमान चोबीशी

1. निशामित	9. कर्मिक	17. दामिक
2. अक्षपास	10. चंद्रकेतु	18. शिलादित्य
3. अचिंतककर	11. प्रहारित	19. स्वस्तिक
4. नयादि	12. वीतराग	20. विश्वनाथ
5. पर्णपंडु	13. उद्योत	21. शतक
6. स्वर्णनाथ	14. तपोधिक	22. सहस्तादि
7. तपोनाथ	15. अतीत	23. तमोंकित
8. पुष्पकेतु	16. [illegible]देव	24. ब्रह्मांक

पुष्करार्ध द्वीपे पूर्व ऐरावते अनागत चोबीशी

1. यशोधर	9. तपश्चंद्र	17. सर्वशील
2. सुव्रत	10. शारीरिक	18. प्रतिजात
3. अभयघोष	11. महासेन	19. जितेंद्रिय
4. निर्वाणिक	12. सुश्राव	20. तपादि
5. व्रतवसु	13. द्रढ़प्रहार	21. रत्नकर
6. अतिंराज	14. अंबरिक	22. देवेश
7. ऐरावतनाथ	15. वृषातीत	23. लांछित
8. अर्जुन	16. तुंबरू	24. प्रवेश

पुष्करार्ध द्वीपे पश्चिम ऐरावते अतीत चोबीशी

1. सुसंभव	9. सोमेश्वर	17. सुलोचन
2. पच्छाभ	10. सुभानु	18. माननिधि
3. पूर्वाश	11. विमल	19. पुंडरीक
4. सौंदर्य	12. विबोध	20. चित्रांगण
5. गैरिक	13. संगमक	21. माणिभद्र
6. त्रिविक्रम	14. समाधि	22. सर्वांकाल
7. नरसिंह	15. अश्वतेजा	23. भूरिश्रवा
8. मृगवसु	16. विद्याधर	24. पुण्यांग

पुष्करार्ध द्वीपे पश्चिम ऐरावते वर्तमान चोबीशी

1. गांगेय	9. रुपवीर्य	17. अकोपक
2. जलभद्र	10. वज्रनाभ	18. अकाम
3. अजित	11. संतोष	19. संतोषित
4. ध्वजाधिक	12. सुधर्मा	20. शत्रुसेन
5. सुभद्र	13. फणादि	21. क्षेमवान
6. स्वामिनाथ	14. वीरचंद्र	22. दयानाथ
7. हितक	15. अमोघ	23. कीर्तिनाथ
8. नंदिघोष	16. स्वच्छ	24. शुभनाथ

पुष्करार्ध द्वीपे पश्चिम ऐरावते आगत चोबीशी

1. अदोषित	9. वसुकीर्ति	17. प्रबोध
2. वृषभस्वामी	10. धर्मबोध	18. शतानिक
3. विनयानंद	11. देवांग	19. चारित्र
4. मुनिनाथ	12. मरीचिक	20. शतानंद
5. इंद्रक	13. सुजीव	21. वेदार्थनाथ
6. चंद्रकेतु	14. यशोधर	22. सुधानाथ
7. ध्वजादित्य	15. गौतम	23. ज्योतिर्मुख
8. वसुबोध	16. मुनिशुद्ध	24. सूर्यांकनाथ

वीश विहरमान के नाम

जंबुद्वीप के महाविदेह में

1. सीमंधर 2. युगमंधर 3. बाहु 4. सुबाहु

घातकीखंड के पूर्वार्ध महाविदेह में

5. सुजात 6. स्वयंप्रभ 7. ऋषाभान 8. अनंतवीर्य

घातकीखंड के पश्चिमार्ध महाविदेह में

9. सुरप्रभ 10. विशाल 11. वज्रधर 12. चंदानन

पुष्करवर द्वीपके पूर्वार्ध महाविदेह में

13. चंद्रबाहु 14. भुजंगदेव 15. इश्वर 16. नेमिप्रभ

पुष्करवर द्वीपके पाश्चिमार्ध महाविदेह में

17. वीरसेन 18. महाभद्र 19. चंद्रयशा 20. अजितवीर्य

उत्कृष्ट काल में हुए तीर्थंकरों के नाम

जंबुद्वीप के महाविदेह में

1. जयदेव
2. कर्णभद्र
3. लक्ष्मीपति
4. अनंतवीर्य
5. गंगाधर
6. विशालचंद्र
7. प्रियंकर
8. अमरादित्य
9. कृष्णनाथ
10. गुणगुप्त
11. पद्मनाभ
12. जलधर
13. युगादित्य
14. वरदत्त
15. चंद्रकेतु
16. महाकाय
17. अमरकेतु
18. अरण्यवास
19. हरिहर
20. रामेंद्र
21. शांतिदेव
22. अनंतकृत
23. गजेंद्र
24. सागरचंद्र
25. लक्ष्मीचंद्र
26. महेश्वर
27. ऋषभदेव
28. सौम्यकांति
29. नेमिप्रभ
30. अजितप्रभ
31. महीधर
32. राजेश्वर

धातकीखंडे पूर्वार्ध महाविदेहे

1. वीरचंद्र
2. वत्ससेन
3. नीलकांति
4. मुंजकेशी
5. रूक्मी
6. क्षेमंकर
7. मृगांकर नाथ
8. मुनिमूर्ति
9. विमलनाथ

10. आगमिक
11. निष्पापनाथ
12. वसुंधराधिक
13. मल्लिनाथ
14. वनदेव
15. बलभृत
16. अमृतवाहन
17. पूर्णभद्र
18. रेवांकित
19. कल्पशाख
20. नलिनीदत्त
21. विद्यापति
22. सुपार्श्वनाथ
23. भानुनाथ
24. प्रभंजन
25. विशिष्टनाथ
26. जलप्रभ
27. मुनिचंद्र
28. ऋषिपाल
29. कुडगदत्त
30. भूतानंद
31. महावीर
32. तीर्थेश्वर

धातकीखंडे पश्चिम महाविदेहे

1. धर्मदत्त
2. भूमिपति
3. मेरुदत्त
4. सुमित्र
5. श्रीषेणनाथ
6. प्रभानंद
7. प्रद्माकर
8. महाघोष
9. चंद्रप्रभ
10. भूमिपाल
11. सुमतिषेण
12. अच्युत
13. तीर्थभूति
14. ललितांग
15. अमरचंद्र
16. समाधिनाथ
17. मुनिचंद्र
18. महेन्द्रनाथ
19. शशांक
20. जगदीश्वर
21. देवेन्द्रनाथ
22. गुणनाथ
23. उद्योतनाथ
24. नारायण
25. कपिलनाथ
26. प्रभाकर
27. जिनदीक्षित
28. सकलनाथ
29. शीलारनाथ
30. वज्रधर
31. सहस्रार
32. अशोक

पुष्करार्धे पूर्वार्ध महाविदेहे

1. मेघवाहन
2. जीवरक्षक
3. महापुरुष
4. पापहर
5. मृगांकनाथ
6. शूरसिंह
7. जगत्पूज्य
8. सुमतिनाथ
9. महामहेन्द्र
10. अमरभूति
11. कुमारचंद्र
12. वारिषेण
13. रमणनाथ
14. स्वयंभू
15. अचलनाथ
16. मकरकेतु
17. सिद्धार्थनाथ
18. सफलनाथ
19. विजयदेव
20. नरसिंह
21. शतानंद

22. वृंदारक	26. महायशा	30. पुष्पकेतु
23. चंद्रातप	27. उष्मांक	31. कामदेव
24. चित्रगुप्त	28. प्रद्युम्ननाथ	32. समरकेतु
25. दृढ़रथ	29. महातेज	

पुष्करार्धे पश्चिमार्ध महाविदेहे

1. प्रसन्नचंद्र	12. भीमनाथ	23. ब्रह्मभूति
2. महासेन	13. मेरुप्रभु	24. हितकर
3. वज्रनाथ	14. भद्रगुप्त	25. वरुणदत्त
4. सुवर्णबाहु	15. सुदृढसिंह	26. यश:कीर्ति
5. कुरुचंद्र	16. सुव्रतनाथ	27. नागेंद्र
6. वज्रवीर्य	17. हरिश्चंद्र	28. महीधर
7. विमलचंद्र	18. प्रतिमाधर	29. कृतब्रह्म
8. यशोधर	19. अतिश्रय	30. महेन्द्र
9. महाबल	20. कनककेतु	31. वर्धमान
10. वज्रसेन	21. अजितवीर्य	32. सुरेंद्रदत्त
11. विमलनाथ	22. फल्गुमित्र	

जैन धर्म की श्वेताम्बर मूर्तिपूजक खरतरगच्छ, तपागच्छ, पायछंदगच्छ, त्रिस्तुतिकगच्छ आदि परम्पराओं में उपर्युक्त सभी तपों को प्राय: स्वीकार किया गया है, यद्यपि सभी तप वर्तमान में प्रचलित नहीं है। संघयण बल के ह्रास होने के कारण आगमोक्त कनकावली, रत्नावली, भिक्षु प्रतिमा, भद्रोत्तर आदि दीर्घ अवधि वाले तप शनै: शनै: व्युच्छिन्न हो गये हैं। इच्छुक साधक देहबल क्षीण होने से इन तपों को चाहकर भी नहीं कर सकते। शेष मध्यम और जघन्य तप न्यूनाधिक रूप से सर्वत्र प्रचलित है।

सामान्यत: जैन शास्त्रों में बाह्य तप का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। काल-सापेक्ष अनेक तप भिन्न-भिन्न समय में प्रचलन में आए। कुछ का उद्देश्य लौकिक रहा तो कुछ का लोकोत्तर। तप कर्म निर्जरा का प्रमुख साधन होने से इसे आचरित करने के अनेकश: मार्ग बताए गए ताकि किसी न किसी मार्ग से व्यक्ति लक्ष्य तक पहुँच सके। आद्योपरान्त जैनाचार्यों द्वारा शताधिक तपों का

गुंफन किया गया है। श्वेताम्बर परम्परा में बाह्य तप का प्रचलन एवं रूझान सर्वाधिक देखा जाता है।

आराधक वर्ग की इसी रुचि को ध्यान में रखकर तप विधियों को पृथक भाग के रूप में प्रस्तुत किया है। इससे तप आराधकों को तप चयन में सुविधा होगी। बड़े आकार की पुस्तक को हर समय साथ रखना मुश्किल होता है। अत: तप आराधकों की Easy Carrying के लिए इसका छोटा रूप जरूरी है। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर बाह्य एवं आभ्यंतर तप सम्बन्धी विस्तृत Theoritical विवेचन खण्ड-9 में किया गया है। तप आराधना वर्ग उसके माध्यम से तप सम्बन्धी सूक्ष्म पहलुओं से रूबरू हो पाएगा। प्रस्तुत खण्ड में इसी शास्त्रोक्त ज्ञान को Practically आचरित करने का Procedure बताया हैं।

स्थानकवासी एवं तेरापन्थी परम्परा में अधिकांशत: आगमोक्त तप ही किये जाते हैं, शेष तपों का उनमें नहींवत प्रचलन है। सामान्यतया लघु तप के रूप में अष्टमी, चतुर्दशी, पर्यूषण आदि के दिन उपवास, आयंबिल आदि तथा बृहद् तप के रूप में अट्ठाई, मासक्षमण आदि किये जाते हैं।

●

परिशिष्ट-I

श्री देववन्दन विधि

चैत्यवंदन

● 'इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए मत्थएण वंदामि' इस सूत्र के द्वारा तीन बार खमासमण देकर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन चैत्यवन्दन करूँ? इच्छं' कहकर बायाँ घुटना ऊँचा करें और हाथ जोड़कर चैत्यवंदन करें।

सिद्ध बुद्ध चौबीस जिन, ऋषभ अजित भगवान।
संभव अभिनन्दन सुमति, पद्म सुपार्श्व महान।।1।।
चन्द्रप्रभ सुविधि शीतल, श्री श्रेयांस जिनेश।
वासुपूज्यप्रभु विमल जिन, अनन्त धर्म विशेष।।2।।
शान्ति कुंथु अर मल्लि विभु, मुनिसुव्रत नमि नेम।
पार्श्व वीर हरि पूज्य ए, नित वंदू, धर प्रेम।।3।।

जं किंचि

जं किंचि नाम तित्थं, सग्गे पायालि माणुसे लोए। जाइं जिण बिंबाइं, ताइं सव्वाइं वंदामि।।

णमुत्थुणं

णमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं।।1।। आइगराणं, तित्थयराणं सयं संबुद्धाणं।।2।। पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवर पुंडरियाणं, पुरिसवर गंध हत्थीणं।।3।। लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहियाणं, लोगपइवाणं, लोगपज्जो अगराणं।।4।। अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, बोहिदयाणं।।5।। धम्मदयाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टीणं।।6।। अप्पडिहय वर नाण-दंसण-धराणं, विअट्टछउमाणं।।7।। जिणाणं-

जावयाणं, तिन्नाणं-तारयाणं, बुद्धाणं-बोहयाणं, मुत्ताणं-मोअगाणं।।8।। सव्वन्नूणं, सव्वदरिसीणं, सिव-मयल-मरुअ-मणंत-मक्खय-मव्वाबाह-मपुणराविति, सिद्धिगइ-नाम धेयं, ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं जिअभयाणं।।9।। जे अ अईआ सिद्धा, जे अ भविस्संति णागए काले। संपईअ वट्टमाणा, सव्वे तिविहेण वंदामि।।10।।

• अब खड़े होकर 'इरियावहियं आदि सूत्र' बोलें ।

इरियावहियं

इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! इरियावहियं पडिक्कमामि! इच्छं इच्छामि पडिक्कमिउं।।1।। इरियावहियाए विराहणाए।।2।। गमणागमणे, पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे।।3।। ओसा उत्तिंग, पणग, दग, मट्टी मक्कड़ा संताणा, संकमणे।।4।। जे मे जीवा विराहिया।।5।। एगिंदिया, बेइन्दिया, तेइन्दिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया।।6।। अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ, ठाणं संकामिया, जीवियाओ, ववरोविया, तस्स मिच्छामि दुक्कडं।।7।।

तस्स उत्तरी

तस्स उत्तरी करणेणं, पायच्छित करणेणं, विसोहि करणेणं, विसल्ली करणेणं, पावाणं, कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं।।

अन्नत्थ

अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलिए पित्तमुच्छाए।।1।। सुहुमेहिं अंगसंचालेहि, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठि संचालेहिं।।2।। एवमाइएहिं, आगारेहिं, अभग्गो, अविराहिओ, हुज्ज मे काउस्सग्गो।।3।। जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, णमुक्कारेणं न पारेमि।।4।। ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि।।5।।

• एक लोगस्स अथवा चार नवकार का काउस्सग्ग करें। काउस्सग्ग पारकर 'णमो अरिहंताणं' कहते हुए प्रकट लोगस्स कहें।

लोगस्स

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे। अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली।।1।। उसभ मजिअं च वन्दे, संभव मभिणं दणं च, सुमइं च। पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे।।2।। सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअल सिज्जंस वासुपुज्जं च। विमल मणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि।।3।। कुंथुं अरं च मल्लिं वंदे, मुणिसुव्वयं नमि जिणं च। वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ।।4।। एवं मए अभिथुआ, विहुय रयमला पहीण जरमरणा। चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु।।5।। कित्तिय वंदिय महिया, जे अ लोगस्स उत्तमा सिद्धा। आरुग्ग बोहिलाभं, समाहि वर मुत्तमं दिंतु।।6।। चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा, सागरवर गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।7।।

- अब नीचे बैठकर पुन:

'इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए मत्थएण वंदामि' कहकर खमासमणा दें। फिर बायाँ घुटना ऊँचा करके **'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्, चैत्यवन्दन करूं? इच्छं'** ऐसा कहकर चैत्यवंदन करें।

चैत्यवंदन

आदि देव अरिहंत नमुँ, समरूं तारुं नाम।
ज्यां-ज्यां प्रतिमा जिनतणी, त्यां त्यां करूं प्रणाम ।।1।।
शत्रुंजे श्री आदिदेव, नेम नमुं गिरनार।
तारंगे श्री अजितनाथ, आबु ऋषभ जुहार ।।2।।
अष्टापद गिरी उपरे, जिन चौविशे जोय।
मणिमय मूरति मानशुं, भरत भरावी सोय ।।3।।
समेत शिखर तीरथ बड़ो, जिहां विशे जिन राय।
वैभार गिरिवर ऊपरे, श्री वीर जिनेश्वर राय ।।4।।
मांडवगढ़ नो राजियो, नामे देव सुपास।
ऋषभ कहे जिन समरतां, पहोंते मननी आश ।।5।।

जं किंचि

जं किंचि नाम तित्थं, सग्गे पायालि माणुसे लोए। जाइं जिण बिंबाइं, ताइं सव्वाइं वंदामि

णमुत्थुणं

णमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं।।1।। आइगराणं, तित्थयराणं, सयं संबुद्धाणं।।2।। पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवर पुंडरिआणं, पुरिसवर गंधहत्थीणं।।3।। लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहियाणं, लोगपइवाणं, लोगपज्जोअगराणं।।4।। अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, बोहिदयाणं।।5।। धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवर-चाउरंत-चक्कवट्टीणं।।6।। अपडिहयवर-नाण दंसण धराणं विअट्टछउमाणं।।7।। जिणाणं-जावयाणं, तिन्नाणं-तारयाणं, बुद्धाणं-बोहयाणं, मुत्ताणं-मोअगाणं।।8।। सव्वन्नूणं, सव्वदरिसीणं, सिव-मयल-मरुअ-मणंत-मक्खय-मव्वाबाह, मपुणराविति, सिद्धिगई, नामधेयं, ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं जिअभयाणं।।9।। जे अ अईआ सिद्धा, जे अ भविस्संति णागए काले। संपईअ वट्टमाणा, सव्वे तिविहेण वंदामि।।10।।

- अब खड़े होकर 'अरिहंत चेइयाणं' बोलें।

अरिहंत चेइयाणं करेमि काउस्सग्गं।।1।। वंदण वत्तिआए, पूअण वत्तिआए, सक्कार वत्तिआए, सम्माण वत्तिआए, बोहिलाभ वत्तिआए, निरुवसग्ग वत्तिआए।।2।। सद्धाए, मेहाए, धीईए, धारणाए, अणुप्पेहाए, वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्गं।।3।।

अन्नत्थ ऊससिएणं नीससीएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलिए पित्तमुच्छाए।।1।। सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं।।2।। एवमाइएहिं आगारेहिं, अभग्गो अविराहिओ, हुज्ज मे काउस्सग्गो।।3।। जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, नमुक्कारेणं, न पारेमि।।4।। ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि।।5।।

(एक नवकार का कायोत्सर्ग करके "नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यः" कहकर पहली स्तुति कहें)

बीस स्थानक में, गुणि गुण भेदा भेद
ध्याता जो ध्यावे, निर्भय भाव अखेद।
तीर्थंकर पदवी, पावे पुण्य प्रधान
वंदूं विधियोगे, त्रिकरण शुद्धि विधान।।1।।

लोगस्स

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे। अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली।।1।। उसभ मजिअं च वंदे, संभव मभिनंदणं च सुमइं च। पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वन्दे।।2।। सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअल सिज्जंस वासुपुज्जं च। विमल मणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि।।3।। कुंथुं अरं च मल्लि वंदे, मुणिसुव्वयं नमि जिणं चं। वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च।।4।। एवं मए अभिथुआ, विहुय रयमला पहीणजरमरणा। चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु।।5।। कित्तिय वंदिय महिया, जे अ लोगस्स उत्तमा सिद्धा, आरुग्ग बोहिलाभं, समाहिवर मुत्तमं दिंतु।।6।। चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा। सागरवर गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।7।।

सव्वलोए अरिहंत चेइयाणं करेमि काउस्सग्गं।।1।। वंदण वत्तिआए, पूअण वत्तिआए, सक्कार वत्तिआए, सम्माण वत्तिआए, बोहिलाभ वत्तिआए, निरुवग्ग वत्तिआए।।1।। सद्धाए, मेहाए, धीईए, धारणाए, अणुप्पेहाए, वड्डमाणीए ठ्ठामि काउस्सग्गं।।3।।

अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलीए पित्तमुच्छाए।।1।। सुहुमेहिं अंग संचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठसंचालेहिं।।2।। एवमाइएहिं आगारेहिं, अभग्गो अविराहिओ, हुज्ज मे काउस्सग्गो।।3।। जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, णमुक्कारेणं न पारेमि।।4।। ताव कायं ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि।।5।।

(एक नवकार का कायोत्सर्ग करें। फिर 'णमो अरिहंताणं' कहकर दूसरी स्तुति कहें)

त्रैकालिक भावे, तीर्थंकर भगवान
भवसागर तारण, कारण रूप महान्।
होते हैं होंगे और हुये पद बीस
सेवा से मेवा, वंदूं जिन जगदीश।।2।।

पुक्खरवरदीवड्ढे

पुक्खर वरदी वड्ढे, धायइ संडे अ जंबूदीवे अ। भरहे रवय विदेहे,

धम्माइगरे नमंसामि।।1।। तम तिमिर पडल विद्धं, सणस्स सुरगण नरिंद महिअस्स। सीमधरस्स वंदे, पफ्फोडिअ मोहजालस्स।।2।। जाई जरा मरण सोग पणासणस्स, कल्लाण पुक्खल विसाल सुहावहस्स। को देव दावण नरिंद गणच्चिअस्स, धम्मस्स सार मुवलब्भ करे पमायं।।3।। सिद्धे भो! पयओ णमो जिणमए, नंदि सया संजमे, देवंनागसुवन्न किन्नर गणस्सब्भूअ भावच्चिए। लोगो जत्थ पइट्ठिओ जगमिणं तेलुक्क मच्चासुरं धम्मो वड्ढउ सासओ विजयओ धम्मुत्तरं वड्ढउं।।4।।

सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं।।1।। वंदण वत्तिआए, पूअण वत्तिआए, सक्कार वत्तिआए, सम्माण वत्तिआए, बोहिलाभ वत्तिआए, निरुवसग्ग वत्तिआए।।2।। सद्धाए, मेहाए, धीईए, धारणाए, अणुप्पेहाए, वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्गं।।3।।

अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं भमलिए पित्तमुच्छाए।।1।। सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं।।2।। एवमाइएहिं, आगारेहिं, अभग्गो, अविराहिओ, हुज्ज मे काउस्सग्गो।।3।। जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, नमुक्कारेणं, न पारेमि।।4।। ताव कायं ठाणेणं मोणेणं, झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि।।5।।

(एक नवकार का कायोत्सर्ग करें। फिर 'णमो अरिहंताणं' कहकर तीसरी स्तुति कहें।)

बीस स्थानक तप, साधन सुखद विधान
ज्ञातादिक आगम, पावे गुरुगम ज्ञान।
आराधे भविजन, पावे पद कल्याण
सुविहित जिन आगम, वंदू जीवन प्राण।।3।।

सिद्धाणं बुद्धाणं

सिद्धाणं बुद्धाणं, पारगयाणं, परंपर गयाणं। लोअग्ग मुवगयाणं, नमो सया सव्व सिद्धाणं।।1।। जो देवाण वि देवो, जं देवा पंजलि नमंसंति। तं देव-देव महिअं, सिरसा वंदे महावीरं।।2।। इक्कोवि नमुक्कारो, जिणवर वसहस्स वद्धमाणस्स। संसार सागराओ तारेइ नरं व नारिं वा।।3।। उज्जित सेल सिहरे, दिक्खानाणं निसीहिआ जस्स। तं धम्म चक्कवट्टिं,

अरिट्ठनेमिं नमंसामि।।4।। चत्तारि अट्ठ दस दोय, वंदिआ जिणवरा चउवीसं। परमट्ठ निट्ठिअट्ठा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।5।।

वेयावच्चगराणं, संतिगराणं, सम्मदिट्ठि समाहिगराणं। करेमि काउस्सग्गं।

अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलिए पित्तमुच्छाए।।1।। सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं।।2।। एवमाइएहिं, आगारेहिं, अभग्गो, अविराहिओ, हुज्ज मे काउसग्गो।।3।। जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, नमुक्कारेणं, न पारेमि।।4।। ताव कायं, ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि।।5।।

(एक नवकार का कायोत्सर्ग करके 'नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः' कहकर चौथी स्तुति कहें)

हरि पूजित श्री जिन, शासन वासित भाव
भवि बीसस्थानक, साधन पुण्य प्रभाव।
सुर असुर उन्हीं के, होय सहायक आप
फैले त्रिभुवन में, साधक पुण्य प्रताप।।4।।

- अब नीचे बैठकर बायाँ घुटना ऊँचा करके 'णमुत्थुणं' कहें।

णमुत्थुणं

णमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं।।1।। आइगराणं, तित्थयराणं, सयं संबुद्धाणं।।2।। पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिवसर पुंडरिआणं, पुरिसवरगंधहत्थीणं।।3।। लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहिआणं, लोगपइवाणं, लोगपज्जो-अगराणं।।4।। अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, बोहिदयाणं।।5।। धम्मदयाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवर-चाउरंत चक्कवट्टीणं।।6।। अप्पडिहयवर-नाण दंसण धराणं, विअट्टच्छउमाणं।।7।। जिणाणं-जावयाणं, तिन्नाणं-तारयाणं, बुद्धाणं-बोहयाणं, मुत्ताणं-मोअगाणं।।8।। सव्वनूणं-सव्वदरिसीणं, सिव-मयल-मरुअ-मणंत-मक्खय-मव्वाबाह-मपुणराविति सिद्धिगइ नामधेयं ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं जिअभयाणं।।9।। जे अ अईआ सिद्धा, जे अ भविस्संति णागए काले।

संपइअ वट्टमाणा, सव्वे तिविहेण वंदामि।।10।।

• अब खड़े होकर 'अरिहंत चेइयाणं' बोलें।

अरिहंत चेइयाणं करेमि काउस्सग्गं।।1।। वंदण वत्तिआए, पूअण वत्तिआए, सक्कार वत्तिआए, सम्माण वत्तिआए, बोहिलाभ वत्तिआए, निरुवसग्ग वत्तिआए, सम्माण वत्तिआए ।।2।। सद्धाए, मेहाए, धीईए, धारणाए, अणुप्पेहाए, वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्गं।।3।।

अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलिए, पित्तमुच्छाए।।1।। सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं।।2।। एवमाइएहिं आगारेहिं, अभग्गो, अविराहिओ, हुज्ज मे काउस्सग्गो।।3।। जाव अरिहंताणं भगवंताणं, नमुक्कारेणं, न पारेमि।।4।। ताव कायं, ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि।।5।।

(एक नवकार का कायोत्सर्ग करके "नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यः" कहकर पहली स्तुति कहें।)

मूरति मन मोहन, कंचन कोमल काय
सिद्धारथ नंदन, त्रिशलादेवी सुमाय।
मृगनायक लंछन, सात हाथ तनुमान
दिन-दिन सुखदायक, स्वामी श्री वर्द्धमान।।1।।

लोगस्स

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे। अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली।।1।। उसभ मजिअं च वंदे, संभव मभिणंदणं च सुमइं च। पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वन्दे।।2।। सुविहिं च पुप्फदंतं सीअल सिज्जंस वासुपुज्जं च। विमल मणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि।।3।। कुंथुं अरं च मल्लिं वंदे, मुणिसुव्वयं नमि जिणं च। वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च।।4।। एवं मए अभिथुआ, विहुय रयमला पहीण जरमरणा। चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु।।5।। कित्तिय वंदिय महिया, जे अ लोगस्स उत्तमा सिद्धा। आरुग्ग बोहिलाभं, समाहिवर मुत्तमं दिंतु।।6।। चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा। सागर वर गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।7।।

सव्वलोए अरिहंत चेइयाणं करेमि काउस्सग्गं।।1।। वंदण वत्तिआए, पूअण वत्तिआए, सक्कार वत्तिआए, सम्माण वत्तिआए, बोहिलाभ वत्तिआए, निरुवसग्ग वत्तिआए।।2।। सद्धाए, मेहाए, धीईए, धारणाए, अणुप्पेहाए, वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्गं।।3।।

अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलिए पित्तमुच्छाए।।1।। सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं।।2।। एवमाइएहिं आगारेहिं, अभग्गो, अविराहिओ, हुज्ज मे काउसग्गो।।3।। जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, णमुक्कारेणं न पारेमि।।4।। ताव कायं, ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि।।5।।

(एक नवकार का कायोत्सर्ग करें। फिर 'णमो अरिहंताणं' बोलकर दूसरी स्तुति कहें)

सुर नरवर किन्नर, वंदित पद अरविंद
कामित भर पूरण अभिनव सुरतरु कन्द।
भवियण ने तारे, प्रवहण सम निशदीस
चोबीसे जिनवर, प्रणमुं विशवा बीस।।2।।

पुक्खरवरदीवड्ढे

पुक्खर वरदी वड्ढे धायइ संडे अ जंबूदीवे अ। भरहे रवय विदेहे, धम्माइगरे नमंसामि।।1।। तम तिमिर पडल विद्धं, सणस्स सुरगण नरिंद महिअस्स। सीमाधरस्स वंदे, पफ्फोडिअ मोहजालस्स।।2।। जाइ-जरा-मरण सोग पणासणस्स, कल्लाण पुक्खल विसाल सुहावहस्स। को देव-दावण नरिंद गणच्चिअस्स, धम्मस्स सार मुवलब्भ करे पमायं।।3।। सिद्धे भो! पयओ णमो जिणमए, नंदि सया संजमे, देवंनाग सुवन्न किन्नर गणस्सब्भूअ भावच्चिए। लोगो जत्थ पइट्ठिओ जगमिणं, तेलुक्क मच्चासुरं, धम्मो वड्ढउ सासओ विजयओ धम्मुत्तरं वड्ढउं।।4।।

सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं।।1।। वंदण वत्तिआए, पूअण वत्तिआए, सक्कारवत्तिआए, सम्माण वत्तिआए, बोहिलाभ वत्तिआए, निरुवसग्ग वत्तिआए।।2।। सद्धाए, मेहाए, धीइए, धारणाए, अणुप्पेहाए, वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्गं।।3।।

अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलिए, पित्तमुच्छाए।।1।। सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं।।2।। एवमाइएहिं, आगारेहिं, अभग्गो, अविराहिओ, हुज्ज मे काउसग्गो।।3।। जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, णमुक्कारेणं न पारेमि।।4।। ताव कायं, ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि।।5।।

(एक नवकार का कायोत्सर्ग करें। फिर 'णमो अरिहंताणं' बोलकर तीसरी स्तुति कहें)

अरथे करी आगम, भाख्यां श्री भगवंत
गणधर ते गुथ्यां, गुणनिधि ज्ञान अनंत।
सुरगुरु पण महिमा, कही न शके एकंत
समरूं सुखसायर, मन शुद्ध सूत्र सिद्धान्त।।3।।

सिद्धाणं बुद्धाणं

सिद्धाणं बुद्धाणं, पारगयाणं, परंपर गयाणं। लोअग्ग मुवगयाणं, नमो सया सव्व सिद्धाणं।।1।। जो देवाण वि देवो, जं देवा पंजलि नमंसंति। तं देव-देव महिअं, सिरसा वंदे महावीरं।।2।। इक्कोवि नमुक्कारो, जिणवर-वसहस्स वद्धमाणस्स। संसार सागराओ, तारेइ नरं व नारिं वा।।3।। उज्जित सेल सिहरे, दिक्खानाणं निसीहिआ। जस्स तं धम्म चक्कवट्टिं, अरिट्ठनेमिं नमंसामि।।4।। चत्तारि अट्ठ दस दोय, वंदिआ जिणवरा चउवीसं। परमट्ठ निट्ठिअट्ठा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।5।।

वेयावच्चगराणं, संतिगराणं, सम्मदिट्ठि समाहिगराणं। करेमि काउस्सग्गं।

अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलिए पित्तमुच्छाए।।1।। सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं।।2।। एवमाइएहिं आगारेहिं, अभग्गो, अविराहिओ, हुज्ज मे काउसग्गो।।3।। जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, णमुक्कारेणं न पारेमि।।4।। ताव कायं, ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि।।5।।

(एक नवकार का कायोत्सर्ग करके 'नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय

सर्वसाधुभ्यः' कहकर चौथी स्तुति कहें)

सिद्धायिका देवी, वारे विघन विशेष
सहु संकट चूरे, पूरे आश अशेष।
अहोनिश कर जोड़ी, सेवे सुर नर इन्द
जंपे गुण गण इम, जिनलाभसूरींद।।4।।

• अब नीचे बैठकर बायाँ घुटना ऊँचा करके 'णमुत्थुणं' बोलें...

णमुत्थुणं

णमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं।।1।। आइगराणं, तित्थयराणं सयं संबुद्धाणं।।2।। पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवर पुंडरियाणं, पुरिसवर गंधहत्थीणं।।3।। लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहियाणं, लोगपइवाणं, लोगपज्जो अगराणं।।4।। अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, बोहिदयाणं।।5।। धम्मदयाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टीणं।।6।। अप्पडिहय वर नाण दंसण धराणं, विअट्टच्छउमाणं।।7।। जिणाणं-जावयाणं, तिन्नाणं-तारयाणं, बुद्धाणं-बोहयाणं, मुत्ताणं-मोअगाणं।।8।। सव्वनूणं, सव्वदरिसीणं, सिव-मयल-मरुअ-मणंत-मक्खय-मव्वाबाह-मपुणरावित्ति सिद्धिगइ नामधेयं ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं जिअभयाणं।।9।। जे अ अईआ सिद्धा, जे अ भविस्संति णागए काले। संपइ अ वट्टमाणा, सव्वे तिविहेण वंदामि।।10।।

जावंति चेइयाइं, उड्ढे अ अहे अ तिरिअ लोए अ।
सव्वाइं ताइं वंदे, इह संतो तत्थ संताइं।।1।।

• **'इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए मत्थएण वंदामि'** कहकर एक 'खमासमणा' लगाएं। तत्पश्चात–

जावंत केवि साहू, भरहे रवय महाविदेहे अ।
सव्वेसिं तेसिं पणओ, तिविहेण तिदंड विरयाणं।।2।।

'नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यः' इतना कहकर स्तवन बोलें..

स्तवन

(तर्ज : नयनों में आकर बसना पारस बेकरार है)

मेरा एक ध्यान है, श्री चौबीसों भगवानोंका ही एक ध्यान है।।टेर।।
श्री ऋषभ अजित जिन नामी, संभव अभिनंदन स्वामी।
सुमति पद्म सुपास है, चन्दा प्रभु वंदो भावे, मेरा।।1।।
सुविधि शीतल श्रेयांस, वासुपूज्य विमल अवतंसा।
अनन्त धर्म नाथ है, शान्ति ॐ शान्ति शान्ति, मेरा।।2।।
कुन्थु अर मल्लिनाथा, मुनिसुव्रत शिवपुर साथा।
नमि अरिष्ट नेम है, पारस पावन रसधारी, मेरा।।3।।
शासनपति गुण गंभीरा, श्री वर्द्धमान महावीरा।
प्राणाधार सार है, तीर्थंकर तारणहार, मेरा।।4।।
वृष गज घोड़ा कपि जानो, है क्रोंच कमल परमाणो।
स्वस्तिक स्वस्तिकार है, आगम के अनुसार, मेरा।।5।।
है चन्द्र मकर श्री वत्सा, खड्ग महिष प्रशस्ता।
वराह स्येन वज्र है, मृग छाग नन्द्यावर्त, मेरा।।6।।
घट कूर्म नील कज शंखा, फणिसिंह सुलांछन चंगा।
इनसे भान होत है, गुरु गम से यह सब जाना, मेरा।।7।।
अरिहंत सिद्ध पदधारी, गम आगम रूप अवतारी।
मूर्त अमूर्त भाव है, प्रभु के पावन चरणों में, मेरा।।8।।
दो श्वेत रक्त है दोनों, दो नील है काले दोनों।
कंचम वर्ण सोलह है, वीश स्थानक तप से होते, मेरा।।9।।
हे 'सुखसागर' भगवाना, 'हरि' पूजित गुण परधाना।
गुणबार आठ है, गुण और अनन्ते उनमें, मेरा।।10।।
सुकवीन्द्र 'कीर्ति' गावे, आतम परमातम भावे।
जय जयकार सार है, हैं भवसागर से दूर, मेरा।।11।।

• अब मुक्ताशुक्ति मुद्रा (सीप के समान पोली मुद्रा) में हाथ जोड़कर 'जयवीयरायसूत्र बोलें।

जयवीयराय

जयवीयराय, जगगुरु, होउ ममं, तुह पभावओ, भयवं! भव निव्वओ, मग्गाणुसारिआ इट्ठफल सिद्धि लोगविरुद्धच्चाओ, गुरुजणपूआ,

परत्थकरणं च, सुह गुरु जोगो तव्वयण सेवणा आभवमखंडा ।।

● अब पुनः 'णमुत्थुणंसूत्र' बोलें–

णमुत्थुणं

णमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं ।।1।। आइगराणं, तित्थयराणं सयं संबुद्धाणं ।।2।। पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवर पुंडरियाणं, पुरिसवर गंधहत्थीणं।।3।। लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहियाणं, लोगपइवाणं, लोगपज्जो अगराणं।।4।। अभयदयाणं चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, बोहिदयाणं।।5।। धम्मदयाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टीणं।।6।। अप्पडिहय वर नाण-दंसण-धराणं, विअट्टछउमाणं।।7।। जिणाणं-जावयाणं, तिन्नाणं-तारयाणं, बुद्धाणं-बोहयाणं, मुत्ताणं-मोअगाणं।।8।। सव्वन्नूणं-सव्वदरिसीणं, सिव-मयल-मरुअ-मणंत-मक्खय-मव्वाबाह-मपुणराविति सिद्धिगइ-नामधेयं ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं जिअभयाणं।।9।। जे अ अईआ सिद्धा, जे अ भविस्संति णागए काले। संपइ अ वट्टमाणा, सव्वे तिविहेण वंदामि ।।10।।

।।इति देववंदन विधि।।

देववंदन करते हुए कोई अविधि अशातना हुई हो तो मन-वचन-काया से मिच्छामि दुक्कडं।

परिशिष्ट-II

प्रदक्षिणा-खमासमण सारणी

पूर्वाचार्यों ने प्रत्येक तप में खमासमण (पंचांग प्रणिपात) देने का विधान किया है और जहाँ खमासमण का निर्देश हो वहाँ प्रदक्षिणा का अन्तर्भाव स्वत: समझ लेना चाहिए, क्योंकि तपश्चर्या में प्रदक्षिणापूर्वक ही खमासमण देने की विधि है।

प्रत्येक तप की आराधना किसी न किसी श्रेष्ठ उद्देश्य से की जाती है। जो साध्य हो उसमें निहित गुणों को प्राप्त करना यही तप का मुख्य ध्येय होता है। अंतिम लक्ष्य (मोक्ष) को पाने से पूर्व व्यक्ति के सामने कई आदर्श हो सकते हैं जिन्हें समाचरित कर इष्ट तत्त्व को सहज उपलब्ध किया जा सकता है। इसीलिए खमासमण आदि की संख्या में भिन्नता है। जैसे कि अरिहंत परमात्मा 12 गुणों से युक्त हैं अत: उनकी आराधना हेतु साथिया आदि बारह-बारह होते हैं। इसी भाँति सम्यक्ज्ञान के 51 प्रकार माने गये हैं अत: तद्गुणों की प्राप्ति हेतु साथिया आदि 51-51 करने चाहिए। आचार्य 36 गुणों के धारक होते हैं तदनुसार उनकी आराधना करते समय साथिया आदि 36-36 किए जाते हैं। यही नियम सभी तपों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए।

जिस तप में जितनी संख्या का निर्देश हो वहाँ उतने खमासमण निम्नानुसार देने चाहिए–

12 खमासमण-अरिहन्त पद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

परम पंच परमेष्ठि में, परमेश्वर भगवान।
चार निक्षेपे ध्याईये, नमो नमो जिनभाण।।

खमासमण के पद

1. अशोक वृक्ष प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नम:

2. सुर पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नमः
3. दिव्य ध्वनि प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नमः
4. चामर युगल प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नमः
5. स्वर्ण सिंहासन प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नमः
6. भामंडल प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नमः
7. देव दुंदुभि प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नमः
8. छत्रत्रय प्रातिहार्य संयुताय श्री अर्हते नमः
9. ज्ञानातिशय संयुताय श्री अर्हते नमः
10. पूजातिशय संयुताय श्री अर्हते नमः
11. वचनातिशय संयुताय श्री अर्हते नमः
12. अपायापगमातिशय संयुताय श्री अर्हते नमः

31 खमासमण-सिद्धपद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

गुण अनन्त निरमल थया, सहज स्वरूप उजास।
अष्ट करम मल क्षय करी, भये सिद्ध नमो तास।।

खमासमण के पद

1. मति ज्ञानावरणीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नमः
2. श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नमः
3. अवधि ज्ञानावरणीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नमः
4. मनःपर्यव ज्ञानावरणीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नमः
5. केवल ज्ञानावरणीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नमः
6. निद्रा दर्शनावरणीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नमः
7. निद्रा निद्रा दर्शनावरणीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नमः
8. प्रचला दर्शनावरणीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नमः
9. प्रचला प्रचला दर्शनावरणीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नमः
10. स्त्यानर्द्धि दर्शनावरणीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नमः
11. चक्षु दर्शनावरणीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नमः
12. अचक्षु दर्शनावरणीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नमः

13. अवधि दर्शनावरणीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
14. केवल दर्शनावरणीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
15. साता वेदनीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
16. असाता वेदनीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
17. दर्शन मोहनीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
18. चारित्र मोहनीय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
19. नरकायु कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
20. तिर्यगायु कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
21. मनुष्यायु कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
22. देवायु कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
23. शुभ नाम कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
24. अशुभ नाम कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
25. उच्च गोत्र कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
26. नीच गोत्र कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
27. दानान्तराय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
28. लाभान्तराय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
29. भोगान्तराय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
30. उपभोगान्तराय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:
31. वीर्यान्तराय कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम:

36 खमासमण-आचार्य पद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

छत्तीस छत्तीसी गुणे, युगप्रधान मुणीन्द।
जिनमत परमत जाणतां, नमो नमो ते सुरीन्द्र।।

खमासमण के पद

1. प्रतिरूप गुण धारकाय श्री आचार्याय नम:
2. तेजस्वी गुण धारकाय श्री आचार्याय नम:
3. युग प्रधान गुण धारकाय श्री आचार्याय नम:
4. मधुर वाक्य गुण धारकाय श्री आचार्याय नम:

5. गम्भीर गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
6. धैर्य गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
7. उपदेश गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
8. अपरिश्रावि गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
9. सौम्य गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
10. अभिग्रह गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
11. अविकथक गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
12. अचपल गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
13. संयम शील गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
14. प्रशान्त हृदय धारकाय श्री आचार्याय नमः
15. क्षमा गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
16. मार्दव गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
17. आर्जव गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
18. निर्लोभ गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
19. तपो गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
20. संयम गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
21. सत्य धर्म गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
22. शौच गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
23. अकिंचन गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
24. ब्रह्मचर्य गुण धारकाय श्री आचार्याय नमः
25. अनित्य भावना भाविताय श्री आचार्याय नमः
26. अशरण भावना भाविताय श्री आचार्याय नमः
27. संसार भावना भाविताय श्री आचार्याय नमः
28. एकत्व भावना भाविताय श्री आचार्याय नमः
29. अन्यत्व भावना भाविताय श्री आचार्याय नमः
30. अशुचि भावना भाविताय श्री आचार्याय नमः
31. आश्रव भावना भाविताय श्री आचार्याय नमः
32. संवर भावना भाविताय श्री आचार्याय नमः
33. निर्जरा भावना भाविताय श्री आचार्याय नमः

34. लोक स्वरूप भावना भाविताय श्री आचार्याय नमः
35. बोधि दुर्लभ भावना भाविताय श्री आचार्याय नमः
36. दुर्लभ धर्म साधक भावना भाविताय श्री आचार्याय नमः

10 खमासमण– स्थविर पद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा दोहा

तजि पर परिणति रमणतां, लहे निज भाव स्वरूप।
स्थिर करता भवि लोक ने, जय जय स्थविर अनूप।।

खमासमण के पद

1. लौकिक स्थविर देशकाय लोकोत्तर स्थविराय नमः
2. देश स्थविर लोकोत्तर स्थविराय नमः
3. ग्राम स्थविर देशकाय लोकोत्तर स्थविराय नमः
4. कुल स्थविर देशकाय लोकोत्तर स्थविराय नमः
5. लौकिक कुल स्थविर देशकाय लोकोत्तर स्थविराय नमः
6. लौकिक गुरु स्थविर देशकाय लोकोत्तर स्थविराय नमः
7. लोकोत्तर श्री संघ स्थविराय नमः
8. लोकोत्तर पर्याय स्थविराय नमः
9. लोकोत्तर श्रुत स्थविराय नमः
10. लोकोत्तर वयः स्थविराय नमः

25 खमासमण–उपाध्याय पद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

तत्त्व बोध विणु जीव ने, न होय तत्त्व प्रतीत।
भणे भणावे सूत्र ने, जय जय पाठक गीत।।

खमासमण के पद

1. आचारांग सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
2. सुयगडांग सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
3. समवायांग सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
4. ठाणांग सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः

5. भगवती सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
6. ज्ञाताधर्मकथा सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
7. उपासकदशा सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
8. अंतगड़दशा सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
9. अनुत्तरोववाई सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
10. प्रश्नव्याकरण सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
11. विपाक सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
12. उववाइ उपांग सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
13. रायपसेणी सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
14. जीवाभिगम सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
15. पन्नवणा सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
16. जम्बूद्वीपपन्नत्ति सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
17. चन्द्रपन्नत्ति सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
18. सूरपन्नत्ति सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
19. निरयावलिया सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
20. कप्पिया सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
21. पुप्फचुलिया सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
22. पुप्फिया सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
23. वह्निदशा सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
24. द्वादशांगी सूत्र पाठकाय श्री उपाध्याय नमः
25. द्वादशांगी सूत्रार्थ पाठकाय श्री उपाध्याय नमः

27 खमासमण–साधुपद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

स्याद्वाद गुण परिणम्यो, रमतां समता संग।
साधे शुद्धानन्दता, नमो साधु शुभ रंग।।

खमासमण के पद

1. पृथ्वीकाय रक्षकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
2. अप्काय रक्षकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः

3. तेउकाय रक्षकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
4. वाउकाय रक्षकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
5. वनस्पतिकाय रक्षकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
6. त्रसकाय रक्षकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
7. सर्वत: प्राणातिपात विरतेभ्य: रक्षकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
8. सर्वत: मृषावाद विरतेभ्य: रक्षकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
9. सर्वत: अदत्तादान विरतेभ्य: रक्षकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
10. सर्वत: मैथुन विरतेभ्य: रक्षकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
11. सर्वत: परिग्रह विरतेभ्य: रक्षकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
12. सर्वत: रात्रिभोजन विरतेभ्य: रक्षकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
13. कषाय वारकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
14. श्रोतेन्द्रिय विषय वारकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
15. चक्षुरिन्द्रिय विषय वारकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
16. घ्राणेन्द्रिय विषय वारकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
17. रसनेन्द्रिय विषय वारकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
18. स्पर्शनेन्द्रिय विषय वारकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
19. शीतादि परीषह सहन वारकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
20. क्षमादि गुण धारकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
21. भाव विशुद्धेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
22. मनोयोग विशुद्धेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
23. वचन योग विशुद्धेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
24. काय योग विशुद्धेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
25. मरणान्त उपसर्ग धारकेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
26. अंगोपांग संकोचन शीलेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:
27. निर्दोष संयम योग युक्तेभ्य: सर्व साधुभ्यो नम:

51 खमासमण–ज्ञान पद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

अध्यात्म ज्ञाने करी, विघटे भव भ्रम भीति।
सत्य धर्म ते ज्ञान छे, नमो नमो ज्ञानानी रीति।।

खमासमण के पद

1. स्पर्शनेन्द्रिय व्यंजनावग्रह मतिज्ञानाय नमः
2. रसनेन्द्रिय व्यंजनावग्रह मतिज्ञानाय नमः
3. घ्राणेन्द्रिय व्यंजनावग्रह मतिज्ञानाय नमः
4. श्रोतेन्द्रिय व्यंजनावग्रह मतिज्ञानाय नमः
5. स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह मतिज्ञानाय नमः
6. रसनेन्द्रिय अर्थावग्रह मतिज्ञानाय नमः
7. घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह मतिज्ञानाय नमः
8. चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह मतिज्ञानाय नमः
9. श्रोतेन्द्रिय अर्थावग्रह मतिज्ञानाय नमः
10. मनोऽथावग्रह अर्थावग्रह मतिज्ञानाय नमः
11. स्पर्शनेन्द्रिय ईहा मतिज्ञानाय नमः
12. रसनेन्द्रिय ईहा मतिज्ञानाय नमः
13. घ्राणेन्द्रिय ईहा मतिज्ञानाय नमः
14. चक्षुरिन्द्रिय ईहा मतिज्ञानाय नमः
15. श्रोतेन्द्रिय ईहा मतिज्ञानाय नमः
16. मन ईहा मतिज्ञानाय नमः
17. स्पर्शनेन्द्रिय अपाय मतिज्ञानाय नमः
18. रसनेन्द्रिय अपाय मतिज्ञानाय नमः
19. घ्राणेन्द्रिय अपाय मतिज्ञानाय नमः
20. चक्षुरिन्द्रिय अपाय मतिज्ञानाय नमः
21. श्रोतेन्द्रिय अपाय मतिज्ञानाय नमः
22. मनोऽपाय मतिज्ञानाय नमः
23. स्पर्शनेन्द्रिय धारणा मतिज्ञानाय नमः
24. रसनेन्द्रिय धारणा मतिज्ञानाय नमः
25. घ्राणेन्द्रिय धारणा मतिज्ञानाय नमः
26. चक्षुरिन्द्रिय धारणा मतिज्ञानाय नमः
27. श्रोतेन्द्रिय धारणा मतिज्ञानाय नमः
28. मनो धारणा मतिज्ञानाय नमः

29. अक्षर श्रुत ज्ञानाय नमः
30. अनक्षर श्रुत ज्ञानाय नमः
31. संज्ञि श्रुत ज्ञानाय नमः
32. असंज्ञि श्रुत ज्ञानाय नमः
33. सम्यक् श्रुत ज्ञानाय नमः
34. मिथ्या श्रुत ज्ञानाय नमः
35. सादि श्रुत ज्ञानाय नमः
36. अनादि श्रुत ज्ञानाय नमः
37. सपर्यवसित श्रुत ज्ञानाय नमः
38. अपर्यवसित श्रुत ज्ञानाय नमः
39. गमिक श्रुत ज्ञानाय नमः
40. अगमिक श्रुत ज्ञानाय नमः
41. अंग प्रविष्ट श्रुत ज्ञानाय नमः
42. अनंग प्रविष्ट श्रुत ज्ञानाय नमः
43. अनुगामी अवधि ज्ञानाय नमः
44. अननुगामी अवधि ज्ञानाय नमः
45. वर्धमान अवधि ज्ञानाय नमः
46. हीयमान अवधि ज्ञानाय नमः
47. प्रतिपाति अवधि ज्ञानाय नमः
48. अप्रतिपाति अवधि ज्ञानाय नमः
49. ऋजुमति मनः पर्यव ज्ञानाय नमः
50. विपुलमति मनः पर्यव ज्ञानाय नमः
51. लोकालोक प्रकाशक श्री केवल ज्ञानाय नमः

67 खमासमण–दर्शनपद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

लोकालोकना भाव जे, केवली भाषित जेह।
सत्य करी अवधारता, नमो नमो दर्शन तेह।।

खमासमण के पद

1. परमार्थ संस्तव रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
2. परमार्थ ज्ञातृ सेवन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
3. कुलिंग दर्शन वर्जन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
4. कुदर्शन वर्जन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
5. शुश्रूषा रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
6. धर्मानुराग रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
7. वैयावृत्य रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
8. श्री अर्हद् भक्ति विनय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
9. श्री सिद्ध विनय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
10. चैत्य विनय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
11. श्रुत विनय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
12. धर्म विनय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
13. साधु विनय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
14. श्री आचार्य विनय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
15. श्री उपाध्याय विनय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
16. प्रवचन विनय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
17. दर्शन विनय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
18. संसारे जिन सारमिति चिंतन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
19. संसारे जिन मत सारमिति चिंतन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
20. संसारे जिनमतस्थित साध्वादि सारमिति रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
21. शंका दूषण रहिताय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
22. कांक्षा दूषण रहिताय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
23. विचिकित्सा दूषण रहिताय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
24. कुदृष्टि प्रशंसा दूषण रहिताय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
25. तत्परिचय प्रभावक रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
26. प्रवचन प्रभावक रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
27. धर्म कथा प्रभावक रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
28. वादी प्रभावक रूप सम्यग्दर्शनाय नमः

29. नैमित्तिकी प्रभावक रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
30. तपस्वी प्रभावक रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
31. प्रज्ञप्त्यादि विद्याभृत्प्रभावक रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
32. चूर्णाञ्जनादि सिद्धि प्रभावक रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
33. कवि प्रभावक रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
34. जिनशासन कौशल भूषण रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
35. प्रभावना भूषण रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
36. तीर्थ सेवा भूषण रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
37. धैर्य भूषण रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
38. जिनशासन भक्ति भूषण रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
39. उपशम गुण रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
40. संवेग गुण रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
41. निर्वेद गुण रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
42. अनुकंपा गुण रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
43. आस्तिकता गुण रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
44. परतीर्थिकादि वंदन वर्जन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
45. परतीर्थिकादिनमस्कार वर्जन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
46. परतीर्थिकादि आलाप वर्जन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
47. परतीर्थिकादि संलाप वर्जन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
48. परतीर्थिकादि अशनादिदान वर्जन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
49. परतीर्थिकादि गंध पुष्पादिदान वर्जन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
50. राजाभियोग युक्ताय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
51. गणाभियोगाकार युक्ताय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
52. बलाभियोगाकार युक्ताय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
53. सुराभियोगाकार युक्ताय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
54. कान्तार वृत्याकार युक्ताय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
55. गुरु निग्रहक युक्ताय रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
56. सम्यक्त्व धर्मस्य मूलमिति चिंतन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
57. सम्यक्त्व धर्मपुर द्वारमिति चिंतन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः

58. धर्मस्य प्रतिष्ठान मिति चिंतन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
59. धर्मस्याधार मिति चिंतन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
60. धर्मस्य भाजन मिति चिंतन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
61. धर्मस्य निधि सन्निभमिति चिंतन रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
62. अस्ति जीव इति श्रद्धान इति रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
63. स च जीवो नित्य इति रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
64. जीवः कर्माणि करोति इति रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
65. जीवः कृत कर्माणि वेदयती इति रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
66. जीवस्यास्ति निर्वाणमिति इति रूप सम्यग्दर्शनाय नमः
67. अस्ति पुनर्मोक्षोपाय इति रूप सम्यग्दर्शनाय नमः

52. खमासमण– विनय पद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

शौच मूलथी महागुणी, सर्व धर्मनो सार।
गुण अनन्तनो कंद ए, नमो विनय आचार।।

खमासमण के पद

1. श्री अरिहंत आसातना वर्जन रूप विनय गुणाय नमः
2. श्री अरिहंत भक्ति करण रूप विनय गुणाय नमः
3. श्री अरिहंत बहुमान करण रूप विनय गुणाय नमः
4. श्री अरिहंत वचन श्रद्धान रूप विनय गुणाय नमः
5. श्री सिद्ध आसातना वर्जन रूप विनय गुणाय नमः
6. श्री सिद्ध भक्ति करण रूप विनय गुणाय नमः
7. श्री सिद्ध बहुमान रूप विनय गुणाय नमः
8. श्री सिद्ध स्तुति करण तत्पररूप विनय गुणाय नमः
9. सुविहित चन्द्रादि कुलासातना वर्जन रूप विनय गुणाय नमः
10. सुविहित चन्द्रादि कुल भक्ति करण रूप विनय गुणाय नमः
11. सुविहित कुल बहुमान रूप विनय गुणाय नमः
12. सुविहित कुल संस्तुति करण रूप विनय गुणाय नमः
13. सुविहित कौटिकादि गण भक्ति करण रूप विनय गुणाय नमः

14. सुविहित कौटिकादि गण बहुमान करण रूप विनय गुणाय नमः
15. सुविहित कौटिकादि गण संस्तुति करण रूप विनय गुणाय नमः
16. सुविहित गण अनासातना रूप विनय गुणाय नमः
17. श्री संघ आसातना वर्जन रूप विनय गुणाय नमः
18. श्री संघ भक्ति करण रूप विनय गुणाय नमः
19. श्री संघ बहुमान करण रूप विनय गुणाय नमः
20. श्री स्तुति करण रूप विनय गुणाय नमः
21. आगमोक्त क्रिया अनासातना रूप विनय गुणाय नमः
22. आगमोक्त क्रिया भक्ति करण रूप विनय गुणाय नमः
23. शुद्ध क्रिया बहुमान करण रूप विनय गुणाय नमः
24. शुद्ध क्रिया स्तुति करण रूप विनय गुणाय नमः
25. जैन धर्म अनासातना रूप विनय गुणाय नमः
26. जैन धर्म भक्ति करण रूप विनय गुणाय नमः
27. जैन धर्म बहुमान करण रूप विनय गुणाय नमः
28. जैन धर्म स्तुति करण रूप विनय गुणाय नमः
29. ज्ञान गुण अनासातना करण रूप विनय गुणाय नमः
30. ज्ञान गुण भक्ति करण रूप विनय गुणाय नमः
31. ज्ञान गुण बहुमान करण रूप विनय गुणाय नमः
32. ज्ञान गुण स्तुति करण रूप विनय गुणाय नमः
33. ज्ञानी जन अनासातना रूप विनय गुणाय नमः
34. ज्ञानी जन भक्ति करण रूप विनय गुणाय नमः
35. ज्ञानी जन बहुमान करण रूप विनय गुणाय नमः
36. ज्ञानी जन स्तुति करण रूप विनय गुणाय नमः
37. आचार्य आसातना वर्जन रूप विनय गुणाय नमः
38. आचार्य भक्ति करण रूप विनय गुणाय नमः
39. आचार्य बहुमान करण रूप विनय गुणाय नमः
40. आचार्य स्तुति करण रूप विनय गुणाय नमः
41. स्थविर मुनि अनासातना रूप विनय गुणाय नमः
42. स्थविर मुनि भक्ति करण रूप विनय गुणाय नमः

43. स्थविर मुनि बहुमान करण रूप विनय गुणाय नमः
44. स्थविर मुनि स्तुति करण रूप विनय गुणाय नमः
45. उपाध्याय अनासात रूप विनय गुणाय नमः
46. उपाध्याय भक्ति करण रूप विनय गुणाय नमः
47. उपाध्याय बहुमान करण रूप विनय गुणाय नमः
48. उपाध्याय स्तुति करण रूप विनय गुणाय नमः
49. गणावच्छेदक अनासातना रूप विनय गुणाय नमः
50. गणावच्छेदक भक्ति करण रूप विनय गुणाय नमः
51. गणावच्छेदक बहुमान करण रूप विनय गुणाय नमः
52. गणावच्छेदक स्तुति करण रूप विनय गुणाय नमः

70. खमासमण–चारित्र पद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

रत्नत्रय विनु साधना, निष्फल कही सदीन।
भाव रयण नुं निधान छे, जय जय संजम जीव।।

खमासमण के पद

1. सर्वतः प्राणातिपात विरमण रूप चारित्राय नमः
2. सर्वतः मृषावाद विरमण रूप चारित्राय नमः
3. सर्वतः अदत्तादान विरमण रूप चारित्राय नमः
4. सर्वतः मैथुन विरमण रूप चारित्राय नमः
5. सर्वतः परिग्रह विरमण रूप चारित्राय नमः
6. क्षमा धर्म रूप चारित्राय नमः
7. आर्जव धर्म रूप चारित्राय नमः
8. मृदुता धर्म रूप चारित्राय नमः
9. मुक्ति धर्म रूप चारित्राय नमः
10. तपो धर्म रूप चारित्राय नमः
11. संयम धर्म रूप चारित्राय नमः
12. सत्य धर्म रूप चारित्राय नमः
13. शौच धर्म रूप चारित्राय नमः

14. अकिंचन धर्म रूप चारित्राय नमः
15. ब्रह्मचर्य धर्म रूप चारित्राय नमः
16. पृथ्वीकाय रक्षा संयम रूप चारित्राय नमः
17. अप्काय रक्षा संयम रूप चारित्राय नमः
18. तेउकाय रक्षा संयम रूप चारित्राय नमः
19. वाउकाय रक्षा संयम रूप चारित्राय नमः
20. वनस्पतिकाय रक्षा संयम रूप चारित्राय नमः
21. बेइन्द्रिय रक्षा संयम रूप चारित्राय नमः
22. तेइन्द्रिय रक्षा संयम रूप चारित्राय नमः
23. चउरिन्द्रिय रक्षा संयम रूप चारित्राय नमः
24. पंचिन्द्रिय रक्षा संयम रूप चारित्राय नमः
25. अजीव रक्षा संयम रूप चारित्राय नमः
26. प्रेक्षा संयम रूप चारित्राय नमः
27. अनुप्रेक्षा संयम रूप चारित्राय नमः
28. अधिक वस्त्र भक्तादि त्याग रूप चारित्राय नमः
29. प्रमार्जन संयम रूप चारित्राय नमः
30. मनः संयम चारित्राय नमः
31. वचन संयम चारित्राय नमः
32. काया संयम चारित्राय नमः
33. श्री आचार्य वैयावच्च रूप चारित्राय नमः
34. श्री उपाध्याय वैयावच्च रूप चारित्राय नमः
35. तपस्वी वैयावच्च रूप चारित्राय नमः
36. लघुशिष्य वैयावच्च रूप चारित्राय नमः
37. ग्लान साधु वैयावच्च रूप चारित्राय नमः
38. साधु वैयावच्च रूप चारित्राय नमः
39. श्रमणोपासक वैयावच्च रूप चारित्राय नमः
40. संघ वैयावच्च रूप चारित्राय नमः
41. कुल वैयावच्च रूप चारित्राय नमः
42. गण वैयावच्च रूप चारित्राय नमः

43. पशु पंडगादि सहित वसति वर्जन रूप चारित्राय नमः
44. स्त्री हास्यादि कथा वर्जन रूप चारित्राय नमः
45. स्त्री आसन वर्जन रूप चारित्राय नमः
46. स्त्री अंगोपांग निरीक्षण वर्जन रूप चारित्राय नमः
47. कुड्यंतर स्थित स्त्री हाव भाव श्रवण वर्जन रूप चारित्राय नमः
48. पूर्व संभोग चिंतन वर्जन रूप चारित्राय नमः
49. अति सरस आहार वर्जन रूप चारित्राय नमः
50. अति आहार वर्जन रूप चारित्राय नमः
51. अंग विभूषा वर्जन रूप चारित्राय नमः
52. अनशन तपो रूप चारित्राय नमः
53. ऊनोदरी तपो रूप चारित्राय नमः
54. वृत्ति संक्षेप तपो रूप चारित्राय नमः
55. रस त्याग तपो रूप चारित्राय नमः
56. काय क्लेश तपो रूप चारित्राय नमः
57. संलेखन तपो रूप चारित्राय नमः
58. प्रायश्चित्त तपो रूप चारित्राय नमः
59. विनय तपो रूप चारित्राय नमः
60. वैयावच्च तपो रूप चारित्राय नमः
61. सज्झाय तपो रूप चारित्राय नमः
62. ध्यान तपो रूप चारित्राय नमः
63. कायोत्सर्ग तपो रूप चारित्राय नमः
64. अनंत ज्ञान युक्त रूप चारित्राय नमः
65. अनंत दर्शन युक्त रूप चारित्राय नमः
66. अनंत गुण रमण रूप चारित्राय नमः
67. क्रोध निग्रह करण रूप चारित्राय नमः
68. मान निग्रह करण रूप चारित्राय नमः
69. माया निग्रह करण रूप चारित्राय नमः
70. लोभ निग्रह करण रूप चारित्राय नमः

18 खमासमण—ब्रह्मचर्य पद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

जिन प्रतिमा जिन मन्दिरा, कंचन ना करे जेह।
ब्रह्मव्रत थी बहु फल कहे, नमो नमो शीयल सुदेह।।

खमासमण के पद

1. मनसा औदारिक विषय अकरण रूप ब्रह्मचर्याय नमः
2. मनसा औदारिक विषय अकरावण रूप ब्रह्मचर्याय नमः
3. मनसा औदारिक विषय अनुमोदना वर्जन रूप ब्रह्मचर्याय नमः
4. वचसा औदारिक विषय अकरण रूप ब्रह्मचर्याय नमः
5. वचसा औदारिक विषय अकरावण रूप ब्रह्मचर्याय नमः
6. वचसा औदारिक विषय अनुमोदन वर्जन रूप ब्रह्मचर्याय नमः
7. कायेन औदारिक विषय अकरण रूप ब्रह्मचर्याय नमः
8. कायेन औदारिक विषय अकरावण रूप ब्रह्मचर्याय नमः
9. कायेन औदारिक विषय अनुमोदन वर्जन रूप ब्रह्मचर्याय नमः
10. मनसा वैक्रिय विषय अकरण रूप ब्रह्मचर्याय नमः
11. मनसा वैक्रिय विषय अकरावण रूप ब्रह्मचर्याय नमः
12. मनसा वैक्रिय विषय अनुमोदन वर्जन रूप ब्रह्मचर्याय नमः
13. वचसा वैक्रिय विषय अकरण ब्रह्मचर्याय नमः
14. वचसा वैक्रिय विषय अकरावण ब्रह्मचर्याय नमः
15. वचसा वैक्रिय विषय अनुमोदन वर्जन ब्रह्मचर्याय नमः
16. कायेन वैक्रिय विषय अकरण ब्रह्मचर्याय नमः
17. कायेन वैक्रिय विषय अकरावण ब्रह्मचर्याय नमः
18. कायेन वैक्रिय विषय अनुमोदन वर्जन ब्रह्मचर्याय नमः

25 खमासमण—क्रिया पद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

आत्मबोध विनुजे क्रिया, ते तो बालक चाल।
तत्त्वारथ थी धारीये, नमो क्रिया सुविशाल।।

खमासमण के पद

1. कायिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
2. अधिकरणिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
3. पारितापनिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
4. प्राणातिपातिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
5. आरम्भिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
6. परिग्रह क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
7. माया प्रत्ययिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
8. मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
9. अपच्चक्खाणी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
10. दृष्टि क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
11. स्पर्शन क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
12. प्रातित्यकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
13. सामंतोपनिपातकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
14. नैशस्त्रकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
15. स्वहस्तिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
16. आणवणी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
17. विदारणिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
18. अनाभोग प्रत्ययिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
19. अनवकंख प्रत्ययिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
20. आज्ञापन प्रत्ययिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
21. प्रयोग क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
22. समुदान क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
23. द्वेष क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
24. प्रेम क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः
25. इरियावहिया क्रिया प्रवर्तन रहिताय नमः

12. खमासमण–तप पद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

कर्म खपाने चीकणा, भाव मंगल तप जाण।
पच्चास लब्धि ऊपजे, जय जय तप गुण खाण।।

खमासमण के पद

1. अनशन तपो युक्ताय नमः
2. ऊनोदरी तपो युक्ताय नमः
3. वृत्तिसंपेक्ष तपो युक्ताय नमः
4. रसत्याग तपो युक्ताय नमः
5. कायक्लेश तपो युक्ताय नमः
6. संलीनता तपो युक्ताय नमः
7. प्रायश्चित तपो युक्ताय नमः
8. विनय तपो युक्ताय नमः
9. वैयावृत्य तपो युक्ताय नमः
10. सज्झाय तपो युक्ताय नमः
11. ध्यान तपो युक्ताय नमः
12. व्युत्सर्ग तपो युक्ताय नमः

12 खमासमण– गौतम पद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

छट्ठ छट्ठ तप करे पारणे, चउनाणी गुणधाम।
ये सम शुभ पात्र को नहीं, नमो नमो गोयम स्वाम।।

खमासमण के पद

1. श्री गौतम गणधराय नमः
2. श्री अग्निभूति गणधराय नमः
3. श्री वायुभूति गणधराय नमः
4. श्री व्यक्त स्वामी गणधराय नमः
5. श्री सुधर्मा स्वामी गणधराय नमः
6. श्री मण्डित स्वामी गणधराय नमः
7. श्री मौर्यपुत्र स्वामी गणधराय नमः
8. श्री अकम्पित स्वामी गणधराय नमः
9. श्री अचल भ्राता गणधराय नमः
10. श्री मेतार्य स्वामी गणधराय नमः

11. श्री प्रभास स्वामी गणधराय नमः
12. चौबीस तीर्थंकरों के 1452 गणधरेभ्यो नमः

20 खमासमण–विहरमान तीर्थंकर की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

दोष अढारे क्षय थया, उपज्या गुण जस अंग।
वैयावच्च करिये मुहु, नमो नमो जिन पद संग।।

खमासमण के पद

1. श्री सीमन्धर जिनेश्वराय नमः
2. श्री युगमन्धर जिनेश्वराय नमः
3. श्री बाहु जिनेश्वराय नमः
4. श्री सुबाहु जिनेश्वराय नमः
5. श्री सुजात जिनेश्वराय नमः
6. श्री स्वयंप्रभ जिनेश्वराय नमः
7. श्री ऋषभानन जिनेश्वराय नमः
8. श्री अनंतवीर्य जिनेश्वराय नमः
9. श्री सूरप्रभ जिनेश्वराय नमः
10. श्री विशाल जिनेश्वराय नमः
11. श्री वज्रंधर जिनेश्वराय नमः
12. श्री चन्द्रानन जिनेश्वराय नमः
13. श्री चन्द्रबाहु जिनेश्वराय नमः
14. श्री भुजंग स्वामी जिनेश्वराय नमः
15. श्री ईश्वर स्वामी जिनेश्वराय नमः
16. श्री नमिप्रभ जिनेश्वराय नमः
17. श्री वीरसेन प्रभ जिनेश्वराय नमः
18. श्री महासेन प्रभ जिनेश्वराय नमः
19. श्री देवसेन प्रभ जिनेश्वराय नमः
20. श्री अजितवीर्य जिनेश्वराय नमः

17 खमासमण–संयम पद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

शुद्धात्मा गुण में रमे, तजि इन्द्रिय आशंस।
थिर समाधि संतोषमां, जय जय संजम वंश।।

खमासमण के पद

1. सर्वत: प्राणातिपात विरताय संयमधराय नम:
2. सर्वत: मृषावाद विरताय संयमधराय नम:
3. सर्वत: अदत्तादान विरताय संयमधराय नम:
4. सर्वत: मैथुन विरताय संयमधराय नम:
5. सर्वत: परिग्रह विरताय संयमधराय नम:
6. सर्वत: रात्रि भोजन विरताय संयमधराय नम:
7. ईया समिति युक्ताय संयमधराय नम:
8. भाषा समिति युक्ताय संयमधराय नम:
9. एषणा समिति युक्ताय संयमधराय नम:
10. आदान भण्डमत्त निक्षेपणा समिति युक्ताय संयमधराय नम:
11. परिष्ठापनिका समिति युक्ताय संयमधराय नम:
12. मनो गुप्ति युक्ताय संयमधराय नम:
13. वचन गुप्ति युक्ताय संयमधराय नम:
14. काय गुप्ति युक्ताय संयमधराय नम:
15. मनो दण्ड रहिताय संयमधराय नम:
16. वचन दण्ड रहिताय संयमधराय नम:
17. काय दण्ड रहिताय संयमधराय नम:

52. खमासमण–आगम ज्ञान की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

ज्ञान वृक्ष सेवो भविक, चारित्र समकित मूल।
अजर अमर पद लहो, जिनवर पदवी फूल।।

खमासमण के पद

1. श्री आचारांग सूत्राय नम:
2. श्री सूयगडांग सूत्राय नम:

3. श्री ठाणांग सूत्राय नमः
4. श्री समवायांग सूत्राय नमः
5. श्री भगवती सूत्राय नमः
6. श्री ज्ञाताधर्मकथा सूत्राय नमः
7. श्री उपासकदशा सूत्राय नमः
8. श्री अन्तगड़दशा सूत्राय नमः
9. श्री अनुत्तरोववाई सूत्राय नमः
10. श्री प्रश्नव्याकरण सूत्राय नमः
11. श्री विपाक सूत्राय नमः
12. श्री उववाई सूत्राय नमः
13. श्री रायपसेणीय सूत्राय नमः
14. श्री जीवाभिगम सूत्राय नमः
15. श्री पन्नवणा सूत्राय नमः
16. श्री जंबूद्वीप पन्नती सूत्राय नमः
17. श्री चन्द पन्नती सूत्राय नमः
18. श्री सूर पन्नती सूत्राय नमः
19. श्री निरयावलिया सूत्राय नमः
20. श्री पुष्पिका सूत्राय नमः
21. श्री पुष्प चूलिका सूत्राय नमः
22. श्री कप्पिका सूत्राय नमः
23. श्री वह्निदशा सूत्राय नमः
24. श्री चउसरणपयन्ना सूत्राय नमः
25. श्री संथारग पयन्ना सूत्राय नमः
26. श्री भत्त पयन्ना सूत्राय नमः
27. श्री चन्दा विज्जय सूत्राय नमः
28. श्री मरण विभत्ति सूत्राय नमः
29. श्री गणिविज्जा सूत्राय नमः
30. श्री तंदुलवेयालिय सूत्राय नमः
31. श्री देवेन्द्रस्तव सूत्राय नमः

32. श्री आउरपच्चक्खाण सूत्राय नमः
33. श्री महापच्चक्खाण सूत्राय नमः
34. श्री दशवैकालिक सूत्राय नमः
35. श्री उत्तराध्ययन सूत्राय नमः
36. श्री आवश्यक मूल सूत्राय नमः
37. श्री पिंडनिर्युक्ति सूत्राय नमः
38. श्री व्यवहारच्छेद सूत्राय नमः
39. श्री निशीथ सूत्राय नमः
40. श्री महानिशीय सूत्राय नमः
41. श्री दशाश्रुतस्कंध सूत्राय नमः
42. श्री जीतकल्प सूत्राय नमः
43. श्री पंचकल्प सूत्राय नमः
44. श्री नन्दी चूलिका सूत्राय नमः
45. श्री अनुयोगद्वार सूत्राय नमः
46. श्री स्यादस्तिभंग प्ररूपकाय सूत्राय नमः
47. श्री स्यान्नस्तिभंग प्ररूपकाय सूत्राय नमः
48. श्री स्यादस्ति नास्ति भंग सूत्राय नमः
49. श्री स्यादवक्तव्य भंग सूत्राय नमः
50. श्री स्यादस्ति अवक्तव्य भंग सूत्राय नमः
51. श्री स्यान्नास्ति अवक्तव्य भंग सूत्राय नमः
52. श्री स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य भंग सूत्राय नमः

20 खमासमण–श्रुतज्ञान की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

वक्ता श्रोता योगश्री, श्रुत अनुभव रस पीन।
ध्याता ध्येयनी एकता, जय जय श्रुत सुखलीन।।

खमासमण के पद

1. पर्याय श्रुतज्ञानाय नमः
2. पर्याय समास श्रुतज्ञानाय नमः

3. अक्षर श्रुतज्ञानाय नमः
4. अक्षर समास श्रुतज्ञानाय नमः
5. पद श्रुतज्ञानाय नमः
6. पद समास श्रुतज्ञानाय नमः
7. संघात श्रुतज्ञानाय नमः
8. संघात समास श्रुतज्ञानाय नमः
9. प्रतिपत्ति श्रुतज्ञानाय नमः
10. प्रतिपत्ति समास श्रुतज्ञानाय नमः
11. अनुयोग श्रुतज्ञानाय नमः
12. अनुयोग समास श्रुतज्ञानाय नमः
13. श्रुतज्ञानाय नमः
14. श्रुत समास श्रुतज्ञानाय नमः
15. बहु श्रुतज्ञानाय नमः
16. बहु समास श्रुतज्ञानाय नमः
17. पाहुड़ श्रुतज्ञानाय नमः
18. पाहुड़ समास श्रुतज्ञानाय नमः
19. पूर्व श्रुतज्ञानाय नमः
20. पूर्व समास श्रुतज्ञानाय नमः

38 खमासमण–तीर्थ पद की आराधना हेतु

प्रदक्षिणा का दोहा

तीर्थयात्रा प्रभाव छे, शासन उन्नति काज।
परमानन्द विलासतां, जय जय तीर्थ जहाज।।

खमासमण के पद

1. सर्वतः प्राणातिपात विरताय श्री तीर्थाय नमः
2. सर्वतः मृषावाद विरताय श्री तीर्थाय नमः
3. सर्वतः अदत्तादान विरताय श्री तीर्थाय नमः
4. सर्वतः मैथुन विरताय श्री तीर्थाय नमः
5. सर्वतः परिग्रह विरताय श्री तीर्थाय नमः

6. पृथ्वीकाय रक्षकाय श्री तीर्थाय नमः
7. अप्काय रक्षकाय श्री तीर्थाय नमः
8. तेऊकाय रक्षकाय श्री तीर्थाय नमः
9. वायुकाय रक्षकाय श्री तीर्थाय नमः
10. वनस्पतिकाय रक्षकाय श्री तीर्थाय नमः
11. त्रसकाय रक्षकाय श्री तीर्थाय नमः
12. क्रोध रहिताय श्री तीर्थाय नमः
13. मान रहिताय श्री तीर्थाय नमः
14. माया रहिताय श्री तीर्थाय नमः
15. लोभ रहिताय श्री तीर्थाय नमः
16. रागांश रहिताय श्री तीर्थाय नमः
17. द्वेषांश रहिताय श्री तीर्थाय नमः
18. लज्जा गुण युक्ताय श्री तीर्थाय नमः
19. दया गुण युक्ताय श्री तीर्थाय नमः
20. माध्यस्थ गुण युक्ताय श्री तीर्थाय नमः
21. सौम्य गुण युक्ताय श्री तीर्थाय नमः
22. गुणानुराग गुण युक्ताय श्री तीर्थाय नमः
23. अक्षुद्र गुण युक्ताय श्री तीर्थाय नमः
24. संघ प्रभावना गुण युक्ताय श्री तीर्थाय नमः
25. उपास्थ गुण युक्ताय श्री तीर्थाय नमः
26. लोक विरुद्ध वर्जन गुण युक्ताय श्री तीर्थाय नमः
27. अक्रूर गुण युक्ताय श्री तीर्थाय नमः
28. पाप भीरू गुण युक्ताय श्री तीर्थाय नमः
29. परावंचक-विश्वसनीय गुण युक्ताय श्री तीर्थाय नमः
30. दाक्षिण्य गुण युक्ताय श्री तीर्थाय नमः
31. अशुभ कथा वर्जन गुण युक्ताय श्री तीर्थाय नमः
32. अनुकूल धार्मिक परिवारयुक्ताय श्री तीर्थाय नमः
33. दीर्घदर्शी गुण श्री तीर्थाय नमः
34. सत्संगति गुण श्री तीर्थाय नमः

35. वृद्धानुग गुण श्री तीर्थाय नमः
36. रत्नत्रयी शुद्धाय श्री तीर्थाय नमः
37. परहित कारण गुण श्री तीर्थाय नमः
38. लब्ध लक्ष्यगुण युक्ताय श्री तीर्थाय नमः

सूचना–

- उक्त सारणी में जिस तप विधि के खमासमण नहीं हो उनमें उस तप की माला फेरने का जो पद हो, उसे बोलते हुए खमासमण दें। जैसे कि तेरह काठिया तप, क्षीरसमुद्र तप, श्रुतदेवता तप, पैंतालीस आगम तप, नवनिधि तप, नवकार तप, नव ब्रह्मचर्य तप, चतुर्विध संघ तप, तीर्थंकर मातृ तप, दस प्रत्याख्यान तप, पैंतालीस आगम तप आदि में जिस पद की माला फेरी जाती है उसका नामोच्चारण करते हुए खमासमण देने चाहिए।
- चैत्री पूर्णिमा एवं कार्तिक पूर्णिमा की तप विधि विस्तृत है। इसलिए इन तपों का उल्लेख नहीं किया है।

परिशिष्ट-III

तप सारणी

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
1.	अट्ठाईस लब्धि	सामान्य शुभ दिन	50	50	50	20	एकान्त उपवास अथवा लगातार एकासना	56/28
2.	अम्बा	कोई भी कृष्ण पंचमी	12	12	12	20	एकासना	5
3.	अष्टकर्मसूदन	नवपद ओली, पर्यूषण पर्व अथवा चातुर्मास के दिन	5 9 2 28 4 103 2 5	5 9 2 28 4 103 2 5	5 9 2 28 4 103 2 5	20 20 20 20 20 20 20 20	आठ दिन क्रमश: उपवास, एकासना, एक दाने का आयम्बिल, एकलठाणा, एक दत्ति का एकलठाणा, नीवि, आयम्बिल, एवं आठ ग्रास का एकासना करें। इस प्रकार 8-8 दिन की आठ ओली होती है।	64
4.	अष्टकर्मोत्तर प्रकृति	सामान्य शुभ दिन	अष्टकर्मसूदन तप के समान ही प्रत्येक कर्म की उत्तर प्रकृतियों में साथिया आदि करें।				निरन्तर या एकान्तर उपवास	148/296
5.	अष्टअष्टमिका भिक्षु प्रतिमा	शुभ दिन	12	12	12	20	दत्ति	64

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
6.	अष्टमासिक	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास	240/480
7.	अष्टमी	शुक्ला अष्टमी	17	17	17	20	उपवास	8 वर्ष एवं 8 मास
8.	अशोक वृक्ष	आसोज शुक्ला एकम से पंचमी	12	12	12	20	उपवास अथवा एकासना	5 वर्ष में 25 दिन
9.	अक्षयनिधि	भाद्र वदि चौथ	51	51	51	20	एकासना	4 वर्ष में 64 दिन
10.	अष्टापद पावड़ी	आसोज शुक्ला अष्टमी	8	8	8	20	एकासना अथवा उपवास	8 वर्ष में 64 दिन
11.	अखण्ड दशमी	शुक्ला दशमी	12	12	12	20	एकासना	10
12.	अमृत अष्टमी	शुक्ला अष्टमी	8	8	8	20	आयम्बिल	8
13.	अष्टप्रवचनमातृ	शुभ दिन						24
	1. ईर्या समिति		3	3	3	20	तीन दिन क्रमशः 1-1-1 कवल	
	2. भाषा समिति		5	5	5	20	तीन दिन क्रमशः 2-1-2 कवल	
	3. एषणा समिति		7	7	7	20	तीन दिन क्रमशः 3-1-3 कवल	
	4. आदान भंडमत्तनि-क्षेपणासमिति		9	9	9	20	तीन दिन क्रमशः 4-1-4 कवल	
	5. परिष्ठापनिका समिति		11	11	11	20	तीन दिन क्रमशः 5-1-5 कवल	
	6. मनोगुप्ति		13	13	13	20	तीन दिन क्रमशः 6-1-6 कवल	
	7. वचन गुप्ति		15	15	15	20	तीन दिन क्रमशः 7-1-7 कवल	
	8. काय गुप्ति		17	17	17	20	तीन दिन क्रमशः 8-1-8 कवल	
14.	अदु:खदर्शी	शुक्ला प्रतिपदा	12	12	12	20	उपवास (एकासना)	15
15.	अविधवा दशमी	भाद्रशुक्ला दशमी	12	12	12	20	एकासना	10

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
16.	अशुभ निवारण	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास आदि आठ प्रकार के भिन्न-भिन्न तप	25
17.	अष्टमहासिद्धि	शुभ दिन	8	8	8	20	उपवास अथवा एकासना	8/16
18.	आयम्बिल वर्धमान	शुभ दिन	12	12	12	20	आयम्बिल	14 वर्ष, 3 मास, 20 दिन
19.	आयतिजनक	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास अथवा आयम्बिल	32/64
20.	इन्द्रियजय	शुभ दिन	8 5 2 5 3	8 5 2 5 3	8 5 2 5 3	20 20 20 20 20	पाँच दिन क्रमशः पुरिमड्ढ, एकासना, नीवि, आयम्बिल, उपवास करें। इस तरह 5 ओली करते हैं।	25
21.	उपासक प्रतिमा	शुभ दिन					सामायिक, पौषध, बारह व्रत आदि की उत्कृष्ट आराधना	5 वर्ष, 6 महीना
22.	ऊनोदरिका	शुभ दिन	12	12	12	20	जघन्य आदि की अपेक्षा भिन्न-भिन्न संख्या में कवल ग्रहण करते हुए एकासना करना।	5 दिन
23.	एकावली	शुभ दिन					उपवास	4 वर्ष, 8 मास, 8 दिन
24.	एकादश गणधर	वैशाख शुक्ला एकादशी	11	11	11	20	उपवास या आयम्बिल	22
25.	एक सौ सत्तर जिन	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास या एकासना	170/340/179

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
26.	एक सौ आठ पार्श्वनाथ	शुभ दिन	12	12	12	20	यथाशक्ति उपवास आदि	108
27.	कण्ठाभरण	शुभ दिन	16	16	16	20	उपवास-छट्ठ-अट्ठम	14/37
28.	कनकावली	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास	5 वर्ष, 2 मास, 28दिन
29.	कषाय जय	शुभ दिन	12	12	12	20	क्रमश: एकासना, नीवि, आयम्बिल, उपवास– इस तरह चार कषाय के निमित्त चार ओलियाँ करना	16
30.	कल्याणक	मिगसर शुक्ला एकादशी	12	12	12	20	उपवास, आयम्बिल, नीवि आदि	7 वर्ष
31.	कल्याणक अष्टाह्निका	शुभ दिन	12	12	12	20	एकासना	32 महीना
32.	कर्मचूर्ण	शुभ दिन	11	11	11	20	उपवास-अट्ठम	4 महिना, 18 दिन
33.	कलंक निवारण	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास-आयम्बिल-बियासना	4/9
34.	ग्यारह अंग	शुक्ला एकादशी	27	27	27	20	उपवास या एकासना आदि	11
35.	गुणरत्न संवत्सर	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास	16 महीना
36.	गौतम पात्र	पूर्णिमा या कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा	12	12	12	20	उपवास या एकासना	15/24
37.	घन	शुभ दिन	24	24	24	20	उपवास	352/20
38.	चंदनबाला	शुभ दिन या पर्व दिन	12	12	12	20	अट्ठम (तेला)	3
39.	चत्तारि अट्ठ-दस-दोय	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास	28

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
40.	चिन्तामणी	शुभ दिन	12	12	12	20	छह दिन क्रमशः उपवास, एकासना, नीवि, उपवास, एकासना, उपवास करना	6
41.	चान्द्रायण	शुक्ल प्रतिपदा	8	8	8	20	बढ़ती व घटती संख्या में कवल (एकासना)	2 महीना
42.	चतुर्दशपूर्व	शुक्ला चतुर्दशी					उपवास या एकासना	14/28
	1.श्री उत्पाद पूर्व		14	14	14	20		
	2.श्री आग्रायणी पूर्व		26	26	26	20		
	3.श्री वीर्य प्रवाद पूर्व		16	16	16	20		
	4.श्री अस्ति प्रवाद पूर्व		28	28	28	20		
	5.श्री ज्ञान प्रवाद पूर्व		12	12	12	20		
	6.श्री सत्य प्रवाद पूर्व		2	2	2	20		
	7.श्री आत्म प्रवाद पूर्व		16	16	16	20		
	8.श्री कर्म प्रवाद पूर्व		30	30	30	20		
	9.श्री प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व		20	29	29	20		
	10.श्री विद्या प्रवाद पूर्व		15	15	15	20		
	11.श्री कल्याण प्रवाद पूर्व		12	12	12	20		
	12.श्री प्रणायाम प्रवाद पूर्व		13	13	13	20		
	13.श्री क्रिया प्रवाद पूर्व		30	30	30	20		
	14.श्री लोकबिन्दुसार पूर्व		25	25	25	20		

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
43.		शुभ दिन	62/25	62/25	62/25	20	उपवास	122
44.		शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास	180/360
45.		शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास-छट्ठ-अट्ठम	71/95
46.		शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास-छट्ठ-अट्ठम	74/101
47.		शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास-छट्ठ-अट्ठम-मासक्षमण मण	692/1320
48.	चतुर्विध संघ	भाद्र शुक्ला सप्तमी	24	24	24	20	एकासना	7 वर्ष में 49 दिन
49.	छहमासिक	शुभ दिन	12	12	12	20	आयम्बिल	504/528
50.	तीर्थंकर दीक्षा तीर्थंकर केवलज्ञान	शुभ दिन	12	12	12	20	क्रमशः एक से दस दत्तियाँ	100
51.	तीर्थंकर निर्वाण तीर्थंकर मातृ दमयन्ती दशदशमिका भिक्षु प्रतिमा दस प्रत्याख्यान	शुभ दिन	67 17 8 21 31 45 28 9 13 12	67 17 8 21 31 45 28 9 13 12	67 17 8 21 31 45 28 9 13 12	20 20 20 20 20 20 20 20 20 20	दस दिन क्रमशः उपवास, एकासना, ठाम चौविहार युक्त आयंबिल, नीवि, एक कवल का एकासना, एकलठाणा, एक दत्ति का आयंबिल, आयंबिल, ठाम चौविहार युक्त एकासना एवं आयंबिल करना।	10

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
52.		शुभ दिन	10	10	10	20	उपवास	20
53.		शुक्ला द्वादशी	12	12	12	20	उपवास	12
54.		पूर्णिमा	51	51	51	20	दस दिन क्रमशः उपवास आदि भिन्न-भिन्न तप	10
55.		शुक्ला द्वितीया	51/5	51/5	51/5	20	उपवास	2वर्ष, 2मास
56.		शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास, एकासना, आयंबिल, नीवि बियासना	27
57.	दशविध यतिधर्म	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास या आयम्बिल	25/81/132
58.	द्वादशांग (बारह अंग)	शुभ दिन	7	7	7	20	उपवास या एकासना	68/136
	दारिद्र्य निवारण		5	5	5	20		
			7	7	7	20		
	दूज तिथि तप		7	7	7	20		
	देवल इंडा		9	9	9	20		
	धर्मचक्र		16	16	16	20		
	नवकार		16	16	16	20		
59.	नमस्कार फल	शुभ दिन	7	7	7	20	एकासना	9
			5	5	5	20		
			7	7	7	20		
			7	7	7	20		
			9	9	9	20		
			16	16	16	20		
			16	16	16	20		

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
60.	नवनवमिका भिक्षु प्रतिमा	शुभ दिन	12	12	12	20	क्रमशः एक से नौ दत्तियाँ	64
61.	नव निधि	शुक्ला नवमी	9	9	9	20	उपवास	9
62.	नव ब्रह्मचर्य	शुभ दिन	9	9	9	20	नौ कवल का एकासना	9
63.	नन्दीश्वर	अमावस्या	12	12	12	20	उपवास या आयम्बिल	7वर्ष में 52 दिन
64.	नवपद (सिद्धचक्र)	आसोज शुक्ला सप्तमी					आयम्बिल (नौ ओली)	4½वर्ष में 81 दिन
	1. अरिहंत पद		12	12	12	20		
	2. सिद्ध पद		8	8	8	20		
	3. आचार्य पद		36	36	36	20		
	4. उपाध्याय पद		25	25	25	20		
	5. साधु पद		27	27	27	20		
	6. ज्ञान पद		67	67	67	20		
	7. दर्शन पद		51	51	51	20		
	8. चारित्र पद		70	70	70	20		
	9. तप पद		50	50	50	20		
65.	निगोद आयुक्षय	शुभ दिन	12	12	12	20	क्रमशः उपवास, छट्ठ, अट्ठम, छट्ठ, उपवास करना।	14/34
66.	निरुज शिखा	कृष्णा प्रतिपदा	12	12	12	20	उपवास और आयम्बिल	15
67.	निर्वाण दीप	कार्तिक वदि चतुर्दशी	12	12	12	20	बेला	6
68.	परम भूषण	शुभ दिन	12	12	12	20	आयम्बिल	64/32

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
69.	परत्र पाली	दीपावली दिन	12	12	12	20	अट्ठम-नीवि या उपवास	175
70.	परदेशी राजा	शुभ दिन	13	13	13	20	बेला	39
71.	पद्योत्तर	सामान्य श्रेष्ठ दिन	12	12	12	20	उपवास	143
72.	पार्श्व गणधर	शुभ दिन	14	14	14		घट्ठ	30
73.	पुण्डरीक	चैत्री पूर्णिमा	150	150	159		उपवास या आयंबिल आदि	12/84
74.	पैंतालीस आगम	शुभ दिन					उपवास या एकासना	45/90
	1. श्री आचारांग सूत्र		51	51	51	20		
	2. श्री सूयगडांग सूत्र		62	62	62	20		
	3. श्री ठाणांग सूत्र		14	14	14	20		
	4. श्री समवायांग सूत्र		36	36	36	20		
	5. श्री भगवती सूत्र		10	10	10	20		
	6. श्री ज्ञातांग सूत्र		32	32	32	20		
	7. श्री उपासकदशांग सूत्र		16	16	16	20		
	8. श्री अंतगड़दशांग सूत्र		20	20	20	20		
	9. श्री अणुत्तरोववाई सूत्र		19	19	19	20		
	10. श्री प्रश्न व्याकरणांग सूत्र		19	19	19	20		
	11. श्री विपाक सूत्र		35	35	35	20		
	12. श्री उववाई सूत्र		42	42	42	20		
	13. श्री रायपसेणी सूत्र		10	10	10	20		
	14. श्री जीवाभिगम सूत्र		10	10	10	20		

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
	15. श्री पन्नवणा सूत्र		10	10	10	20		
	16. श्री जम्बूद्वीप पन्नति सूत्र		10	10	10	20		
	17. श्री चन्द्रपन्नति सूत्र		10	10	10	20		
	18. श्री सूरपन्नति सूत्र		10	10	10	20		
	19. श्री कप्पिया सूत्र		10	10	10	20		
	20. श्री कप्पवडिंसिया सूत्र		10	10	10	20		
	21. श्री पुप्फिया सूत्र		10	10	10	20		
	22. श्री पुप्फिचूलिया सूत्र		10	10	10	20		
	23. श्री वह्निदशा सूत्र		25	25	25	20		
	24. श्री व्यवहार सूत्र		23	23	23	20		
	25. श्री बृहत्कल्प सूत्र		10	10	10	20		
	26. श्री दशाश्रुतस्कंध सूत्र		104	104	104	20		
	27. श्री निशीथ सूत्र		42	42	42	20		
	28. श्री महानिशीथ सूत्र		19	19	19	20		
	29. श्री जीतकल्प सूत्र		10	10	10	20		
	30. श्री चउसरण पयन्ना सूत्र		19	19	19	20		
	31. श्री संथारापयन्ना सूत्र		23	23	23	20		
	32. श्री तन्दुलपयन्ना सूत्र		10	10	10	20		
	33. श्री चन्दाविज्झा सूत्र		20	20	20	20		
	34. श्री गणिविज्जा सूत्र		23	23	23	20		

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
	35. श्री देविंदत्थुओ सूत्र		42	42	42	20		
	36. श्री वीरथुओ सूत्र		10	10	10	20		
	37. श्री गच्छाचारपयन्नना सूत्र		36	36	36	20		
	38. श्री जोतिसकरंडक सूत्र		57	57	57	20		
	39. श्री महापच्चक्खाण सूत्र		50	50	50	20		
	40. श्री आवश्यक सूत्र		50	50	50	20		
	41. श्री उत्तराध्ययन सूत्र		10	10	10	20		
	42. श्री ओघनिर्युक्ति सूत्र		10	10	10	20		
	43. श्री दशवैकालिक सूत्र		10	10	10	20		
	44. श्री अनुयोगद्वार सूत्र		10	10	10	20		
	45. श्री नंदी सूत्र		10	10	10	20		
75.	पंचरंगी	श्रेष्ठ दिन	51	51	51	20	उपवास	5
76.	पंच परमेष्ठी	श्रेष्ठ दिन	12 9 36 25 27	12 9 36 25 27	12 9 36 25 27	20 20 20 20 20	सात दिन क्रमशः उपवास, एकलठाणा, आयम्बिल, एकासना, नीवि, पुरिमड्ढ, एवं आठ ग्रास ग्रहण करें– ऐसा पाँच बार करना चाहिए।	35
77.	पंच महाव्रत	शुभ दिन	27	27	27	20	उपवास	
78.	पौषदशमी	पौष वदि 9-10-11	12	12	12	20	एकासना	10 वर्ष/10वर्ष-10माह अथवा यावज्जीवन

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
79.	प्रतर	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास-बेला-तेला-चोला	56
80.	प्रकीर्ण	शुभ दिन					नवकारसी-पौरुषी आदि 10 प्रकार के प्रत्याख्यान।	एक दिन
81.	बत्तीस कल्याणक	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास-अट्ठम	72
82.	बारहमासिक	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास	360/720
83.	बावन जिनालय	अष्टमी या चतुर्दशी	12	12	12	20	उपवास	13 मास में 52 दिन
84.	बीसस्थानक	श्रेष्ठ दिन					उपवास	40/400
	1. अरिहंत पद		12	12	12	20		
	2. सिद्ध पद		31	31	31	20		
	3. प्रवचन पद		27	27	27	20		
	4. आचार्य पद		36	36	36	20		
	5. स्थविर पद		10	10	10	20		
	6. उपाध्याय पद		25	25	25	20		
	7. साधु पद		27	27	27	20		
	8. ज्ञान पद		51	51	51	20		
	9. दर्शन पद		67	67	67	20		
	10. विनय पद		52	52	52	20		
	11. चारित्र पद		70	70	70	20		
	12. ब्रह्मचर्य पद		18	18	18	20		
	13. क्रिया पद		25	25	25	20		

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
	14. तप पद		12	12	12	20		
	15. गौतम पद		11	11	11	20		
	16. जिन पद		20	20	20	20		
	17. संयम पद		17	17	17	20		
	18. अभिनव ज्ञान		51	51	51	20		
	19. श्रुतज्ञान पद		20	20	20	20		
	20. तीर्थ पद		38	38	38	20		
85.	बृहत् नंद्यावर्त्त	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास-आयंबिल-एकासना	277
86.	बृहत् संसारतारण	शुभ दिन	12	12	12	20	अट्ठम-आयम्बिल	12
87.	भद्र प्रतिमा	शुभ दिन	12	12	8	20	1 से 4 उपवास तक चढ़ना	3 मास, 10 दिन
88.	भिक्षु प्रतिमा	शुभ दिन					दत्ति, बेला, तेला आदि विविध तप	28 मास, 26 दिन
89.	भद्रोत्तर प्रतिमा	शुभ दिन	12	12	12	20	5 से 9 तक चढ़ना-उतरना	2 वर्ष, 2 मास, 20 दिन
90.	महाघन	शुभ दिन	12	12	12	20	1 से 3, 1 से 4, 1 से 5, 1 से 6 उपवास तक चढ़ना	81/224/1वर्ष, 4 मास 20दिन/2वर्ष, 8 मास, 12 दिन
91.	महाभद्र प्रतिमा	शुभ दिन	12	12	12	20	1 से 5 उपवास तक चढ़ना	4वर्ष, 5 मास, 10 दिन
92.	महासिंह निष्क्रीडित	शुभ दिन	12	12	12	20	1 से 15 उपवास तक चढ़ना-उतरना	6 वर्ष, 2 मास, 12 दिन
93.	महावीर	श्रेष्ठ दिन	12	12	12	20	विविध तपश्चर्याएँ	12.5 वर्ष

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
94.	माघमाला	पौष वदि दशमी	12	12	12	20	एकासना	21
95.	माणिक्य प्रस्तारिका	आसोज शुक्ला एकादशी	12	12	12	20	उपवास, एकासना, नीवि, आयंबिल, बियासना =4वर्ष	20
96.	मुक्तावली	शुभ दिन	12	12	12	20	1 से 16 उपवास तक चढ़ना-उतरना	3 वर्ष, 10 मास
97.	मुकुट सप्तमी	आषाढ़ कृष्णा सप्तमी	12	12	12	20	उपवास	7
98.	मोक्षदण्ड	शुभ दिन	27	27	27	20	उपवास	अनिश्चित
99.	मेरु	शुभ दिन	5	5	5	20	उपवास	50
100.	मेरु त्रयोदशी	माघ कृष्णा त्रयोदशी	12	12	12	20	उपवास	13 वर्ष में 13 दिन
101.	मौन एकादशी	मिगसर शुक्ला एकादशी	12	12	12	20	उपवास	11/132/या यावज्जीवन
102.	योगशुद्धि	शुभ दिन	3	3	3	20	क्रमश: नीवि, आयंबिल, उपवास ऐसा तीन बार करना।	9
103.	रत्नावली	शुभ दिन	12	12	12	20	1 से 16 तक विविध रीतियों से उपवास।	4 वर्ष, 2 मास, 28 दिन
104.	रत्नरोहण	आश्विन शुक्ला पंचमी	12	12	12	20	ए.नी.आ.उ. इस क्रम से 5 ओली।	20
105.	रोहिणी	अक्षय तृतीया अथवा रोहिणी नक्षत्र	12	12	12	20	उपवास या एकासना आदि।	7 वर्ष 7 मास में 98 दिन
106.	लघु अष्टाह्निका	आश्विन/चैत्र मास की शुक्ला अष्टमी	12	12	12	20	उपवास/एकासनादि	7 वर्ष में 112 दिन
107.	लघु नंद्यावर्त्त	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास आदि	74

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
108.	लघु पखवासा	शुक्ल प्रतिपदा	12	12	12	20	उपवास	15/240
109.	लघु संसारतारण	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास-आयम्बिल	12
110.	लघुसिंह निष्क्रीडित	श्रेष्ठ दिन	12	12	12	20	1 से 8 उपवास तक चढ़ना-उतरना	2वर्ष, 28 दिन
111.	लक्षप्रतिपद	शुक्ल प्रतिपदा	8	8	8	20	यथाशक्ति एकासना आदि	12
112.	लोकनाली	शुभ दिन	12	12	12	20	उप.,आ.,ए.,नी.	35
113.	वर्ग तप	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास-बेला	160
114.	वर्ग-वर्ग	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास	
115.	वर्धमान	शुभ दिन	12	12	12	29	आ./नी./ए.	1 वर्ष, 9 मास, 17 दिन/600/1 वर्ष, 8 मास, 25 दिन
116.	समवशरण	भाद्रकृष्णा चतुर्थी/ श्रावण कृष्णा प्रतिपदा/ भाद्रकृष्णा प्रतिपदा	प्रथम वर्ष10 द्वि. वर्ष 9 तृ.वर्ष 12 च.वर्ष8	10 9 12 8	10 9 12 8	20 20 20 20	एकासन, नीवि, आयम्बिल उपवास–इस क्रम से चार परिपाटी पूर्ण करना।	64
117.	सप्तसप्तमिका भिक्षु प्रतिमा	शुभ दिन	12	12	12	20	क्रमशः 1 से 7 पर्यन्त दत्ति ग्रहण	49
118.	सर्वसंख्या श्री महावीर	श्रेष्ठ दिन	12	12	12	20	विविध तप	12½वर्ष, 15 दिन
119.	सर्वसुख सम्पत्ति	कृष्णा/शुक्ल प्रतिपदा					उपवास/एकासना आदि	120

क्रम	तप नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
120.	सर्वतोभद्र प्रतिमा	शुभ दिन	12	12	12	20	5 से 11 उपवास तक चढ़ना-उतरना	1 वर्ष, 2 मास, 21 दिन
121.	सर्वांगसुन्दर	शुक्ल प्रतिपदा	12	12	12	20	उपवास-आयम्बिल	15
122.	सहस्रकूट	शुभ दिन	12	12	12	20	यथाशक्ति उपवास आदि	1024
123.	सिद्धि तप	शुभ दिन	8	8	8	20	1 से 8 उपवास तक चढ़ना	डेढ़ मास
124.	सूर्यायण	कृष्ण प्रतिपदा	8	8	8	20	बढ़ते-घटते क्रम से कवल ग्रहण करना।	दो मास
125.	सौभाग्यकल्पवृक्ष	चैत्र कृष्ण की प्रतिपदा	12	12	12	20	उपवास	एक मास
126.	संल्लेखना	शुभ दिन	12	12	12	20	विविध तप	12 वर्ष
127.	संवत्सर (वर्षीतप)	चैत्र कृष्णा अष्टमी	12	12	12	20	उपवास	13.5 महीना
128.	संवत्सर	चतुर्दशी	12	12	12	20	उपवास	33
129.	स्वर्णकरण्डक	शुभ दिन	12	12	12	20	उ.,आ.,ए.,नी.	27
130.	शत्रुंजय मोदक	शुभ दिन	21	12	12	20	क्रमशः पु., ए.,नी.,आ., उ.	5
131.	शत्रुंजय छट्ठ-अट्ठम	शुभ दिन	21	12	12	20	छट्ठ-अट्ठम	29
132.	षट्काय	शुभ दिन	12	12	12	20	उपवास	6
133.	क्षीरसमुद्र	शुभ दिन/श्रावण मास	7	12	12	20	उपवास/एकासना	8/9
134.	श्रुतदेवता	शुक्ल एकादशी	14	14	14	20	उपवास/एकासनादि	11
135.	श्रेणी	शुभ दिन	12	12	12	20	1 से 7 तक चढ़ना-उतरना	110
136.	ज्ञान पंचमी	मिगसर आदि की शुक्ल पंचमी	51/5	51/5	51/5	20	यथाशक्ति उपवास आदि	5 वर्ष-5 मास/5मास अथवा यावज्जीवन

क्रम	तप का नाम	तप प्रारम्भ दिन	सा.	खमा.	कायो.	माला	करने योग्य तप	तप दिन
137.	ज्ञान-दर्शन-चारित्र		51 67 70	51 67 70	51 67 70	20 20 20	तीन अट्ठम अथवा एकान्तर उपवास	9/12/18

सूचना

1. तप सारणी में उल्लिखित अधिकांश तप आगाढ़ रूप से किए जाते हैं। यहाँ आगाढ़ का अर्थ है– जिस तप को बीच में छोड़ा न जा सके तथा बीच में घूटने पर पुन: प्रारम्भ करना पड़े। कुछ तप अनागाढ़ है। यहाँ अनागाढ़ शब्द का अर्थ है– जिस तप को निरन्तर न करते हुए मध्य में छोड़ा भी जा सकता है। प्राय: रीति, श्रेणी, ओली या परिपाटी के द्वारा किये जाने वाले तप को आगाढ़ तप में गिना गया है क्योंकि एक ओली या परिपाटी का तप निरन्तरता (continuation) में होता है। उसे बीच में छोड़ा नहीं जा सकता।
2. जिस तप में महीने के एक या दो उपवास किए जाते हो उनमें उपवास आदि के हिसाब से तप दिन की संख्या मानी गई है। जैसे अष्टमी तप में 8 वर्ष, 8 महीना लगते हैं किन्तु कुल उपवास 200 दिन होते हैं अत: 200 दिन की गिनती की गई है।

   - जो तप एकान्तर उपवास अथवा पारणा करते हुए लगातार किये जाते हैं उनमें तप दिनों की गिनती पारणा पूर्वक की गई है। जैसे पैंतालीस आगम तप एकान्तर उपवास पूर्वक 90 दिनों में पूर्ण होता हैं, अत: इसमें तप के 90 दिन माने गये हैं।
   - कुछ तप औत्सर्गिक एवं वैकल्पिक दोनों विधियों से किये जाते हैं, उनमें दोनों संख्या दी गई है। इस प्रकार तप दिनों का निर्धारण पृथक-पृथक रूपों में किया गया है।
3. वर्तमान में कुछ आगाढ़ तप अनागाढ़ के रूप में किये जा रहे हैं जैसे– अट्ठाईसलब्धि तप एकान्तर या निरन्तर किया जाना चाहिए किन्तु कई जन 28 उपवास अपने हिसाब से पूर्ण करते हैं जो कि अनुचित है। प्रस्तुत सारणी से तत्सम्बन्धी स्पष्ट बोध किया जा सकता है।

परिशिष्ट-IV

प्रत्येक तप में करने की सामान्य विधि

1. उभय संध्याओं में (दोनों वक्त) प्रतिक्रमण करना चाहिए।
2. अधिकांश तपस्याओं में एक समय तथा नवपद, बीसस्थानक आदि कुछ तपों में तीन समय देववंदन करना चाहिए।
3. अरिहन्त परमात्मा की पूजा करनी चाहिए।
4. यदि अनुकूलता हो तो वीतराग परमात्मा के तीन बार दर्शन करना चाहिए।
5. सम्यक् ज्ञान की पूजा भक्ति करनी चाहिए।
6. उपवास आदि का प्रत्याख्यान विधि पूर्वक ग्रहण करके उसे पूर्ण करने चाहिए।
7. यदि नगर में गुरु भगवन्त विराजमान हो तो उनके मुख से प्रत्याख्यान लेना चाहिए।
8. प्रत्येक तप में बतलाए अनुसार 20 माला गिननी चाहिए।
9. प्रत्येक तप में निर्धारित संख्या के अनुसार खमासमण और प्रदक्षिणा देनी चाहिए।
10. प्रत्येक तप में निश्चित संख्या के अनुसार लोगस्स सूत्र का कायोत्सर्ग करना चाहिए।
11. तपस्या के दिन विशेष रूप से ध्यान-स्वाध्याय आदि करना चाहिए।
12. इन दिनों ब्रह्मचर्य का पालन एवं भूमि शयन करना चाहिए।
13. साधु-साध्वी की वैयावृत्य करनी चाहिए।
14. तप के पारणे पर यथाशक्ति साधर्मीवात्सल्य अथवा अधिक न बन सके तो समान तप करने वाले एक-दो श्रावक या श्राविका को यथाशक्ति भोजन करवाना चाहिए।
15. प्रत्येक तप में तीन उकाले वाला गर्म पानी ही उपयोग में लेना चाहिए।
16. प्रत्येक तप की रात्रि में चतुर्विध आहार का त्याग (चउव्विहार का प्रत्याख्यान) करना चाहिए।
17. दीर्घ अवधि वाले या दुस्तर तप के अन्त या मध्य में उसका महोत्सव पूर्वक उद्यापन करना चाहिए। तप विधियों में बताए अनुसार उद्यापन करना चाहिए।

18. कोई भी तप सांसारिक कामना या इच्छा पूर्ति से नहीं करना चाहिए।
19. तपस्या शुरु करने के मुहूर्त, विधि-विधान, तिथि-मिति आदि के सम्बन्ध में साधु-साध्वी से समझकर करना अधिक लाभदायक है।
20. तपस्या में क्षमा भाव रखना अत्यावश्यक है, क्योंकि क्षमा युक्त किया गया तप ही कर्म निर्जरा का कारण बनता है।
21. तप दिन में अक्षत से स्वस्तिक बनाकर उस पर यथाशक्ति फल, नैवेद्य एवं रुपया चढ़ाना चाहिए।

सर्व तप ग्रहण करने की विधि

तप करने का इच्छुक व्यक्ति शुभ दिन में पवित्र वस्त्र धारण कर गुरु के समीप जाएं। फिर गुरु महाराज को विधिवत वन्दन कर ज्ञान पूजा करें। तदनन्तर जिस तप का निश्चय किया हो उसे गुरु के मुखारविन्द से निम्न प्रकार ग्रहण करें–

• सर्वप्रथम चौकी या पट्टे पर स्वस्तिक, रत्नत्रय की तीन ढेरी एवं सिद्धशिला के प्रतीक रूप में अर्धचन्द्र बनाएं, सिद्धशिला के स्थान पर फल एवं स्वस्तिक के ऊपर मिठाई चढ़ाएं तथा बीच में नारियल एवं सवा रुपया चढ़ाएं। • उसके बाद आसन बिछाकर चरवला एवं मुखवस्त्रिका को हाथ में ग्रहण करें। • फिर इरियावहि0 तस्सउत्तरी0 अन्नत्थ सूत्र बोलकर एक लोगस्स अथवा चार नवकार मंत्र का स्मरण करें। कायोत्सर्ग पूर्णकर पुन: प्रगट में लोगस्स सूत्र कहें। • फिर तप प्रारम्भ करने हेतु उत्कटासन मुद्रा में नीचे बैठकर मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना करके द्वादशावर्त्तवन्दन करें। फिर स्थापनाचार्यजी के समक्ष एक खमासमण (पंचांग प्रणिपात) पूर्वक कहें "इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! (जो तप निश्चित किया हो उसके नाम पूर्वक बोले) गहणत्थं चेइयं वंदावेह।" फिर 'इच्छं' कहें।

• उसके पश्चात चैत्यवन्दन बोलकर एक-एक नमस्कार मन्त्र का चार बार कायोत्सर्ग करते हुए चार स्तुतियाँ कहें। यहाँ सूत्रादि बोलने की जानकारी गुरु या अनुभवी व्यक्ति से ज्ञात करनी चाहिए।

• तत्पश्चात चैत्यवन्दन मुद्रा में णमुत्थुणं सूत्र बोलें। फिर खड़े होकर 'शान्तिनाथ स्वामी आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं' अन्नत्थ सूत्र बोलकर एक नमस्कार मंत्र का कायोत्सर्ग करें। फिर निम्न स्तुति बोलें–

श्रीमते शान्तिनाथाय, नमः शान्तिविधायिने।
त्रैलोक्यस्यामराधीश, मुकुटाभ्यर्चितांघ्रये।।

फिर 'शान्ति देवता आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं' अन्नत्थ सूत्र बोलकर एक नमस्कार मंत्र का कायोत्सर्ग करें। फिर निम्न स्तुति बोलें–

शान्तिः शान्तिकरः श्रीमान्, शांतिर्दिशतु मे गुरुः।
शान्तिरेव सदा तेषां, येषां शान्तिर्गृहे गृहे।।

तदनन्तर 'श्रुतदेवता आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं' अन्नत्थ सूत्र बोलकर एक नमस्कार मंत्र का कायोत्सर्ग करें। फिर निम्न स्तुति बोलें-

सुवर्ण शालिनी देयाद्, द्वादशांगी जिनोद्भवा।
श्रुतदेवी सदा मह्य, मशेषश्रुत संपदम्।।

तत्पश्चात 'भुवन देवता आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं' अन्नत्थ सूत्र बोलकर एक नमस्कार मंत्र का कायोत्सर्ग करें। फिर निम्न स्तुति बोलें-

ज्ञानादिगुण युक्तानां, स्वाध्याय ध्यान संयम रतानाम्।
विदधातु भुवनदेवी, शिवं सदा सर्व साधुनाम्।।

तत्पश्चात 'क्षेत्र देवता आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं' अन्नत्थ सूत्र बोलकर एक नमस्कार मंत्र का कायोत्सर्ग करें। फिर निम्न स्तुति बोले-

यासां क्षेत्र गताः सन्ति, साधवः श्रावकादयः।
जिनाज्ञां साधयन्तस्ता, रक्षन्तु क्षेत्रदेवता।।

उसके बाद 'शासन देवता आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं' अन्नत्थ सूत्र बोलकर एक नमस्कार मंत्र का कायोत्सर्ग करें। फिर निम्न स्तुति बोलें-

या पातिशासनं जैने, सद्यः प्रत्यूह नाशिनी।
साभिप्रेत समृद्धयर्थं, भूयाच्छासन देवता।।

तदनन्तर 'समस्त वैयावृत्यकर देवता आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं' अन्नत्थ सूत्र बोलकर एक नमस्कार मंत्र का कायोत्सर्ग करें। फिर निम्न स्तुति बोलें-

श्री शक्रप्रमुखा यक्षाः, जिन शासन संस्थिताः।
देवान् देव्यस्तदन्येऽपि, संघं रक्षत्व पापतः।।

तत्पश्चात चैत्यवन्दन मुद्रा में बैठकर णमुत्थुणं0, जावंति चेइयाइं0 जावंत केवि साहु0, उवसग्गहरं0, जयवीयराय0 आदि सूत्र बोलकर चैत्यवन्दन करें।

• फिर स्थापनाचार्य के सम्मुख एक खमासमण देकर **'भगवन्! अमुक तव गहणत्थं करेमि काउस्सग्गं'** इतना कहकर एक लोगस्स सूत्र का कायोत्सर्ग करें। फिर एक खमासमण देकर अर्धावनत मुद्रा में तीन नमस्कार मंत्र का स्मरण करें।

• पुनः एक खमासमण देकर अर्धावनत मुद्रा में स्थित हो बोलें-

'इच्छकार भगवन्! अमुक तप दंडक उच्चरावोजी।'

गुरु कहें- **'उच्चरावेमो।'**

फिर जिस तप का अवधारण किया हो उस तप का नाम लेकर गुरु मुख

से तीन बार निम्नलिखित पाठ सुनें–

"अहण्णं भंते! तुम्हाणं समीवे, अमुक तवं उवसंपज्जाणं विहरामि। तं जहा-दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओणं (अमुक तवं), खित्तओणं इत्थ वा अणत्थ वा, कालओणं जाव परिमाणं, भावओणं जाव गहेणं ण गहिज्जामि, छलेणं ण छलिज्जामि जाव सन्निवाएणं ण भविज्जामि जाव अण्णेण वा केणइ रोगायंकेण वा परिणामवसेण। एसो मे परिणामो ण पडिवज्जइ। ताव मे एस तवो रायाभियोगेणं, गणाभियोगेणं, बलाभियोगेणं, देवाभियोगेणं, गुरुनिग्गहेणं, वित्तिकंतारेणं, अणत्थणा-भोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरे।"

शिष्य कहें – **वोसिरामि।**

• तत्पश्चात् गुरु आशीर्वचन के रूप में कहें–

"हत्थेणं सुत्थेणं अत्थेणं तदुभएणं सम्मं धारणीयं चिरं पालणीयं गुरुगुणेहिं वुड्ढाहि नित्थार पारगा होह।"

• तत्पश्चात तप इच्छुक एक खमासमण देकर गुरु मुख से उपवास, आयंबिल या एकासना आदि का प्रत्याख्यान करें।

सर्व तप ग्रहण की यह विधि जीत व्यवहार के अनुसार कही गई है।

तप पारने की विधि

• उपाश्रय में जाकर ज्ञान पूजा करें। • फिर इरियावहि प्रतिक्रमण करें। फिर **'अमुक तप पारवा मुंहपत्ति पडिलेहुं'** कहकर मुंहपत्ति पडिलेहण करके दो वांदणा देवें। फिर **'इच्छा. संदि. भगवन्! अमुक तप पारावणत्थं काउस्सग्गं करावेह'।** गुरु कहें **"करावेमो"।** फिर एक खमासमण देकर **"इच्छाकारेण तुम्हे अम्हं अमुक तप पारावणत्थं चेइयं वंदावेह, वासनिक्खेवं करेह"** ऐसा कहें। तब गुरु **"वंदावेमो करेमो"** कहते हुए शिष्य के सिर पर वासक्षेप डालें।

• फिर तीन खमासमण देकर बायाँ घुटना ऊँचा करके 'णमुत्थुणं से जयवीयराय' पर्यन्त चैत्यवन्दन करें। • फिर **'अमुक तप पारावणत्थं करेमि काउसग्गं'** अन्नत्थसूत्र कह कर एक नवकार का कायोत्सर्ग करें। फिर कोई सी भी स्तुति कहें। फिर बैठकर **'णमुत्थुणं'** कहें।

• अन्त में नीचे हाथ रखकर **'इच्छा0 संदि0 भग0! अमुक तप करते हुए जो भी कोई अविनय आशातना हुई हो वह सब मन-वचन- काया से मिच्छामि दुक्कडं** ऐसा बोलें।

गुरु कहे– **'नित्थार पारगा होह'** फिर यथाशक्ति पच्चक्खाण करें।

• 'अमुक तप आलोयण निमित्तं करेमि काउसग्गं' अन्नत्थ सूत्र कहकर चार लोगस्स का कायोत्सर्ग करें। पूर्णकर प्रकट में लोगस्स कहें। अतिथि सत्कार करें। यथाशक्ति उद्यापन करें।

पच्चक्खाण पारने की विधि

स्थापनाचार्य के समक्ष एक खमासमण पूर्वक इरियावहि॰, तस्स उत्तरी॰, अन्नत्थ॰ कहकर एक लोगस्स का पूर्वक कायोत्सर्ग करें। पारकर प्रकट लोगस्स कहें। फिर एक खमा. देकर 'इच्छा. संदि. भगवन्! चैत्यवन्दन करूं?' इच्छं कह बायां घुटना ऊँचा करके चैत्यवन्दन करें–

जयउ सामय जयउ सामिय रिसह सत्तुंजि,
उज्जिंति पहु नेमिजिण, जयउ वीर सच्चउरिमंडण,
भरूअच्छहिं मुणिसुव्वय मुहरि पास। दुह-दुरिअखंडण
अवर विदेहिं तित्थयरा, चिहुं दिसि विदिसि जं के वि,
तीआणागय सपइअ, वंदुं जिण सव्वेवि ।।1।।
कम्मभूमिहिं कम्मभूमिहिं पढमसंघयणि,
उक्कोसय सत्तरिसय जिणवराण विहरंत लब्भइ,
संइ जिणवर वीस, मुणि बिहुँ कोडिहिं वरनाण,
समणह कोडिसहस्स दुअ, थुणिज्जइ निज्ज विहाणि ।।2।।
सत्ताणवइ सहस्सा, लक्खा, छप्पण अट्ठकोडीओ ।
चउसय छायासीया, तिअलोए चेइए वंदे ।।3।।

फिर जं किंचि॰, नमुत्थुणं॰, जावंति चेइयाइं॰, जावंत केवि साहू॰, नमोऽर्हत्॰, उवसग्गहरं॰, जयवीयराय– इन सूत्रों को विधिपूर्वक बोलें।

वंदे नवकोडिसयं, पणवीसं कोडि लक्ख तेवन्ना।
अट्ठावीस सहस्सा, चउसय अट्ठासिया पडिमा ।।4।।

तदनन्तर एक खमासमण देकर **'इच्छा. संदि. भगवन्! पच्चक्खाण पारवां मुँहपत्ति पडिलेहुं इच्छं'** कह मुँहपत्ति का पडिलेहण करें। फिर एक खमा. देकर **'पच्चक्खाण परावेह यथाशक्ति,** फिर एक खमा. देकर **इच्छा. संदि. भगवन्! पच्चक्खाण पारेमि?' तहत्ति** कहकर एवं मुट्ठी बांधकर तीन नवकार गिनें।

तत्पश्चात पोरिसी, साढ पोरिसी, पुरिमड्ड या अवड्ड जो भी तप किया हो उसका नाम लेते हुए पच्चक्खाण पारें। जैसे– चौविहार, आयम्बिल, एकासणा किया तिविहार का पच्चक्खाण पारूं। फासियं पालियं सोहियं तिरियं किट्टियं जं आराहियं, जं च न आराहियं तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

फिर तीन नवकार गिनें।

पच्चक्खाण सूत्राणि

1. नवकारसी पच्चक्खाण (चौदह नियम स्मरण करने वालों के लिए)

उग्गए सूरे नमुक्कारसहियं मुट्ठिसहियं पच्चक्खाई (पच्चक्खामि) चउव्विहंपि, आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं विगइओ पच्चक्खाइ, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसिट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पडुच्चमक्खिएणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरा-गारेणं। देसावगासियं भोगोपरिभोगं पच्चक्खाइ, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।

2. नवकारसहिअं पच्चक्खाण– उग्गए सूरे नमुक्कारसहिअं मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाइ (पच्चक्खामि) चउव्विहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं महत्तरागारेणं, सव्वसमाहि वत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।

3. पोरसी-साढपोरसी पच्चक्खाण– पोरसी-साढपोरसी मुट्ठिसहियं पच्चक्खाइ (पच्चक्खामि) उग्गए सूरे, चउव्विहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।

4. पुरिमड्ढ-अवड्ढ पच्चक्खाण– उग्गए सूरे पुरिमड्ढं-अवड्ढं पच्चक्खाइ चउव्विहंपि, आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्न्कालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।

5. एकासणा-बिआसणा पच्चक्खाण– पोरसी-साड्ढपोरसी वा मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाइ (पच्चक्खामि) उग्गए सूरे चउव्विहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं एकासणं बिआसणं वा पच्चक्खाइ, तिविहंपि, आहारं असणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारिआगारेणं, आउंटणपसारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।

6. एगलठाणा पच्चक्खाण– पोरसी-साड्ढपोरसी वा मुट्ठिसहियं पच्चक्खाइ (पच्चक्खामि) उग्गए सूरे चउव्विहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं,

साहुवयणेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं एकासणं, एगलट्ठाणं पच्चक्खाइ तिविहंपि आहारं-असणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं सागारिआगारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।

7. आयंबिल पच्चक्खाण— पोरसी-साड्ढपोरसी मुट्ठिसहियं पच्चक्खाइ उग्गए सूरे चउव्विहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, आयंबिलं, पच्चक्खाइ अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसिट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, एकासणं पच्चक्खाइ, तिविहंपि आहारं-असणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारिआगारेणं आउंटणपसारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।

8. निव्विगइय पच्चक्खाण— पोरसी-साड्ढपोरसी मुट्ठिसहियं पच्चक्खाइ उग्गए सूरे चउव्विहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, निव्विगइयं पच्चक्खाइ, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसिट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पडुच्चमक्खिएणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, एकासणं पच्चक्खाइ तिविहंपि आहारं-असणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारिआगारेणं, आउंटणपसारेणं गुरुअब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।

9. चौविहार उपवास पच्चक्खाण— सूरे उग्गए अब्भत्तट्ठं पच्चक्खाइ, चउव्विहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।

10. तिविहार उपवास पच्चक्खाण— सूरे उग्गए अब्भत्तट्ठं पच्चक्खाइ तिविहंपि आहारं-असणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणभोगेणं, सहसागारेणं, पाणहार पोरसी, पुरिमड्ढं-अवड्ढं वा पच्चक्खाइ अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।

11. विगइ पच्चक्खाण— विगइओ पच्चक्खाइ, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसिट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पडुच्चमक्खिएणं,

पारिट्ठावणि-यागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।

12. देसावगासिक पच्चक्खाण– देसावगासियं भोगं-परिभोगं पच्चक्खाइ, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।

13. दत्तियं-पच्चक्खाण– पोरसी-साड्ढपोरिसी पुरिमड्ढं वा पच्चक्खाइ, उग्गए सूरे चउव्विहंपि आहारं-असणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, एकासणं एगट्ठाणं दंत्तियं पच्चक्खाइ, तिविहंपि चउव्विहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारिआगारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ।

14. आयंबिल-नीवि-एकासणा-बिआसणा पारने का पाठ–उग्गए सूरे नमुक्कारसहिअं-पोरसी मुट्ठिसयं-पच्चक्खाण किया चउविहार, आयंबिल-नीवि-एकासणा-बिआसणा पच्चक्खाण किया फासियं, पालियं, सोहियं, तीरियं, किट्टिअं, आराहियं जं चं न आराहिअं तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सायंकालीन पच्चक्खाण

15. दिवसचरिमं चउविहार पच्चक्खाण– दिवसचरिमं पच्चक्खाइ चउव्विहंपि, आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।

16. दिवसचरिमं दुविहार पच्चक्खाण– दिवसचरिमं पच्चक्खाइ दुविहंपि आहारं-असणं, खाइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।

17. पाणाहार पच्चक्खाण– पाणाहार दिवसचरिमं पच्चक्खाइ, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।

18. भवचरिम पच्चक्खाण– भवचरिमं पच्चक्खाइ तिविहंपि चउव्विहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थाणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवतियागारेणं वोसिरइ।

19. अभिग्रह का पच्चक्खाण– गंठिसहिअं मुट्ठिसहिअं वा पच्चक्खाइ अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ।

सज्जनमणि ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित साहित्य का संक्षिप्त सूची पत्र

क्र.	नाम	ले./संपा./अनु.	मूल्य
1.	सज्जन जिन वन्दन विधि	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
2.	सज्जन सद्ज्ञान प्रवेशिका	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
3.	सज्जन पूजामृत (पूजा संग्रह)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
4.	सज्जन वंदनामृत (नवपद आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
5.	सज्जन अर्चनामृत (बीसस्थानक तप विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
6.	सज्जन आराधनामृत (नव्वाणु यात्रा विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
7.	सज्जन ज्ञान विधि	साध्वी प्रियदर्शनाश्री	सदुपयोग
		साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
8.	पंच प्रतिक्रमण सूत्र	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
9.	तप से सज्जन बने विचक्षण	साध्वी मणिप्रभाश्री	सदुपयोग
	(चातुर्मासिक पर्व एवं तप आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
10.	मणिमंथन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
11.	सज्जन सद्ज्ञान सुधा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
12.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
13.	सज्जन गीत गुंजन (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
14.	दर्पण विशेषांक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
15.	विधिमार्गप्रपा (सानुवाद)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
16.	जैन विधि-विधानों के तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन का शोध प्रबन्ध सार	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
17.	जैन विधि विधान सम्बन्धी साहित्य का बृहद् इतिहास	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
18.	जैन गृहस्थ के सोलह संस्कारों का तुलनात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
19.	जैन गृहस्थ के व्रतारोपण सम्बन्धी संस्कारों का प्रासंगिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
20.	जैन मुनि के व्रतारोपण सम्बन्धी विधि-विधानों की त्रैकालिक उपयोगिता, नव्ययुग के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
21.	जैन मुनि की आचार संहिता का सर्वाङ्गीण अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00

22.	जैन मुनि की आहार संहिता का समीक्षात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
23.	पदारोहण सम्बन्धी विधियों की मौलिकता, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
24.	आगम अध्ययन की मौलिक विधि का शास्त्रीय अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
25.	तप साधना विधि का प्रासंगिक अनुशीलन, आगमों से अब तक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
26.	प्रायश्चित्त विधि का शास्त्रीय पर्यवेक्षण व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
27.	षडावश्यक की उपादेयता, भौतिक एवं आध्यात्मिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
28.	प्रतिक्रमण, एक रहस्यमयी योग साधना	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
29.	पूजा विधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता, मनोविज्ञान एवं अध्यात्म के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
30.	प्रतिष्ठा विधि का मौलिक विवेचन आधुनिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
31.	मुद्रा योग एक अनुसंधान संस्कृति के आलोक में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
32.	नाट्य मुद्राओं का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
33.	जैन मुद्रा योग की वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
34.	हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता, चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
35.	बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक परिशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
36.	यौगिक मुद्राएँ, मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
37.	आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
38.	सज्जन तप प्रवेशिका	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
39.	शंका नवि चित्त धरिए	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00

विधि संशोधिका का अणु परिचय

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी (D.Lit.)

नाम	:	नारंगी उर्फ निशा
माता-पिता	:	विमलादेवी केसरीचंद छाजेड
जन्म	:	श्रावण वदि अष्टमी, सन् 1971 गढ़ सिवाना
दीक्षा	:	वैशाख सुदी छट्ठ, सन् 1983, गढ़ सिवाना
दीक्षा नाम	:	सौम्यगुणा श्री
दीक्षा गुरु	:	प्रवर्तिनी महोदया प. पू. सज्जनमणि श्रीजी म. सा.
शिक्षा गुरु	:	संघरत्ना प. पू. शशिप्रभा श्रीजी म. सा.
अध्ययन	:	जैन दर्शन में आचार्य, विधिमार्गप्रपा ग्रन्थ पर Ph.D. कल्पसूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, नंदीसूत्र आदि आगम कंठस्थ, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी भाषाओं का सम्यक् ज्ञान।
रचित, अनुवादित एवं सम्पादित साहित्य	:	तीर्थंकर चरित्र, सद्ज्ञानसुधा, मणिमंथन, अनुवाद-विधिमार्गप्रपा, पर्युषण प्रवचन, तत्वज्ञान प्रवेशिका, सज्जन गीत गुंजन (भाग : १-२)
विचरण	:	राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, थलीप्रदेश, आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, महाराष्ट्र, मालवा, मेवाड़।
विशिष्टता	:	सौम्य स्वभावी, मितभाषी, कोकिल कंठी, सरस्वती की कृपापात्री, स्वाध्याय निमग्ना, गुरु निश्रारत।
तपाराधना	:	श्रेणीतप, मासक्षमण, चत्तारि अट्ठ दस दोय, ग्यारह, अट्ठाई बीसस्थानक, नवपद ओली, वर्धमान ओली, पखवासा, डेढ़ मासी, दो मासी आदि अनेक तप।

सज्जन मन की स्फूर्णा

- तप करने का अधिकारी कौन ?
- आगमों में किन तपों का उल्लेख मिलता है ?
- कौनसा तप किस विधि से करे ?
- बीस स्थानक तप का सर्वप्रथम उल्लेख कहाँ मिलता है ?
- वर्तमान प्रचलित तप का हेतु क्या हैं ?
- तप के साथ क्रिया महत्त्वपूर्ण क्यों ?
- कितने तप के बराबर कितने कल्याणक ?

ISBN 978-81-910801-6-2 (XXII)
SAJJANMANI GRANTHMALA
Website : www.jainsajjanmani.com,E-mail : vidhiprabha@gmail.com